प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

ध्यान-केंद्र की भूमिका

मेरे प्रिय आत्मन्!

कुछ बहुत जरूरी बातों पर विचार करने को हम यहां इकट्ठा हुए हैं। मेरे ख्याल में नहीं थी यह बात कि जो मैं कह रहा हूं एक-एक व्यक्ति से, उसके प्रचार की भी कभी कोई जरूरत पड़ेगी। इस संबंध में सोचा भी नहीं था। मुझे जो आनंदपूर्ण प्रतीत होता है और लगता है कि किसी के काम आ सकेगा, वह मैं लोगों से, अब मेरी जितनी सामर्थ्य और शक्ति है उतना कहता हूं। लेकिन जैसे-जैसे मुझे ज्ञात हुआ और सैकड़ों लोगों के संपर्क में आने का मौका मिला, तो मुझे यह दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि मेरी सीमाएं हैं; और मैं कितना ही चाहूं तो भी उन सारे लोगों तक अपनी बात नहीं पहुंचा सकता हूं जिनको उसकी जरूरत है। और जरूरत बहुत है, और बहुत लोगों को है। पूरा देश ही, पूरी पृथ्वी ही कुछ बातों के लिए अत्यंत गहरे रूप से प्यासी और पीड़ित है।

पूरी पृथ्वी को छोड़ भी दें तो इस देश में भी एक आध्यात्मिक संकट की, एक स्प्रिचुअल क्राइसिस की स्थिति है। पुराने सारे मूल्य खंडित हो गए हैं। पुराने सारे मूल्यों का आदर और सम्मान विलीन हो गया है। नये किसी मूल्य की कोई स्थापना नहीं हो सकी है। आदमी बिल्कुल ऐसे खड़ा है जैसे उसे पता ही न हो--वह कहां जाए और क्या करे? ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि मनुष्य का मन बहुत अशांत, बहुत पीड़ित, बहुत दुखी हो जाए।

एक-एक आदमी के पास इतना दुख है कि काश हम उसे खोल कर देख सकें उसके हृदय को, तो हम घबड़ा जाएंगे। जितने लोगों से मेरा संपर्क बढ़ा उतना ही मैं हैरान हुआ! आदमी जैसा ऊपर से दिखाई पड़ता है, उससे ठीक उलटा उसके भीतर है। उसकी मुस्कुराहटें झूठी हैं, उसकी खुशी झूठी है, उसके मनोरंजन झूठे हैं; और उसके भीतर बहुत गहरा नरक, बहुत अंधेरा, बहुत दुख और पीड़ा भरी है।

इस पीड़ा को, इस दुख को मिटाने के रास्ते हैं; इससे मुक्त हुआ जा सकता है। आदमी का जीवन एक स्वर्ग की शांति का और संगीत का जीवन बन सकता है। और जब से मुझे ऐसा लगना शुरू हुआ, तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जो बात मनुष्य के जीवन को शांति की दिशा में ले जा सकती है, अगर उसे हम उन लोगों तक नहीं पहुंचा देते जिन्हें उसकी जरूरत है, तो हम एक तरह के अपराधी हैं, हम भी जाने-अनजाने कोई पाप कर रहे हैं। मुझे लगने लगा कि अधिकतम लोगों तक, कोई बात उनके जीवन को बदल सकती हो, तो उसे पहुंचा देना जरूरी है।

लेकिन मेरी सीमाएं हैं, मेरी सामर्थ्य है, मेरी शक्ति है, उसके बाहर वह नहीं किया जा सकता। मैं अकेला जितना दौड़ सकता हूं, जितने लोगों तक पहुंच सकता हूं, वे चाहे कितने ही अधिक हों, फिर भी इस वृहत जीवन और समाज को और इसके गहरे दुखों को देखते हुए उनका कोई भी परिमाण नहीं है। एक समुद्र के किनारे हम छोटा-मोटा रंग घोल दें, कोई एकाध छोटी-मोटी लहर रंगीन हो जाए, इससे समुद्र के जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ सकता है। और बड़ा मजा यह है कि वह एक छोटी सी जो लहर थोड़ी सी रंगीन भी हो जाएगी, वह भी उस बड़े समुद्र में थोड़ी देर में खो जाने को है, उसका रंग भी खो जाने को है।

तो कैसे जीवन के इस बड़े सागर में दूर-दूर तक शांति के रंग फेंके जा सकें, उस संबंध में ही विचार करने को हम यहां इकट्ठे हुए हैं।

इसके साथ ही यह भी मुझे दिखाई पड़ता है कि जो आदमी केवल अपनी ही शांति में उत्सुक हो जाता है, वह आदमी कभी पूरे अर्थों में शांत नहीं हो सकता है। क्योंकि अशांत होने का एक कारण यह भी है--केवल अपने आप में ही उत्सुक होना। मात्र अपने में ही उत्सुक होना, सेल्फ-सेंटर्ड होना भी अशांति के बुनियादी कारणों में से

एक है। जो आदमी सिर्फ खुद में ही उत्सुक हो जाता है, सिर्फ स्वयं में ही उत्सुक हो जाता है और चारों तरफ से आंख बंद कर लेना चाहता है, वह आदमी वैसा ही है जैसे कोई एक आदमी एक खूबसूरत सुंदर घर बनाए और इसकी फिकर ही न करे कि उसके घर के चारों तरफ गंदगी के ढेर लगे हुए हैं; वह अपने घर में एक बगिया लगा ले और इसकी फिकर ही न करे कि चारों तरफ दुर्गंध इकट्ठी हो गई है। उसकी बगिया, उसके फूल, उसकी सुगंध बहुत काम नहीं आएंगे, अगर चारों तरफ का सारा पड़ोस गंदा है। तो वह गंदगी उसके घर प्रवेश करेगी, उसके फूलों की सुगंध को भी डुबा देगी।

मनुष्य को न केवल अपने में, बल्कि अपने पड़ोस में भी उत्सुक होना जरूरी है।

धार्मिक व्यक्ति मात्र अपने में ही उत्सुक नहीं होता, बल्कि शेष सारे जीवन के प्रति भी आतुर होता है।

यह भी मुझे प्रतीत होता है कि हम अपनी ही शांति के लिए उत्सुक हों, यह पर्याप्त नहीं है। हमारे चारों तरफ जो जीवन है, जिससे हम अंतर्संबंधित हैं, जिससे हम जुड़े हैं, उस जीवन में भी शांति की कोई हवाएं पहुंच सकें, इसके लिए भी हमारी उत्सुकता जरूरी है। और जो व्यक्ति अपने चारों तरफ के जीवन को भी शांति की दिशा में ले जाने के लिए प्यासा हो जाएगा, वह पाएगा कि चाहे वह दूसरों को शांत कर पाया हो या न कर पाया हो, लेकिन दूसरों को शांत करने के महत्वपूर्ण प्रयास में वह स्वयं जरूर ही शांत हुआ है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। शायद काल्पनिक ही कथा होगी, लेकिन बहुत मधुर है। बुद्ध का निर्वाण हुआ, वे मोक्ष के द्वार पर पहुंच गए, द्वारपाल ने द्वार खोल दिए, लेकिन बुद्ध पीठ करके द्वार की तरफ खड़े हो गए। द्वारपाल ने पूछा, आप पीठ करते हैं मोक्ष की तरफ?

बुद्ध ने कहा, मेरे पीछे बहुत लोग हैं, जब तक वे भी मोक्ष में प्रविष्ट नहीं हो जाते, तब तक मैं अकेला मोक्ष में प्रविष्ट हो जाऊं? इतना कठोर, इतना क्रूर, इतना हिंसक मैं नहीं हूं। मैं रुकूंगा, प्रतीक्षा करूंगा, बहुत लोग हैं। मेरा शांत मन तो यही कहता है कि मैं अंतिम आदमी ही होऊंगा मोक्ष में प्रवेश करने वाला, पहले सारे लोग प्रविष्ट हो जाएं।

बड़ी मीठी कथा है। वह कथा कहती है, बुद्ध अब भी मोक्ष के द्वार पर ही रुके हैं, ताकि सारे लोग मोक्ष में प्रविष्ट हो जाएं। वे अंतिम ही प्रविष्ट होना चाहते हैं।

जिस हृदय में ऐसा भाव उठा हो, उसे मोक्ष उपलब्ध ही हो गया, उसे किसी मोक्ष में प्रविष्ट होने की कोई जरूरत नहीं है। उसके लिए सब मोक्ष फीके हो गए, वह मोक्ष में पहुंच ही गया, जिसके हृदय में ऐसा करुणा का भाव उठा हो। शांत केवल वे ही हो पाते हैं, जिनके जीवन में चारों तरफ शांति पहुंचाने की प्रबल प्रेरणा काम करने लगती है।

यह भी मेरे ख्याल में आता है कि जो मित्र इस दिशा में उत्सुक हुए हैं वे केवल अपने में ही उत्सुक न हों, और सबमें भी उत्सुक हो जाएं। उनकी यह उत्सुकता दूसरों के लिए हितकर होगी ही; न भी हुई तो भी उनके स्वयं के लिए बहुत अर्थपूर्ण होगी, बहुत-बहुत गहरे शांति में और आनंद में उन्हें प्रविष्ट करने में सहयोगी होगी। क्योंकि अशांति का एक कारण हैः स्वयं में केंद्रित हो जाना। और जो इस केंद्र को बिखेर देता है वह शांत होने की दिशा में गतिशील हो जाता है।

तो यह बात कहने के लिए, यहां इस बात के संबंध में विचार करने के लिए हम इकट्ठे हुए हैं कि मैं आपसे यह कह सकूं कि किन रास्तों से अधिकतम लोगों तक प्रेम की, शांति की और करुणा की बात पहुंचाई जा सकती है। क्या उपाय खोजें कि वह बात पहुंच सके। क्या रास्ता हो सकता है।

यह कोई प्रोपेगेंडा नहीं है। यह कोई संप्रदाय खड़ा करना नहीं है। यह कोई आर्गनाइजेशन, कोई संगठन खड़ा करना नहीं है। कोई ऐसा केंद्र खड़ा नहीं करना है जो शक्तिशाली हो जाए। बल्कि इस भांति सब तक कोई

बात पहुंचा देनी है, बिना संगठन के, बिना संप्रदाय के, बिना आर्गनाइजेशन के, बिना किसी केंद्रित शक्ति को बनाए हुए। और इसलिए बहुत विचार करने की जरूरत है।

अगर एक संप्रदाय बनाना हो तो बहुत विचार करने की जरूरत नहीं रह जाती। अगर एक संगठन खड़ा करना हो तो कोई बहुत विचार करने की जरूरत नहीं रह जाती। दुनिया में संगठन बनाने के नियम सबको पता हैं, संप्रदाय खड़े करने की तरकीबें सबको पता हैं। हजारों संप्रदाय खड़े हो चुके हैं। उन संप्रदायों में एक संप्रदाय खड़ा नहीं कर देना है। इसलिए बहुत विचार करने की जरूरत है कि संप्रदाय भी खड़ा न हो, कोई संगठन भी खड़ा न हो, और जो बात हमें प्रीतिकर लगे, आनंदपूर्ण लगे, उस बात को हम सब तक पहुंचा भी सकें। प्रोपेगेंडिस्ट भी हम न हों और प्रचार भी हम कर सकें। इसलिए बहुत डेलिकेट, बहुत महीन और बहुत सूक्ष्मता से विचार करने की जरूरत है। खाई और कुएं के बीच चलने जैसा है।

एक तो यह है कि हम कोई प्रचार ही न करें, क्योंकि खतरा है कि संप्रदाय न बन जाए। इसका मतलब है कि हम बात ही न पहुंचाएं किसी तक। दूसरा यह है कि हम बात पहुंचाएं, तो संप्रदाय बना लें। वह भी खतरा है। बात तो पहुंचानी है सब तक, लेकिन संप्रदाय न बन पाए, यह ध्यान रखना अत्यंत जरूरी है।

तो कैसे यह बात बिना प्रचार के प्रचार हो सके; बिना संप्रदाय के, बिना संगठन के अधिकतम लोगों तक, जो जरूरी है वह खबर, वह सूचना, वह संदेश उन तक पहुंचाया जा सके, इस संबंध में विचार करने को यहां आपको आमंत्रित किया है।

मुझे कुछ जो बातें दिखाई पड़ती हैं वे इन आने वाली बैठकों में मैं आपसे धीरे-धीरे कहूंगा और आपसे भी आशा करूंगा कि आप सोचेंगे इस दिशा में। कुछ बातें प्राथमिक रूप से मैं आज आपसे कहूं, जिन पर आप विचार कर सकें।

पहली बात, जितना बड़ा संदेश है उतना बड़ा हमारे पास आज मित्रों का कोई समूह नहीं है। संगठन चाहिए भी नहीं; सिर्फ समूह चाहिए। और समूह और संगठन का फर्क ख्याल में होना चाहिए। समूह का मतलब होता है, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है वहां। अपनी आजादी से आया है और अपनी आजादी से अलग हो सकता है। समूह का मतलब है, प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के बराबर है, कोई नीचा और ऊंचा नहीं है, कोई पदाधिकारी नहीं है, कोई अनुयायी नहीं है, कोई नेता नहीं है--समूह का अर्थ है। मित्रों का एक समूह बनाना है, एक संगठन नहीं। क्योंकि संगठन में फिर पदाधिकारी होते हैं, ऊपर-नीचे आदमी होते हैं, और संगठन का अपना एक जाल होता है, एक हायरेरकी होती है, नीचे से ऊपर तक सीढ़ियां और पद होते हैं। और फिर उनके साथ आई हुई पॉलिटिक्स होती है, राजनीति होती है। क्योंकि जहां पद हैं वहां राजनीति आनी अनिवार्य है। जो पदों पर होते हैं वे भयभीत हो जाते हैं कि उन्हें कोई पदों से अलग न कर दे। जो पद पर नहीं होते वे उत्सुक होते हैं कि हम पद पर कैसे पहुंच जाएं। तो एक अपना उपद्रव है संगठन का।

हमें एक मित्रों का समूह बनाना है, कोई संगठन नहीं बनाना है।

समूह में प्रत्येक व्यक्ति बराबर है, समान मूल्य का है। कोई पदाधिकारी नहीं है, कोई आदृत नहीं है, कोई नीचा नहीं है, कोई ऊंचा नहीं है। और प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ अपने प्रेम के कारण वहां आया है। प्रेम के अतिरिक्त उसके ऊपर न कोई आदेश हैं जिन्हें उसे मानना है, न कोई प्रतिज्ञाएं हैं जिन्हें उसे पूरी करना है, न कोई व्रत-नियम हैं जिनके अंतर्गत उसे बंधना है। सिर्फ उसके प्रेम और उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से सम्मिलित हुआ है वह, और जिस क्षण चाहे उसी क्षण अलग हो जा सकता है। और जब वह सम्मिलित भी है तब भी वह किसी एक डॉग्मा, किसी एक सिद्धांत से बंधा हुआ नहीं है। तब भी वह स्वतंत्र है भिन्न मत रखने को, अपना विचार रखने को, अपने विचार को मानने को, अपनी बुद्धि का अनुसरण करने को। वह किसी का अनुयायी होकर वहां नहीं है।

तो मित्रों का एक समूह जीवन जागृति केंद्र बन सके, इस दिशा में सोचना है।

निश्चित ही, मित्रों के समूह बनाने के नियम अलग होते हैं, संगठन बनाने के नियम अलग होते हैं। मित्रों का समूह एक बिल्कुल ही जिसको हम कहें अराजक, अनार्किक संस्था होती है। संगठन एक सुव्यवस्थित, बंधी हुई नियमों से, सिद्धांतों से, कानूनों से बंधी हुई व्यवस्था होती है। मेरी कोई मर्जी कोई कानूनों में बहुत, नियमों में, सिद्धांतों में बांधने की नहीं है। क्योंकि उन्हीं सबके खिलाफ मैं लड़ रहा हूं। उन्हीं सबके तो संगठन सारी दुनिया में खड़े हुए हैं। हम एक और संगठन वैसा खड़ा कर दें!

निश्चित ही संगठन में ज्यादा एफिशिएंसी होती है, ज्यादा कुशलता होती है। उतनी समूह में कुशलता नहीं हो सकती। लेकिन कुशलता के मूल्य पर स्वतंत्रता खोना बहुत कीमती सौदा करना है। लोकतंत्र उतना कुशल नहीं होता जितनी तानाशाही होती है। लेकिन कुशलता को खोया जा सकता है, स्वतंत्रता को नहीं खोया जा सकता है।

मित्रों के समूह का अर्थ है कि यह स्वतंत्र व्यक्तियों का मिलन है उनकी स्वेच्छा से। इसमें यदि कोई छोटे-मोटे कानून और व्यवस्थाएं होंगी, तो वे भी व्यक्तियों से नीचे होंगी, उनके ऊपर नहीं हो सकती हैं। वे कामचलाऊ होंगी, वे हमारा लक्ष्य नहीं हो सकती हैं। हम उन्हें किसी भी क्षण तोड़ने के लिए हमेशा स्वतंत्र हैं। वे किसी भी क्षण हमें तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकती हैं। वे कानून भी होंगे तो वे हमारे लिए होंगे, हम कानून के लिए नहीं हो सकते हैं, यह ध्यान में रख लेना जरूरी है।

अब मित्र सोचते हैं कोई विधान हो।

निश्चित ही कोई विधान होना चाहिए। लेकिन जैसे विधान होते हैं संगठनों के वैसे नहीं। यह ध्यान में रख कर ही विधान होना चाहिए कि वह मित्रों के एक समूह का विधान है जो अत्यंत कामचलाऊ है। उसका उपयोग है इसलिए उसको बना लिया है, लेकिन उससे बंधने का कोई हमारा आग्रह नहीं है। उसे हम किसी भी क्षण फेंक सकते हैं और जला सकते हैं। और विधान चाहे कितना भी कीमती हो, उस विधान से हमारा एक-एक मित्र ज्यादा कीमती है, यह ध्यान में होना जरूरी है। क्योंकि इन्हीं मित्रों के लिए वह विधान बनाया गया है, उस विधान के लिए ये मित्र इकट्ठे नहीं किए गए हैं। इसलिए एक-एक व्यक्ति का मूल्य और एक-एक व्यक्ति की गरिमा शेष रह सके, ऐसा एक समूह खड़ा करना है।

निश्चित ही जितने अधिक व्यक्ति होंगे उतने भिन्न चित्त, उतने भिन्न विचार, उतने भिन्न उनके सोचने-समझने के ढंग होंगे। जितना बड़ा समूह होगा मित्रों का उतनी ही विभिन्नता स्वाभाविक है। इसलिए एकरूपता पैदा करने की बहुत चेष्टा हमें नहीं करनी चाहिए, अन्यथा फिर संगठन खड़ा होना शुरू हो जाता है। और एकरूपता की जितनी हम कोशिश करते हैं उतना ही व्यक्तित्व, उसकी गरिमा, उसकी स्वतंत्रता, सब नष्ट होनी शुरू हो जाती है।

एकरूपता की बहुत चिंता नहीं, बल्कि सब मित्रों के प्रति सम्मान, उनके भिन्न विचारों के प्रति भी। क्योंकि मेरी सारी दृष्टि यही है कि सारे मुल्क में स्वतंत्र चिंतन पैदा हो सके। तो स्वतंत्र चिंतन जो लोग पैदा करना चाहते हैं, अगर वे भीतर ही परतंत्र चिंतन से बंध जाएंगे, तो खतरा होगा।

इसलिए मेरे प्रति भी इस मित्रों के समूह की कोई श्रद्धा नहीं होनी चाहिए। मेरे प्रति भी कोई श्रद्धा का भाव नहीं होना चाहिए। मेरे प्रति भी विचार का और विवेक का भाव होना चाहिए। मैं जो कहता हूं, वह ठीक लगता हो, प्रीतिकर मालूम होता हो, उपयोगी मालूम होता हो, तो उसे लोगों तक पहुंचा देना है। मैं कहता हूं इसलिए पहुंचा देना है, ऐसी भूल में नहीं पड़ जाना चाहिए। व्यक्ति के केंद्र पर भी मित्रों का समूह निर्भर नहीं होना चाहिए कि एक व्यक्ति पूजा का केंद्र बन जाए--मैं या कोई भी दूसरा। न हमारी कोई पूजा है, न हम किसी के अनुयायी हैं, न हमारा कोई नेता है। हमें तो सामूहिक रूप से एक विचार, एक संदेश प्रीतिकर लगता है, ऐसा लगता है कि अधिकतम लोगों तक पहुंच जाए तो उनका मंगल होगा, इसलिए हम मित्र इकट्ठे हुए हैं और उसको पहुंचा देना चाहते हैं।

तो पहली बात यह है कि संगठन के संबंध में थोड़ा विचार करेंगे। संगठन हमें नहीं बनाना है, एक मित्रों का समूह भर बनाना है। और इन दोनों के बीच जो बारीक भेद है, वह समझने की कोशिश करेंगे। और हरेक मित्र का यह कर्तव्य होगा कि वह संगठन बनने से बचा सके इस संस्था को। यह मेरे अकेले के हाथ में नहीं है। मैं कह सकता हूं, लेकिन यह मेरे अकेले के हाथ में नहीं है। और बहुत सजग हम न रहे तो यह खतरा है कि यह संगठन बन जाए! बहुत सजग रहने की जरूरत है और बहुत होश से प्रयोग करने की जरूरत है कि यह संगठन न बन जाए! संप्रदाय बनने के कुछ अनजाने रास्ते होते हैं, पता भी नहीं चलता और वह बनना शुरू हो जाता है। तो उस पर ध्यान रखने की जरूरत है। और पूर्व से हम सचेत रहे तो शायद हम वैसी व्यवस्था कर सकें कि वह न बन पाए। एक तो यह विकल्प है।

दूसरा विकल्प यह है कि इस बात से अगर हम डर जाएं कि संगठन न बन जाए, संप्रदाय न बन जाए, इसलिए कुछ करना ही नहीं है, तो दूसरा खतरा शुरू हो जाता है। फिर कुछ करना नहीं है, तो जो बात पहुंचानी है उसे पहुंचाना असंभव है। तब फिर वह मेरे अकेले कंधों पर रह जाती है बात कि मैं जितना दौड़ सकूं उतना लोगों तक पहुंचा दूं। वह मैं करता रहूंगा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

लेकिन वही बात बहुत लोगों तक पहुंच सकती है, जितने अधिक मित्रों का सहयोग होगा उतने दूर तक पहुंच सकती है, उतनी सरलता से पहुंच सकती है। और आज इतनी सुविधाएं उपलब्ध की हैं विज्ञान ने, समाज की प्रगति ने कि हम नासमझ होंगे कि उनका उपयोग न कर सकें। हम गलती में होंगे अगर उनका उपयोग न कर सकें। अब जैसे मैं यहां बोल रहा हूं। माइक हम न लगाएं तो भी काम चलेगा, मैं बोलूंगा तो भी शायद आप तक बात पहुंचेगी, लेकिन शायद इतने ठीक से नहीं पहुंच पाएगी। अभी थोड़े हैं तो पहुंच भी जाए, ज्यादा भीड़ होगी तो नहीं पहुंच पाएगी। माइक का हम उपयोग कर रहे हैं तो वह दूर तक पहुंच रही है।

आज तो इतने साधन उपलब्ध हुए हैं कि उन सबका उपयोग किया जाए तो एक व्यक्ति जीवन में उतना काम कर सकता है जितना बुद्ध या महावीर पच्चीस जीवन में भी करना चाहते तो नहीं कर सकते थे। बुद्ध और महावीर की मजबूरी थी, जो उनके पास उपलब्ध थे साधन उनका उपयोग करके जितना उन्होंने श्रम किया वह बहुत है। लेकिन अगर वैसा ही श्रम आज के जमाने में किसी से करवाया जाए तो निपट नासमझी होगी। आज तो बहुत साधन सुलभ हैं, उन सबका उपयोग हो सकता है। और एक आदमी जीवन में इतना काम कर सकता है जिसके लिए अगर वह चार सौ साल जीए और बिना साधन के मेहनत करे तो भी नहीं कर पाएगा।

तो उन सारे साधनों का हम उपयोग कर सकें, इसके लिए विचार करना जरूरी है। यह मेरे अकेले के वश की बात नहीं है, उसके लिए बहुत मित्रों की जरूरत है, बहुत प्रकार के मित्रों की जरूरत है। कोई श्रम कर सकता है, कोई बुद्धि से विचार कर सकता है, कोई धन की व्यवस्था कर सकता है, कोई और तरह के... जो जिसकी सूझ, जो जिसका व्यक्तित्व हो उस तरह से सहयोगी हो सकता है।

यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि यह मित्रों का वर्ग जितना बड़ा हो उतना अच्छा है। क्योंकि उतने ही अधिक तरह के, भिन्न तरह के लोग आएंगे और भिन्न तरह का अनुदान, दान कर सकेंगे। भिन्न तरह की सेवाएं, भिन्न तरह का उनका सहयोग, और काम को ज्यादा समृद्ध बना सकेंगे।

अक्सर यह होता है कि मित्रों की सीमाएं तय हो जाती हैं। अपरिचित लोगों से एक भय होता है मन में, स्ट्रेंजर से थोड़ा भय होता है--कि पता नहीं यह क्या गड़बड़ करेगा भीतर आने पर! तो आमतौर से यह हो जाता है कि दस-पच्चीस मित्र जब कहीं इकट्ठे हो जाते हैं तो वे एक घेरा बना लेते हैं। और फिर नये लोगों को भीतर आने में उनको थोड़ा डर होने लगता है। यह डर होता है कि कहीं यह नया आदमी कोई गड़बड़ न कर दे।

यह डर तो स्वाभाविक है। यह कामना और भावना भी अच्छी है कि नया आदमी कोई गड़बड़ न कर दे। लेकिन एक नये आदमी से पच्चीस पुराने आदमियों का डरना बड़ी कमजोरी की बात है। सोचना यह चाहिए कि एक नये आदमी को हम पच्चीस बदलने की कोशिश करेंगे या एक नया आदमी हम पच्चीस को बदल देगा? और

अगर हम पच्चीस इतने कमजोर हैं कि एक नया आदमी बदल देगा, तो बदल ही देना चाहिए, इसमें हर्ज भी क्या है! इसमें बुराई भी क्या है!

हमेशा यह होता है कि जब भी कोई वर्ग इकट्ठे होने शुरू होते हैं तो एक दायरा बन जाता है। फिर उस दायरे के बाहर के आदमी और उनके बीच में एक फासला हो जाता है। अनजाने होता है, कोई जान कर यह नहीं करता है। ये मन के स्वाभाविक नियम हैं। अगर आप किसी अजनबी गांव में चले जाएं और आपके साथ दो-चार मित्र वहां हों, तो शायद आप उस अजनबी गांव में मित्र ही नहीं बनाएंगे। वह दो-चार मित्र के घेरे में ही आप घिरे रह जाएंगे और उससे बाहर नहीं निकलेंगे। मजबूरी आ जाए कि आप अकेले पड़ जाएं तो बात दूसरी है, शायद आपको मित्र बनाना पड़ें, नहीं तो आप मित्र नहीं बनाएंगे।

तो हर समूह सीमित होने की प्रवृत्ति से भरा रहता है। एक टेंडेंसी होती है कि वह सीमित हो जाता है। और सीमा में एक तरह की सुरक्षा, सिक्योरिटी मालूम होती है--सब परिचित हैं, सब ठीक है; जो हमें पसंद है वह सबको पसंद है। कोई अजनबी आदमी भीतर आए, नई बातें कहे, कोई उपद्रव करे।

इसका भय छोड़ देना चाहिए। अगर काम को व्यापक और विराट बनाना हो तो इस बात का भय छोड़ देना चाहिए। फिकर इस बात की करनी चाहिए कि हम इतने एकोमोडेटिव हों, हमारा हृदय इतना विस्तीर्ण हो और बांहें हमारी इतनी दूर तक फैलती हों कि विपरीत से विपरीत व्यक्ति को भी हम धीरे-धीरे समायुक्त कर लेंगे। छोड़ेंगे हम एक को भी नहीं। जो हमसे बिल्कुल भिन्न है, उसको भी हम अपने भीतर जगह बना लेंगे, और उसकी उपयोगिता भी खोज लेंगे कि वह हमारे किस काम में आ सके।

गांधीजी ने एक प्रयोग इस संबंध का, पीछे इस मुल्क में एक बड़ा प्रयोग किया। हिंदुस्तान के कितने विरोधी और भिन्न लोगों को उन्होंने एक साथ इकट्ठा कर लिया। एकदम भिन्न लोगों को, जिनके बीच आपस में कोई मतैक्य नहीं हो सकता था; वे लोग भी एक घेरे के भीतर आ गए और किसी विराट कार्य के लिए सहयोगी बन गए।

अगर कोई यह सोचे कि भिन्न मत के, भिन्न दृष्टि के, भिन्न व्यक्तित्व के लोग भीतर न आएं, तो फिर काम बड़ा नहीं हो सकता, बहुत छोटा रह जाएगा। कोई छोटी सी नदी रह जाएगी फिर, अगर वह यह सोचे कि हर दूर से आने वाला नाला और नदी मुझसे न मिले। पता नहीं किन कीचड़ को ले आए! कौन से द्रव्य ले आए! कौन से खनिज ले आए! अच्छा पानी हो कि बुरा हो! अगर ऐसा कोई नदी सोचने लगे तो फिर वह नाला ही रह जाएगी, फिर वह महानद नहीं बन सकती, फिर वह गंगा नहीं बन सकती। और गंगा बनना हो तो उसे सबको समाविष्ट कर ही लेना होगा। और यह सामर्थ्य होनी चाहिए कि सब समाविष्ट हो जाएं। इस संबंध में विचार करना जरूरी है कि हम अधिकतम लोगों को कैसे समाविष्ट कर सकें। हमें जगह बनानी पड़ेगी। भिन्न-भिन्न लोगों को कैसे हम भीतर प्रवेश दे सकें, कैसे उनके लिए काम खोज सकें, कैसे वे भी सहयोगी बन जाएं।

अब मुझे मुल्क में न मालूम कितने लोग आकर कहते हैं कि हम काम में सहयोगी बनना चाहते हैं। न मालूम कितने लोग पत्र लिखते हैं कि हमें कोई काम बताइए, हम काम में सहयोगी बनना चाहते हैं।

वह आपका जिम्मा है कि आप इन सारे मित्रों का उपयोग ले लें। और यह तो भूलें, भूल ही जाएं यह ख्याल कि कोई आदमी ऐसा हो सकता है जो किसी काम में ही न आ सके। ऐसा आदमी जमीन पर होता ही नहीं। आदमी तो बहुत दूर हैं, पशु-पक्षी भी सहारे बन जाते हैं, उनका सहारा भी काम बन सकता है। ऐसा तो कोई आदमी है ही नहीं जो किसी न किसी काम का न हो। निकम्मा कोई भी आदमी पृथ्वी पर नहीं है जिससे कुछ काम न लिया जा सके!

तो कोई भी आदमी उत्सुक होता हो, हम उससे क्या काम ले सकते हैं, इसकी हम फिकर करें। अगर हम इस बात की फिकर करें कि वह आदमी ऐसा है, वह आदमी वैसा है, तो फिर बहुत मुश्किल है। फिर अगर हम जांच-जांच कर आदमियों का निर्णय करने बैठेंगे... एक तो हम निर्णायक हो नहीं सकते किसी के; और अगर हम निर्णय करने बैठेंगे तो इसमें काम को कितना धक्का पहुंचेगा, इसकी हम कल्पना ही नहीं कर सकते।

गांधीजी के आश्रम में एक आदमी आता था। और लोगों ने शिकायत की कि यह आदमी बहुत बुरा है, शराब पीता है, फलां करता है, ढिकां करता है। गांधी सुनते रहे। मित्र बहुत परेशान हो गए कि ये गांधी उसको मना नहीं करते हैं, उसको निकट लेते चले जा रहे हैं। और वह आदमी धीरे-धीरे अकड़ कर आश्रम में प्रविष्ट होता है, अब उसका भय भी विलीन हो गया है। एक दिन आखिर लोगों ने आकर कहा--गांधी के बहुत निकट के लोगों ने--कि बहुत हद्द हो गई यह बात, आज हमने उस आदमी को शराबखाने में अपनी आंखों से बैठे देखा है। और आपके खादी के कपड़े पहने हुए वह वहां शराब पीए, यह बहुत बदनामी की बात है। ऐसे आदमी का आश्रम में आना बहुत बुरा है, इससे आश्रम बदनाम होगा।

गांधी ने कहा, हमने आश्रम खोला किसके लिए है? अच्छे लोगों के लिए? तो बुरे लोग कहां जाएंगे? और जो अच्छे ही हैं उनके लिए आश्रम में आने की जरूरत क्या है! मैं हूं किसलिए यहां? किनके लिए हूं? और फिर दूसरी बात यह कि तुम कहते हो कि वह खादी पहने वहां बैठा हुआ है इसलिए लोग क्या सोचेंगे। अगर मैं उसे वहां देखता तो अपने हृदय से लगा लेता। क्योंकि मेरे मन में पहला ख्याल यही उठता कि आश्चर्य की बात है, दिखता है मेरी बात लोगों तक पहुंचने लगी, जो आदमी शराब पीता है वह भी खादी पहनना शुरू कर दिया है! तुम यह देख रहे हो कि जो खादी पहने हुए है वह शराब पी रहा है। मैं देखता कि जो शराब पी रहा है उसने भी खादी पहननी शुरू कर दी। तो बहुत देर नहीं है कि यह आदमी शराब भी छोड़ दे। इसमें फर्क होना शुरू हो गया है। इसने हिम्मत तो की है, खादी तो पहनी! इसके मन में प्रेम का तो जन्म हो गया, बदलाहट की शुरुआत हो गई।

अब यह आदमी दोनों तरह से देखा जा सकता है। ऐसे भी देखा जा सकता है कि खादी पहन कर शराब पी रहा है। तब मन होगा कि आश्रम से निकाल कर इसको बाहर करो। और ऐसा भी देखा जा सकता है कि शराब पीने वाला खादी पहने हुए है। तब ऐसा होगा, आश्रम में इसका स्वागत करो।

अगर इस आश्रम को बड़ा बनना है और वृहतजन तक पहुंचना है, तो फिर दूसरी तरह से ही देखना होगा, पहली तरह से नहीं देखना होगा। तब जो भी आदमी हमारे निकट आता है, उसमें क्या अच्छा है, वह किस तरह सहयोगी होता है, इसी भाव से देखना होगा। और मैं आपसे यह भी कह दूं कि जिस आदमी को हम अच्छे भाव से देखना शुरू कर देते हैं, हम उस आदमी को अच्छे होने की तरफ इतना बल देते हैं जिसकी कोई कीमत, कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता।

अगर बीस अच्छे आदमी एक बुरे आदमी को अच्छा मानने की तरफ ध्यान देना शुरू करते हैं, उस आदमी का बुरा होना कठिन और मुश्किल हो जाता है। लेकिन जब सारी दुनिया किसी आदमी को बुरा कहने लगती है, तो बुरे होने की उसे सुविधा हो जाती है। एक आदमी चोर हो और अगर एक आदमी विश्वास कर ले उस पर कि वह चोर नहीं है, उसकी चोरी करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। क्योंकि ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जो किसी हृदय के अच्छे भाव का आदर न करता हो। अगर एक चोर हमारे बीच आ जाए और हम इतने सारे लोग यह विश्वास कर लें कि वह भला आदमी है, वह आदमी यहां चोरी नहीं कर सकता है। यह कानून के विपरीत ही है, यह असंभव है। क्योंकि इतने लोगों ने जो उसे आदर दिया है इसे ठुकराने के लायक कोई ऐसी चीज नहीं हो सकती जो इससे ज्यादा मूल्यवान हो जिसको चुरा लिया जाए।

एक-एक आदमी के मन में अच्छे होने का भाव है, लेकिन उसे कोई अच्छा माने तब! और जब कोई उसे अच्छा मानने को मिल जाता है तो उसके भीतर क्या जग जाता है, इसका हमें कोई ख्याल नहीं।

एक अमरीकी अभिनेत्री ग्रेटागार्बो का नाम आपने सुना होगा। वह यूरोप के एक छोटे से देश में एक गरीब घर में पैदा हुई। और एक बाल बनाने के सैलून में दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती रही जब तक उन्नीस वर्ष की थी। दो पैसे में दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम नाई की दुकान में करती रही। एक अमरीकी यात्री ने--वह उसकी दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी--और आईने में उसका चेहरा देखा और कहा कि बहुत सुंदर है! बहुत सुंदर है!

ग्रेटा ने उससे कहा, क्या कहते हैं आप? मुझे आज छह वर्ष हो गए लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाते, किसी ने मुझसे कभी नहीं कहा कि मैं सुंदर हूं। आप कहते क्या हैं? मैं सुंदर हूं?

उस अमरीकन ने कहा, बहुत सुंदर! मैंने बहुत कम इतनी सुंदर स्त्रियां देखी हैं।

ग्रेटागार्बो ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः मैं उसी दिन पहली दफा सुंदर हो गई। एक आदमी ने मुझे सुंदर कहा था। मुझे खुद भी ख्याल नहीं था। मैं उस दिन घर लौटी और आईने के सामने खड़ी हुई और मुझे पता लगा कि मैं दूसरी औरत हो गई हूं!

वह लड़की जो उन्नीस साल की उम्र तक केवल साबुन लगाने का काम करती रही थी, वह अमरीका की बाद में श्रेष्ठतम अभिनेत्री साबित हुई। और उसने जो धन्यवाद दिया, उसी अमरीकी को दिया, जिसने उसे पहली दफा सुंदर कहा था। उसने कहा कि अगर उस आदमी ने उस दिन वे दो शब्द न कहे होते तो शायद मैं जीवन भर वही साबुन लगाने का काम करती रहती। मुझे ख्याल ही नहीं था कि मैं सुंदर भी हूं। और हो सकता है उस आदमी ने बिल्कुल ही सहज कहा हो। हो सकता है उस आदमी ने सिर्फ शिष्टाचार में कहा हो। और हो सकता है उस आदमी ने कुछ ख्याल ही न किया हो, सोचा भी न हो कि मैं यह क्या कह रहा हूं, बिल्कुल कैजुअल रिमार्क रहा हो। और उसे पता भी न हो कि मेरे एक शब्द ने एक स्त्री के भीतर सौंदर्य की प्रतिमा को जन्म दे दिया है। वह जाग गई, उसके भीतर जो चीज सोई थी।

जिन लोगों से काम लेना हो उनके भीतर जो सोया है उसे जगाना जरूरी है। इसलिए वे जो हैं, इस पर ध्यान देने की कम जरूरत है; वे जो हो सकते हैं, इस पर ध्यान देने की ज्यादा जरूरत है; अगर मित्रों से कोई बड़ा काम लेना हो। नहीं तो काम नहीं लिया जा सकता। अगर मैं कभी मित्रों को कहता हूं कि फलां आदमी से काम लो। मुझे बता दिया जाता है कि वह आदमी बुरा है, वह आदमी बेईमान है, या उस आदमी का भरोसा नहीं किया जा सकता।

यह ठीक है कि आदमी बुरा है, आदमी बेईमान है। कौन आदमी बुरा नहीं? कौन आदमी बेईमान नहीं? लेकिन वह आदमी क्या हो सकता है, सवाल यह है। वह क्या है, यह सवाल ही नहीं है। हमें उसके भीतर उसको पुकार लेना है जो वह हो सकता है, अगर उससे कोई बड़ा काम लेना हो।

गांधीजी के आश्रम में कृपलानी भोजन बनाते रहे, रसोइये का काम करते रहे। एक अमरीकी पत्रकार आश्रम में ठहरा हुआ था। उसने पूछा कि यह आदमी जे.बी.कृपलानी मालूम होता है जो खाना बनाता है आपका!

कृपलानी बर्तन साफ करते थे, उन्होंने कहा कि यह जो बूढ़ा है, अदभुत है! असल में मैं रसोइये के योग्य ही था। और इस आदमी ने मेरे भीतर वह जगा दिया जिसका कोई हिसाब नहीं!

छोटे-छोटे आदमी के भीतर जादू घटित हो सकता है। एक दफा हम उसे पुकारें और उसकी आत्मा में जो सोया है उसे निकट लाएं, उस पर विश्वास करें। उसके भीतर जो सोया है उसको आवाज दें, उसको चुनौती खड़ी करें। उसके भीतर बहुत कुछ निकल सकता है। और एक बड़े से बड़े आदमी को हम निराश कर सकते हैं। एक श्रेष्ठतम व्यक्ति को हम कह सकते हैं कि तुम कुछ भी नहीं हो। और अगर दस-पांच दफा सब तरफ से उसे यही सुनाई पड़े कि वह कुछ भी नहीं है, तो निश्चित मानना वह कुछ भी नहीं हो जाएगा।

तो एक बड़े पैमाने पर अगर मुल्क में कोई एक आध्यात्मिक क्रांति करनी हो... और वह करनी जरूरी है और होनी चाहिए। और अगर हम उसके लिए सिर्फ रास्ता भी साफ कर सकें, तो कोई आगे कर लेगा। इससे क्या फर्क पड़ता है कि हम ही उसको करें! वह हमसे ही हो जाए, यह भी सवाल नहीं है। लेकिन अगर हम रास्ता भी साफ कर दें जिस पर पीछे कोई क्रांति गुजर जाएगी, तो भी काफी है, बात हो गई। पर उसको करनी हो अगर तो बहुत व्यापक समूह बनाना जरूरी है।

संगठन कभी बहुत व्यापक नहीं हो सकता, मित्रों का समूह बहुत व्यापक हो सकता है। क्योंकि उसमें विभिन्नता के लिए स्वीकृति है, उसमें जोर-जबर्दस्ती नहीं है बांधने की किसी को। उसमें सबके लिए मुक्ति है,

कोई बंधा हुआ नहीं है। और जहां भी ऐसा मालूम होने लगता है कि हम बंधे हैं, वहीं श्रेष्ठ आदमी को कठिनाई शुरू हो जाती है। कोई श्रेष्ठ चेतना बंधना नहीं चाहती है। छोटे लोग ही सिर्फ बंधना चाहते हैं। जिनके भीतर एकदम क्षुद्र ही क्षुद्र है वे ही बंधने में रस लेते हैं, नहीं तो कोई बंधना नहीं चाहता।

इसलिए इतना खुला रखना है कि भीतर कोई आए तो उसे ऐसा लगे ही नहीं कि वह कहीं आया, कहीं बंध गया; वह मुक्त अनुभव करे। वह भीतर आए या बाहर जाए, उसे फर्क न मालूम पड़े कि कोई भेद पड़ गया है। ऐसा यह समूह बन सके, यह मित्रों का एक दल बन सके; व्यापक बन सके। क्योंकि क्रांति कितनी बड़ी है, यह प्रथम रूप से जो लोग उस क्रांति के लिए इकट्ठे होते हैं उनको पता ही नहीं होता।

लेनिन के साथियों को कोई पता नहीं था कि उन्नीस सौ सत्रह में जो हुआ वह सारी दुनिया में इतना अनूठा काम बनेगा। वोल्टेयर या उसके मित्रों को भी पता नहीं था कि फ्रेंच क्रांति क्या ले आएगी। गांधी और उनके मित्रों को भी कोई पता नहीं था कि क्या होगा, क्या नहीं होगा। क्राइस्ट को तो बिल्कुल ही पता नहीं हो सकता था कि यह जो बात शुरू हो रही है... आठ मित्र थे केवल क्राइस्ट के। और वे भी बहुत बेपढ़े-लिखे लोग, गंवार लोग थे। कोई बढ़ई था, कोई चमार था, कोई मछुवा था। कोई पढ़े-लिखे लोग नहीं थे। क्राइस्ट को तो कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि इतनी बड़ी क्रांति फैलेगी कि एक दिन आधी पृथ्वी क्राइस्ट के संदेश के प्रति आदरपूर्ण हो जाएगी। इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी।

कौन से बीज कितने बड़े वृक्ष बन जाएंगे, इसकी कोई कल्पना प्राथमिक रूप से बोने वालों को कभी नहीं होती। अगर उन्हें होती, तो शायद काम कितना सुंदर हो जाता, इसका कभी हम ख्याल भी नहीं कर सकते।

जैसे-जैसे मैं मुल्क के अधिकतम लोगों से मिला हूं, यह अहसास होना शुरू हुआ है कि यह तो बहुत बड़ा वट-वृक्ष बन सकता है। इस वृक्ष के नीचे हजारों लोगों को छाया मिल सकती है। यह तो इतना बड़ा झरना बन सकता है कि लाखों लोग उससे अपनी प्यास बुझा लें। लेकिन आज कोई ख्याल नहीं हो सकता उन मित्रों को जो प्राथमिक रूप से इकट्ठे हुए हैं। अगर उनको यह ख्याल आ जाए तो शायद वे बहुत विचार कर काम करना शुरू कर दें।

अभी मैं एक वैज्ञानिक किताब पढ़ता था। वे रूस में कोई रास्ते बना रहे हैं, तो वे सौ साल बाद का विचार करते हैं कि सौ साल बाद इन रास्तों पर कितने लोग चलेंगे, उतना चौड़ा रास्ता बनाते हैं। सौ साल बाद कितने लोग निकलेंगे इस रास्ते पर से, उसके हिसाब से रास्ते की चौड़ाई बनाते हैं।

एक हम भी हैं, हमारे मुल्क में हम भी रास्ता बनाते हैं। हम दो साल बाद कितने लोग निकलेंगे, इसका भी ख्याल नहीं रखते। हर दो साल बाद रास्ता तोड़ना पड़ता है कि फिर थोड़ा जोड़ो, फिर थोड़ा जोड़ो। हर पांच साल में हमको पता चलता है कि ट्रैफिक ज्यादा हो गया, रास्ता छोटा हो गया।

हम अंधे लोग हैं क्या? हमको इतना अंदाज नहीं है कि पांच साल बाद कितने लोग निकलेंगे इस रास्ते से? अदभुत कौमें हैं जो सौ साल बाद का विचार करती हैं कि सौ साल बाद कितने लोग होंगे इस गांव में, कितनी आबादी होगी, कितने बड़े रास्ते सौ साल बाद जरूरी होंगे, अभी से बना लेना उचित है। जो लोग इतना दूरगामी सोचते हैं उनके काम में एक सरलता और सहजता उत्पन्न होती है और बार-बार की कठिनाइयां कम हो जाती हैं।

अभी तो मित्रों का समूह छोटा है, लेकिन दस साल में यह इतना बड़ा हो सकता है जिसकी आप कोई कल्पना नहीं कर सकते। और उसको ध्यान में रख कर कुछ काम करना है, उतना चौड़ा रास्ता बनाना है। अनजान, अपरिचित लोग दस साल बाद इस रास्ते पर चलेंगे। हो सकता है आप न हों, मैं न होऊं, कोई न हो, इस रास्ते पर कोई चलेगा। तो उसको ध्यान में रख कर अगर हम काम करते हैं... और हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम बहुत मूल्य के नहीं हैं, मूल्य उस रास्ते का है जिस पर हम अपने जीवन को लगा देते हैं। और वह जो रास्ता बन जाता है, अगर वह बड़ा बन जाता है तो बहुत लोग उस पर चल सकते हैं।

तो इन सारी बातों पर विस्तार में विचार करना जरूरी है। ये तो मैंने कुछ मुद्दे की बातें कहीं कि इनके आस-पास हम सोचेंगे इन दिनों में। और इन पर विस्तार में, डिटेल्स में, एक-एक बात पर--क्या किया जा सकता है, क्या नहीं किया जा सकता है--वह सब विचार कर लेना जरूरी है। विस्तार में मेरी समझ बहुत कम है, उसमें आपकी समझ मुझसे ज्यादा है। मैं कुछ केंद्र की बात आपसे कह सकता हूं कि इस केंद्र पर चिंतन किया जाए, लेकिन विस्तार में शायद मेरी समझ नहीं के बराबर है--कि वह कैसे हो, कितने लोग करें, कितना धन जरूरी हो, कितनी शक्ति जरूरी हो, कितना श्रम लगे--वह शायद आप मुझसे ज्यादा जानते हैं। वह व्यावहारिक रूप से कैसे कितनी दूर तक पहुंचाई जाए, वह निश्चित ही आप मुझसे ज्यादा जानते हैं। मुझे उसका क ख ग भी पता नहीं है। इसलिए सोचा कि मैं अपनी बात आपसे कह दूंगा और आपकी बात भी सुनूंगा और उस बीच उन दोनों बातों के मेल से कुछ बन सकेगा।

मैं आपको थोड़ी सी आकाश की बातें कह सकता हूं, लेकिन पृथ्वी की बातों का मुझे बहुत पता नहीं है। और अकेले आकाश की बातों का कोई बहुत मूल्य नहीं होता। जड़ें तो जमीन में जानी पड़ती हैं, उन्हें तो पृथ्वी से पानी पाना पड़ता है, रस खींचना पड़ता है। तो आकाश में कैसे वृक्ष फैल सकता है, उसमें कैसे फूल आ सकते हैं, उनकी बात मैं करूंगा। जड़ों के संबंध में आप थोड़ा सोचना। और स्मरण रखना कि फूल उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी जड़ें महत्वपूर्ण हैं; फूल जड़ों पर ही निर्भर होते हैं। तो क्या हम इस काम के लिए कौन सी रूट्स, कौन सी जड़ें दे सकते हैं कि यह वृक्ष बड़ा हो सके।

मैं अपना सारा श्रम, अपनी सारी शक्ति, वह बड़ा हो या न हो, तो भी दूंगा ही, दे ही रहा हूं। वह मेरे लिए कोई काम नहीं, मेरा आनंद है। उसमें कोई संगी-साथी नहीं होगा तो कोई फर्क नहीं पड़ता, वह काम वैसा ही चलता रहेगा। लेकिन अगर उसमें संगी-साथी हुए तो वह काम बहुत बड़ा हो सकता है, बहुत दूर तक पहुंच सकता है, अनेक लोगों तक पहुंच सकता है।

इन थोड़ी सी बातों पर मैंने यह बात कही, इस पर आप थोड़ा सोचें--डिटेल्स के लिए, वह विस्तार के लिए कि क्या हो सकता है, कैसे हो सकता है। बहुत खुले मन से सोचें और उस पर हम यहां विचार करें। कल सुबह हम आप सबके मत आमंत्रित हैं, उनको आप कहें, उन पर सोचें, कुछ निर्धारित करें।

यह तो छोटा शिविर लिया है। फिर ख्याल यह है कि पूरे मुल्क के जो मेरे मित्र हैं, जो इस काम में उत्सुक हुए हैं, उन सबका एक शिविर हो। अभी तो प्रयोग के लिए, ताकि थोड़े से लोग ज्यादा आसानी से सोच सकेंगे। ज्यादा लोग होंगे तो शायद कठिनाई पड़ेगी। तो हम सोचें। फिर एक बड़ा शिविर हो, जिसमें पूरे मुल्क से मित्र इकट्ठे हो जाएं। उनका आपस में भी मिलना जरूरी है। उनकी एक-दूसरे से पहचान होनी भी जरूरी है। वे अपनी-अपनी जगह पर काम कर रहे हैं, उनके काम के लिए आपका सहयोग और सदभावनाएं जरूरी हैं। वे वहां अकेले न मालूम पड़ें, उन्हें ऐसा लगे कि और भी मित्र हैं पूरे मुल्क में। वे कहीं अकेले नहीं खड़े हुए हैं, कोई साथी उनके हैं। जरूरत पड़ेगी तो वे साथ देंगे, सुझाव देंगे। वहां काम की जरूरत होगी तो वहां पहुंच कर कुछ करेंगे।

अभी राजकोट में मित्रों ने मुझसे कहा कि हम उन नगरों में जाकर आपकी बात पहुंचाना चाहते हैं जहां आप अभी नहीं गए हैं और वहां भूमिका खड़ी करना चाहते हैं ताकि आप वहां जा सकें।

यह बात जरूरी हो गई है। मैं एक नये नगर में जाता हूं, दस-पच्चीस, सौ दो सौ, हजार पांच सौ लोग सुनते हैं। अगर वहां भूमिका बन सके पहले से तो वहां दस हजार लोग सुन सकते हैं, पचास हजार लोग सुन सकते हैं।

तो जगह-जगह मित्र अलग-अलग सुझाव देते हैं। उनके सुझाव महत्वपूर्ण हैं, उपयोग के हैं। वे सारे मित्र पीछे इकट्ठे हों और विचार कर सकें, उसके लिए भी यहां, इससे भूमिका बन जाएगी।

तो अभी तो और ज्यादा नहीं कहूंगा। फिर विस्तार में कल सुबह से हम बात शुरू करेंगे। और आप यहां सुनने नहीं आए हैं, यह ध्यान में रहे। यह कोई मेरी चर्चाओं के लिए आयोजन नहीं है। यह मैंने जो इतनी बात भी की वह इसीलिए ताकि आप बोल सकें--यह मेरा बोलना नहीं है--ताकि आप विचार कर सकें। और सामूहिक विचार से और सामूहिक चिंतन से कुछ निष्पत्तियां हम लें, इन दो दिनों में इस तरफ ख्याल है, ताकि हम कुछ निश्चित निष्कर्ष लेकर चल सकें और उन पर कुछ काम हो सके।

बस, इतना ही।

दूसरा प्रवचन

एक एक कदम

कोई दो सौ वर्ष पहले, जापान में दो राज्यों में युद्ध छिड़ गया था। छोटा जो राज्य था, भयभीत था; हार जाना उसका निश्चित था। उसके पास सैनिकों की संख्या कम थी। थोड़ी कम नहीं थी, बहुत कम थी। दुश्मन के पास दस सैनिक थे, तो उसके पास एक सैनिक था। उस राज्य के सेनापतियों ने युद्ध पर जाने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि यह तो सीधी मूढ़ता होगी; हम अपने आदमियों को व्यर्थ ही कटवाने ले जाएं। हार तो निश्चित है।

और जब सेनापतियों ने इनकार कर दिया युद्ध पर जाने से... उन्होंने कहा कि यह हार निश्चित है, तो हम अपना मुंह पराजय की कालिख से पोतने जाने को तैयार नहीं; और अपने सैनिकों को भी व्यर्थ कटवाने के लिए हमारी मर्जी नहीं। मरने की बजाय हार जाना उचित है। मर कर भी हारना है, जीत की तो कोई संभावना मानी नहीं जा सकती। सम्राट भी कुछ नहीं कह सकता था, बात सत्य थी, आंकड़े सही थे। तब उसने गांव में बसे एक फकीर से जाकर प्रार्थना की कि क्या आप मेरी फौजों के सेनापति बन कर जा सकते हैं?

यह उसके सेनापतियों को समझ में ही नहीं आई बात। सेनापति जब इनकार करते हों, तो एक फकीर को--जिसे युद्ध का कोई अनुभव नहीं, जो कभी युद्ध पर गया नहीं, जिसने कभी कोई युद्ध किया नहीं, जिसने कभी युद्ध की कोई बात नहीं की--यह बिल्कुल अव्यावहारिक आदमी को आगे करने का क्या प्रयोजन है?

लेकिन वह फकीर राजी हो गया। जहां बहुत से व्यावहारिक लोग राजी नहीं होते वहां अव्यावहारिक लोग राजी हो जाते हैं। जहां समझदार पीछे हट जाते हैं, वहां जिन्हें कोई अनुभव नहीं है, वे आगे खड़े हो जाते हैं। वह फकीर राजी हो गया। सम्राट भी डरा मन में, लेकिन फिर भी ठीक था। हारना भी था तो मर कर हारना ही ठीक था।

फकीर के साथ सैनिकों को जाने में बड़ी घबड़ाहट हुईः यह आदमी कुछ जानता नहीं! लेकिन फकीर इतने जोश से भरा था, सैनिकों को जाना पड़ा। सेनापति भी सैनिकों के पीछे हो लिए कि देखें, होता क्या है?

जहां दुश्मन के पड़ाव पड़े थे उससे थोड़ी ही दूर उस फकीर ने एक छोटे से मंदिर में सारे सैनिकों को रोका, और उसने कहा कि इसके पहले कि हम चलें, कम से कम भगवान को कह दें कि हम लड़ने जाते हैं और उनसे पूछ भी लें कि तुम्हारी मर्जी क्या है? अगर हराना ही हो तो हम वापस लौट जाएं और अगर जिताना हो तो ठीक।

सैनिक बड़ी आशा से मंदिर के बाहर खड़े हो गए। उस आदमी ने हाथ जोड़ कर आंख बंद करके भगवान से प्रार्थना की, फिर खीसे से एक रुपया निकाला और भगवान से कहा कि मैं इस रुपए को फेंकता हूं, अगर यह सीधा गिरा तो हम समझ लेंगे कि जीत हमारी होनी है और हम बढ़ जाएंगे आगे, और अगर यह उलटा गिरा तो हम मान लेंगे कि हम हार गए, हम वापस लौट जाएंगे, राजा से कह देंगे, व्यर्थ मरने की व्यवस्था मत करो; हमारी हार निश्चित है, भगवान की भी मर्जी यही है।

सैनिकों ने गौर से देखा, उसने रुपया फेंका। चमकती धूप में रुपया चमका और नीचे गिरा। वह सिर के बल गिरा था; वह सीधा गिरा था। उसने सैनिकों से कहा, अब फिकर छोड़ दो। अब ख्याल ही छोड़ दो कि तुम हार सकते हो। अब इस जमीन पर कोई तुम्हें हरा नहीं सकता। रुपया सीधा गिरा था। भगवान साथ थे। वे सैनिक जाकर जूझ गए। सात दिन में उन्होंने दुश्मन को परास्त कर दिया। वे जीते हुए वापस लौटे। उस मंदिर के पास उस फकीर ने कहा, अब लौट कर हम धन्यवाद तो दे दें!

वे सारे सैनिक रुके, उन सबने हाथ जोड़ कर भगवान से प्रार्थना की और कहा, तेरा बहुत धन्यवाद कि तू अगर हमें इशारा न करता जीतने का, तो हम तो हार ही चुके थे। तेरी कृपा और तेरे इशारे से हम जीते हैं।

उस फकीर ने कहा, इसके पहले कि भगवान को धन्यवाद दो, मेरे खीसे में जो सिक्का पड़ा है, उसे गौर से देख लो। उसने सिक्का निकाल कर बताया, वह सिक्का दोनों तरफ सीधा था, उसमें कोई उलटा हिस्सा था ही नहीं। वह सिक्का बनावटी था, वह दोनों तरफ सीधा था, वह उलटा गिर ही नहीं सकता था!

उसने कहा, भगवान को धन्यवाद मत दो। तुम आशा से भर गए जीत की, इसलिए जीत गए। तुम हार भी सकते थे, क्योंकि तुम निराश थे और हारने की कामना से भरे थे। तुम जानते थे कि हारना ही है।

जीवन में सारे कामों की सफलताएं इस बात पर निर्भर करती हैं कि हम उनकी जीत की आशा से भरे हुए हैं या हार के ख्याल से डरे हुए हैं। और बहुत आशा से भरे हुए लोग थोड़ी सी सामर्थ्य से इतना कर पाते हैं, जितना कि बहुत सामर्थ्य के रहते हुए भी निराशा से भरे हुए लोग नहीं कर पाते हैं। सामर्थ्य मूल्यवान नहीं है। सामर्थ्य असली संपत्ति नहीं है। असली संपत्ति तो आशा है--और यह ख्याल है कि कोई काम है जो होना चाहिए; जो होगा; और जिसे करने में हम कुछ भी नहीं छोड़ रखेंगे।

एक करोड़ की बात बड़ी मालूम पड़ सकती है इतने थोड़े से लोगों को। सीमित साधनों के मित्रों को बहुत बड़ी बात मालूम पड़ सकती है। वह बहुत बड़ी बात इसलिए मालूम पड़ती है कि एक करोड़ की संख्या को हम एकदम से गिनते हैं। एक करोड़ संख्या बहुत बड़ी है!

एक घटना मुझे याद आती है। एक गांव के पास एक बहुत सुंदर पहाड़ था। उस सुंदर पहाड़ पर एक मंदिर था। वह दस मील की ही दूरी पर था और गांव से ही मंदिर दिखाई पड़ता था। दूर-दूर के लोग उस मंदिर के दर्शन करने आते और उस पहाड़ को देखने जाते। उस गांव में एक युवक था, वह भी सोचता था, कभी मुझे जाकर देख आना है। लेकिन करीब था, कभी भी देख आएगा। लेकिन एक दिन उसने तय ही कर लिया कि मैं कब तक रुका रहूंगा; आज रात मुझे उठ कर चले जाना है। सुबह से धूप बढ़ जाती थी, इसलिए वह दो बजे रात उठा, उसने लालटेन जलाई और गांव के बाहर आया। घनी अंधेरी रात थी, वह बहुत डर गया। उसने सोचा, छोटी सी लालटेन है, दो-तीन कदम तक प्रकाश पड़ता है, और दस मील का फासला है। इतना दस मील का अंधेरा इतनी छोटी सी लालटेन से कैसे कटेगा? इतना है अंधेरा, इतना विराट, इतनी छोटी सी है लालटेन पास में, इससे क्या होगा? इससे दस मील पार नहीं किए जा सकते। सूरज की राह देखनी चाहिए, तभी ठीक होगा। वह वहीं गांव के बाहर बैठ गया।

ठीक भी था, उसका गणित बिल्कुल सही था। और आमतौर से ऐसा ही गणित अधिकतम लोगों का होता है। तीन फीट तक तो प्रकाश पहुंचता है और दस मील लंबा रास्ता है। भाग दे दें दस मील में तीन फीट का, तो कहीं इस लालटेन से काम चलने वाला है? लाखों लालटेन चाहिए, तब कहीं कुछ हो सकता है।

वह वहां डरा हुआ बैठा था और सुबह की प्रतीक्षा करता था। तभी एक बूढ़ा आदमी एक और छोटे से दीये को हाथ में लिए चला जा रहा था। उसने उस बूढ़े से पूछा, पागल हो गए हो? कुछ गणित का पता है? दस मील लंबा रास्ता है, तुम्हारे दीये से तो एक कदम भी रोशनी नहीं पड़ती है!

उस बूढ़े ने कहा, पागल, एक कदम से ज्यादा कभी कोई चल पाया है? एक कदम से ज्यादा मैं चल भी नहीं सकता, रोशनी चाहे हजार मील पड़ती रहे। और जब तक मैं एक कदम चलता हूं, तब तक रोशनी एक कदम आगे बढ़ जाती है। दस मील क्या, मैं दस हजार मील पार कर लूंगा। उठ आ, तू क्यों बैठा है? तेरे पास तो अच्छी लालटेन है। एक कदम तू आगे चलेगा, रोशनी उतनी आगे बढ़ जाएगी।

जिंदगी में, अगर कोई पूरा हिसाब पहले लगा ले तो वहीं बैठ जाएगा, वहीं डर जाएगा और खत्म हो जाएगा। जिंदगी में एक-एक कदम का हिसाब लगाने वाले लोग हजारों मील चल जाते हैं और हजारों मील का हिसाब लगाने वाले लोग एक कदम भी नहीं उठाते, डर के मारे वहीं बैठे रह जाते हैं।

तो मैं आपको कहूंगा, इसकी बहुत फिकर न करें। हिसाब बहुत लंबा है, चिंता की बात नहीं है। आप यह तो सोचें ही मत कि एक करोड़ तो बहुत होते हैं। और यह भी मत सोचें, जैसा दुर्लभजी भाई ने कहा कि एक-एक लाख रुपया सौ लोग दे दें। एक-एक लाख देने वाले सौ लोग नहीं खोजे जा सकते, लेकिन एक-एक रुपया देने वाले एक करोड़ लोग आज ही खोजे जा सकते हैं। एक-एक लाख की बात ही मत सोचें; एक-एक रुपए की बात सोचें। एक-एक कदम की बात सोचें, दस मील की क्यों बात सोचें?

तो इसमें तो चिंता की कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। एक-एक रुपया देने वाले एक करोड़ लोग खोज लेना इतना आसान है, इतना आसान कि आपसे न हो सके तो मुझसे कह देना। आपसे हो सके रुपए का तो आप कर लेना, नहीं तो मुझसे कह देना, वह भी मैं कर दूंगा। उसकी कोई बहुत चिंता की बात नहीं है। उसमें बहुत घबड़ाने की बात नहीं है। एक-एक लाख रुपए का तो मैं कोई वायदा नहीं दे सकता, लेकिन एक-एक रुपए वालों का वायदा दे सकता हूं; उसमें क्या कठिनाई है? इसलिए बहुत इस विचार में न पड़ें कि इतना कैसे होगा, इतना तो कोई कठिन नहीं है। इतना तो कोई कठिन नहीं है।

और इस मुल्क में, जहां कि भिखारियों की बड़ी परंपरा है, अगर आप नहीं कर सके तो मैं भिखारी बन सकता हूं; उसमें कोई कठिनाई नहीं है। यहां महावीर भिखारी हैं, यहां बुद्ध भिखारी हैं, यहां गांधी भिखारी हैं--यहां कोई तकलीफ नहीं है भिखारी होने में। यहां तो राजा होने में बड़ी तकलीफ है। यहां राजा होना बहुत निंदित है; बहुत दुष्कर्म है। यहां भिखारी होना तो इतने बड़े आदर की बात है जिसका कोई हिसाब नहीं।

गांधी देहरादून में थे एक बार। और रात जब सभा पूरी हुई तो उन्होंने कहा कि कोई भी आदमी बिना दिए नहीं जाएगा, कुछ न कुछ दे जाएगा। और वे दोनों हाथ लेकर भीड़ में उतर गए और कहा कि कोई भी, जिसके सामने भी मेरा हाथ जाता है, वह कुछ न कुछ दे। तो जिसको जो बन सका, जिसके पास जो था, वह दे दिया। हाथ भर गया तो गांधी उसको वहीं गिरा देते जमीन पर और फिर हाथ खाली कर लेते। और कह देते कि यह मेरी संपत्ति जो पड़ी है, लोग ख्याल लें, कहीं यहां-वहां गड़बड़ न हो जाए। वहां उस भीड़ में पच्चीसों बार हाथ भरा और उसको उन्होंने जमीन पर गिरा दिया। फिर वे तो गिरा कर चले गए और कार्यकर्ताओं को कह गए कि जमीन से बीन लाना।

महावीर त्यागी उन कार्यकर्ताओं में एक थे। वे बीन-बान कर लाए। बहुत से रुपए थे, बहुत से गहने थे, रात एक बज गया वह सब बीनने में। लोगों के पैरों में यहां-वहां हो गया, वे सब जमीन पर फेंक गए थे उस भीड़ में। रात को सब हिसाब हुआ। वहां जब पहुंचे तो देखा गांधी जागे हुए हैं। उन्होंने कहा, सब हिसाब ले आए? उन्होंने सब हिसाब दिया, इतने हजार रुपए हुए हैं, यह-यह इतना हुआ है।

एक औरत के कान का एक ही बुंदा था। गांधी ने कहा, दूसरा बुंदा कहां है? कोई औरत मुझे एक बुंदा देगी, यह तुम ख्याल कर सकते हो? तुम वापस जाओ, एक बुंदा और होना चाहिए। क्योंकि मैं मांगने खड़ा हो जाऊंगा तो कोई औरत ऐसी हो सकती है हमारे मुल्क में कि वह एक कान का बुंदा दे दे और एक घर ले जाए! यह बिल्कुल संभव नहीं है। इसमें गलती तुम्हारी होगी। तुम जाओ; दूसरा बुंदा वहां होना चाहिए।

महावीर त्यागी ने पीछे कहा कि हम इतने घबड़ाए कि यह बूढ़ा आदमी है कैसा! एक तो वहां डाल दिया, यह सब उपद्रव किया और अब हम इतनी रात बीन-बान कर लाए हैं अंधेरे में और कहता है कि एक बुंदा इसमें कम है! वापस गए वहां तो हैरान हुए, एक बुंदा ही नहीं मिला और कुछ गहने भी मिले! वह बुंदा तो मिल गया।

गांधी ने कहा, मैं मान ही नहीं सकता था कि इस मुल्क में मैं मांगने जाऊं तो एक बुंदा कोई दे दे; दोनों ही देगी। तो इसलिए वह तो कमी थी। और यह तुम और भी ले आए, कल सुबह और देख लेना गौर से, वहां कुछ और भी... ।

तो जिस मुल्क में मांगने वालों की बहुत बड़ी परंपरा हो... और इस मुल्क का बड़ा मजा है, और वह मजा यह है कि यहां मांगने वाला देने वाले से छोटा नहीं होता। यहां मांगने वाला देने वाले से छोटा नहीं होता, यहां

मांगने वाला देने वाले से बड़ा ही रहता है। और धन्यवाद मांगने वाला नहीं देता कि धन्यवाद दे कि आपने मुझे इतना दिया, मैं धन्यवाद दूं। धन्यवाद देने वाला ही देता है कि मैं धन्यवाद करता हूं कि आपने ले लिया, नहीं लेते तो मैं क्या करता!

मैं जयपुर में था, कल रात ही बात कर रहा था। एक बूढ़े आदमी ने आकर बहुत से बंडल रखे नोटों के और मुझे नमस्कार किया। मैंने कहा, नमस्कार मैं ले लेता हूं और रुपए की अभी जरूरत नहीं है, कभी जरूरत होगी तो मैं मांगने निकलूंगा तो आपसे मांग लूंगा। रुपए आप रख लें, अभी तो मुझे कोई जरूरत है नहीं।

मैंने तो ऐसे ही कह दिया, लेकिन देखा तो उनकी आंखों में आंसू आ गए हैं। वे सत्तर साल के बूढ़े आदमी हैं। उन्होंने कहा कि आप कहते क्या हैं! आपको जरूरत है, इसलिए मैंने दिया कब! मेरे पास है, अब मैं इसका क्या करूं? अच्छे आदमियों को दे देता हूं कि इसका कुछ हो जाएगा। मैं तो इसका कुछ कर नहीं सकता। आपको जरूरत है, इसलिए मैंने दिया ही नहीं; इसलिए आपकी जरूरत का सवाल नहीं है; मेरे पास है, मैं क्या करूं? मुझे देना जरूरी है। और मैं अच्छे आदमियों को दे देता हूं कि इसका कुछ अच्छा हो जाएगा।

और फिर उस बूढ़े आदमी ने कहा कि आपको पता नहीं, आप इनकार करके मुझे कितना सदमा पहुंचा रहे हैं। मैं इतना गरीब आदमी हूं कि मेरे पास सिवाय रुपए के और कुछ है ही नहीं। मैं इतना गरीब आदमी हूं कि मेरे पास सिवाय रुपए के और कुछ है ही नहीं! तो जब कोई रुपया लेने से इनकार कर देता है तो फिर मेरी मुश्किल हो जाती है, फिर अब मैं क्या करूं? मेरे मन में कुछ करने का ख्याल आता है, तो सिवाय रुपए के मेरे पास कुछ भी नहीं है। तो आप इसको इनकार न करें। आप इसको फेंक दें, आग लगा दें, बाकी इनकार आपको नहीं करने दूंगा, क्योंकि फिर मेरे पास देने को कुछ और है ही नहीं--और देने का मेरे मन में ख्याल आ गया है। आप कृपा करें और इसको ले लें।

इसलिए पैसे के लिए तो चिंता आप नहीं करें बहुत। और जिस दिन भी आपको लगे कि आपको पैसे की जरूरत है और वह आपसे नहीं होता, आप सिर्फ मुझे कह देंगे, पैसा हो जाएगा। पैसे की बहुत चिंता नहीं है। वह मैं नहीं मांगता हूं, यह बात दूसरी है। लेकिन जिस दिन मांगूं तो पैसा तो! पैसे जैसी सस्ती चीज और दुनिया में कुछ भी नहीं है, जो कोई भी दे दे। पैसा देने में तो कोई भी आदमी इतना कमजोर नहीं है कि पैसा न दे दे। आदमी तो दिल दे देता है, प्राण दे देता है, पैसे में तो कुछ भी नहीं है। तो इसलिए उसकी बहुत चिंता की बात नहीं है। और हिम्मत से काम में लग जाएं तो आप पाएंगे कि वह काम अपने आप लेता चला आता है। वह अपने आप लेता चला आता है।

अब मुझे जगह-जगह लोग, न मालूम कितने लोग आकर कहते हैं कि हमें दस हजार रुपए लगा देने हैं। मैं उनको क्या कहूं कि कहां लगा दें? मेरे पास तो कोई जरूरत है नहीं। अब मैं कहां ले जाऊं? इन रुपयों का मैं क्या करूंगा? तो वे कहते हैं कि कभी जरूरत हो तो, कोई काम हो तो!

लोग, आप सोचते होंगे कि इसलिए नहीं देते कि नहीं देना चाहते। आप हैरान होंगे, मेरा अपना अनुभव यह है कि लोग संकोच में रहते हैं कि हम कैसे कहें कि पैसा दें। मेरा अपना अनुभव यही है कि लोग संकोच में होते हैं कि हम कैसे कहें, किस मुंह से कहें! पैसे जैसी सड़ी चीज को देने के लिए किस मुंह से कहें कि हम पैसा देना चाहते हैं! जिस दिन उनको पता चल जाए कि जरूरत है, वह पैसा बहा चला आता है, उसकी कोई कठिनाई नहीं है। उसकी जरा भी चिंता की बात नहीं है। उससे ज्यादा व्यर्थ तो कोई चिंता नहीं है, अगर उसके लिए बहुत चिंता करते हैं। लेकिन चिंता इसलिए पैदा होती है कि आप लाख-लाख का हिसाब लगाते हैं। जिस आदमी के पास लाख रुपया होता है, उस आदमी की उतनी ही ताकत पैसा छोड़ने की कम हो जाती है। जिसके पास एक रुपया होता है, उसकी ताकत छोड़ने की बहुत होती है।

एक फकीर था, मुसलमान फकीर, हसन। वह एक छोटे से झोपड़े में रहता था। उस झोपड़े में इतनी थोड़ी जगह थी कि हसन और उसकी पत्नी, बस दो ही सो पाते थे। रात सोए थे, वर्षा की रात थी, अंधेरी रात थी।

कोई आधी रात को किसी आदमी ने आकर दरवाजा खटखटाया। तो हसन ने अपनी पत्नी से कहा, दरवाजा खोल! मालूम होता है कोई भटक गया राहगीर है।

उसकी पत्नी ने कहा, देखते नहीं हैं, यहां जगह कहां है दो से ज्यादा के लिए!

उस फकीर ने कहा, पागल, यह कोई अमीर का महल नहीं है कि जगह कम पड़ जाए। यह गरीब की झोपड़ी है। अमीर के महल छोटे होते हैं, गरीब की झोपड़ी तो बड़ी होती है। अमीर का महल नहीं है यह कोई कि जगह कम पड़ जाए, यह गरीब की झोपड़ी है। अभी हम दो लेटे थे, अब हम तीन बैठेंगे। जगह काफी हो जाएगी। दरवाजा खोल! द्वार आया हुआ आदमी वापस लौट जाए?

दरवाजा खोल दिया। वह आदमी आकर बैठ गया। वे दोनों उठ कर बैठ गए, तीनों बैठ कर गप-शप करने लगे। दरवाजा अटका है।

फिर दो आदमी आए और दरवाजा खटखटाया। तो वह जो मेहमान आकर बाहर बैठा था किनारे पर, उससे हसन ने कहा, दरवाजा खोल मित्र जल्दी।

उस आदमी ने कहा, आप कहते क्या हैं! यहां जगह बहुत कम है।

उसने कहा कि जगह कम है? अगर जगह कम होती तो तू अंदर कैसे आ पाता? जगह यहां बहुत ज्यादा है।

उसने कहा, देखते नहीं हैं, मुश्किल से हम तीन बैठे हुए हैं!

हसन ने कहा, अभी हम बैठे हैं, फिर हम खड़े हो जाएंगे। लेकिन यह गरीब की झोपड़ी है, इसमें जगह कभी कम होती ही नहीं।

दरवाजा खोल देना पड़ा, वे दो आदमी भीतर आ गए। वे पांचों खड़े होकर बातचीत करने लगे। और तभी एक गधे ने आकर, वर्षा में भीगे हुए एक गधे ने आकर द्वार खटखटाया, सिर मारा। हसन ने सामने खड़े आदमी से कहा, मित्र, दरवाजा खोल! कोई अतिथि आया है।

उसने कहा, कोई अतिथि नहीं है, यह गधा है।

उसने कहा, तुझे पता नहीं है, यह गरीब आदमी का झोपड़ा है, यहां गधे के साथ भी आदमी जैसा व्यवहार होता है। अमीर के महल पर आदमी से भी गधे जैसा व्यवहार होता है। यह तो गरीब का झोपड़ा है, यहां तो हम गधे से भी आदमी जैसा व्यवहार करते हैं। अमीर के मकान की बात अलग है, वहां तो आदमी से भी गधे जैसा व्यवहार होता है। दरवाजा खोल! अभी हम दूर-दूर खड़े हैं, अब हम पास-पास खड़े हो जाएंगे। लेकिन यह गरीब की झोपड़ी छोटी नहीं पड़ सकती है। अगर बहुत जरूरत पड़ी तो मैं अलग हो जाऊंगा, पत्नी मेरी बाहर हो जाएगी, लेकिन जब तक हमारा वश होगा, हम इसको बड़ा करते रहेंगे।

आप लाख पर विचार करते हैं तो परेशानी हो जाती है। लाख वाले आदमी के पास दिल होता ही नहीं। उसके पास दिल बड़ा छोटा हो जाता है। इसलिए उसकी बहुत चिंता न करें, उसकी बहुत चिंता न करें। लाख वाले के पास बड़ा दिल होगा तो वहां से लाख आ जाएंगे। नहीं तो रुपए वाले का दिल अब भी बड़ा है, उसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। वह हो सकेगा। हिम्मत से उस काम में आप लगते हैं तो उसके हो जाने में कोई कठिनाई नहीं है।

और तो मुझे अभी कुछ कहना नहीं है। रात आपकी बात सुनूंगा, फिर कुछ और कहना होगा तो आपसे कहूंगा।

तीसरा प्रवचन

कार्यकर्ता की विशेष तैयारी

मनुष्य के जीवन में, और विशेषकर इस देश के जीवन में, कोई सर्वांगीण क्रांति आ सके, उसके लिए साधनों के संबंध में दिन भर हमने बात की।

लेकिन साधन अत्यंत जड़, अत्यंत परिधि की बात है। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण और जरूरी वे मित्र हैं जो उस क्रांति को और आंदोलन को लोगों तक ले जाएंगे। उन मित्रों के संबंध में थोड़ी बात कर लेनी बहुत जरूरी होगी।

एक तो, जब भी किसी नये विचार को, किसी नई हवा को लोकमानस तक पहुंचाना हो, तब जो लोग पहुंचाना चाहते हैं उनकी एक विशेष मानसिक तैयारी अत्यंत जरूरी और आवश्यक है। यदि उनकी तैयारी नहीं है मानसिक, तो वे जो पहुंचाना चाहते हैं उसे तो नहीं पहुंचा पाएंगे, बल्कि हो सकता है उनके सारे प्रयत्न, जो वे नहीं चाहते थे, वैसा परिणाम ले आएं।

मानसिक तैयारी से मेरा क्या प्रयोजन है? क्या अर्थ है?

एक तो, जिन लोगों ने भी जगत में मनुष्य के हृदय तक कोई नये विचार-बीज पहुंचाए हैं, उसके हृदय में कोई नई फसल उगाने की कोशिश की है, उसकी भूमिका में बहुत गहरे प्रेम, बहुत गहरी दया और करुणा का हाथ रहा है।

दो बातें हैं। एक तो जो विचार हम करते हैं वह विचार हमें प्रीतिकर लगता है इसलिए हम उसे लोगों तक पहुंचाएं। साथ ही जिन लोगों तक पहुंचाना है उनके प्रति हमें इतना प्रेम मालूम होता है कि हम इतनी महत्वपूर्ण बात उन तक बिना पहुंचाए नहीं रुकेंगे। अकेला विचार के प्रति आदर का भाव खतरनाक भी हो सकता है। जिन लोगों तक हमें पहुंचाना है उनके प्रति प्रेम; वे ऐसी स्थिति में हैं कि उन तक पहुंचाना है इस ख्याल को, यह भाव ज्यादा जरूरी और केंद्रीय होना चाहिए। क्योंकि जब उनके प्रति हमें प्रेम नहीं होता और केवल किसी विचार को पहुंचाने की तीव्रता हमारे मन में होती है, तो हम जाने-अनजाने लोगों के साथ हिंसा करना शुरू कर देते हैं।

ऐसा पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में होता रहा है। मुसलमानों ने सारी दुनिया में जाकर लोगों के मंदिर तोड़ दिए, मूर्तियां तोड़ दीं। एक ख्याल के वशीभूत होकर--कि यह ख्याल कि मूर्ति परमात्मा तक पहुंचने में बाधा है, पहुंचाना है लोगों तक। फिर इस ख्याल को पहुंचाने के लिए वे इतने दीवाने हो गए कि इस बात की फिकर ही छोड़ दी कि जिन लोगों तक पहुंचाना है, कहीं उनकी हत्या तो नहीं हुई जा रही? कहीं वे दबाए तो नहीं जा रहे? कहीं उनके साथ हिंसा तो नहीं हो रही? उन्हें विचार इतना महत्वपूर्ण हो गया कि जिस तक पहुंचाना है, वह कम महत्व का हो गया। तो सारी दुनिया में आज तक विचारों को पहुंचाने वाले लोगों ने बहुत हिंसा की है। और वह हिंसा इस कारण हो सकी कि विचार तो बहुत महत्वपूर्ण हो गया और जिस तक पहुंचाना है उसकी कोई फिकर न रही।

तो यह ख्याल में रखना जरूरी है कि विचार कितना ही महत्वपूर्ण हो, विचार से भी ज्यादा महत्वपूर्ण वह है जिस तक हमें पहुंचाना है। वह गौण नहीं है। वही मूल्यवान है। और हम विचार को सिर्फ इसीलिए उस तक पहुंचाना चाहते हैं।

एक भूखा आदमी है। उसके पास हम भोजन पहुंचाते हैं। भोजन का कोई मूल्य नहीं है, मूल्य तो उस आदमी की भूख का है। वह भूखा है इसलिए हम भोजन पहुंचाना चाहते हैं। लेकिन अगर भोजन महत्वपूर्ण हो जाए और वह आदमी भोजन लेने से इनकार कर दे और हम उसके साथ दुर्व्यवहार करने लगें, और जबर्दस्ती पकड़ कर, हथकड़ियां डाल कर उसको भोजन कराने लगें, तो फिर हमें भोजन महत्वपूर्ण हो गया और उसकी

भूख कम महत्वपूर्ण हो गई। अब तक दुनिया में ऐसा ही हुआ है। विचार महत्वपूर्ण हो जाता है; जिस तक पहुंचाना है, जो भूखा है, वह कम महत्वपूर्ण हो जाता है।

यह ध्यान में रखना जरूरी है कि हमारे लिए विचार इतना महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण तो वही व्यक्ति है--वह जो दुख और पीड़ा में खड़ा हुआ आज का मनुष्य है, वही महत्वपूर्ण है। उसके उपयोग में आ सके कोई बात तो हम सेवा के लिए तैयार हैं। लेकिन उस पर कुछ थोप नहीं देना है। कोई फैनेटिक ख्याल पैदा नहीं हो जाना चाहिए कि उसे उस पर थोप देना है। ऐसा अक्सर हो जाता है, सहज हो जाता है, अनजाने हो जाता है। हमें पता भी नहीं होता। तो वह ध्यान में रखना जरूरी है। जब काम को बड़ा करने का ख्याल पैदा हो गया, तो वह काम सच में कैसे बड़ा होगा, कैसे उदात्त होगा, उसकी सारी भूमिका भी ध्यान में रख लेनी जरूरी है। तो पहली तो बात यह ध्यान में रख लेनी जरूरी है।

दूसरी बात यह ध्यान में ले लेनी जरूरी है कि हम, जो इस दिशा में काम करने वाले मित्र होंगे, इन मित्रों को बहुत सा आत्म-परीक्षण, बहुत सा आत्म-निरीक्षण करना होगा। आप अकेले हैं तब तक कोई बात नहीं, आप जैसे भी हैं ठीक हैं। लेकिन जिस दिन आप कोई बात किसी दूसरे तक पहुंचाना चाहते हैं उस दिन अत्यंत विचार की, अत्यंत निरीक्षण की जरूरत पड़ जाती है। उस दिन यह बहुत ध्यान रखने की जरूरत है कि मैं क्या बोलता हूं, कैसे बोलता हूं, क्या मेरा व्यवहार है। क्योंकि एक बड़े विचार को लेकर जब मैं जा रहा हूं तो मेरे विचार का उतना ही आदर होगा जितने मेरे व्यक्तित्व और मेरे व्यवहार की गहराई होगी। क्योंकि मेरे विचार को तो लोग बाद में देख पाएंगे, मुझे तो पहले देख लेंगे। मैं तो उन्हें पहले दिखाई पड़ जाऊंगा, मेरा विचार तो मेरे पीछे आएगा। मुझे देख कर वे मेरे विचार और मेरे जीवन-दर्शन के प्रति उत्सुक होंगे।

तो जब भी कोई संदेश पहुंचाने के किसी काम में संलग्न होता है तो संदेश पहुंचाना अनिवार्य रूप से एक आत्मक्रांति बननी शुरू हो जाती है। तब उसका व्यवहार, उसका उठना-बैठना, उसका बोलना, उसके संबंध, सब महत्वपूर्ण हो जाते हैं। और वे उसी अर्थ में महत्वपूर्ण हो जाते हैं जितनी बड़ी बात वह पहुंचाने के लिए उत्सुक हुआ है। वह वाहक बन रहा है, वह वाहन बन रहा है किसी बड़े विचार का। तो उस बड़े विचार के अनुकूल उसे अपने व्यक्तित्व को जमाने की भी जरूरत पड़ जाती है।

नहीं तो अक्सर यह होता है कि विचार के प्रभाव में हम उसे पहुंचाना शुरू कर देते हैं और हम यह भूल ही जाते हैं कि हम उसे पहुंचाने की पात्रता स्वयं के भीतर खड़ी नहीं कर रहे हैं। इस पात्रता पर भी ध्यान देना जरूरी है।

साधक का काम उतना बड़ा नहीं है जितना कार्यकर्ता का बड़ा है। साधक अकेला है, अपने में जीता है, अपने लिए कुछ कर रहा है। कार्यकर्ता ने और भी बड़ी जिम्मेवारी ली है। वह साधक भी है और जो उसे प्रीतिकर लगा है उसे पहुंचाने के लिए वह माध्यम भी बन रहा है। तो यह माध्यम का ख्याल! और यह माध्यम कैसा हो? यह कैसे लोगों तक पहुंचा सकेगा? छोटी-छोटी चीज से फर्क पड़ जाता है। एक-एक शब्द से फर्क पड़ जाता है। इधर तो मैं देखता हूं, एक छोटी सी बात थोड़े से और ढंग से कही जाए, किसी के हृदय में पहुंच जाती है; थोड़े और ढंग से कही जाए, कोई लड़ने को तैयार हो जाता है।

राजा भोज के दरबार में एक ज्योतिषी आया। उसने राजा भोज का हाथ देखा और कहा कि तू अत्यंत अभागा व्यक्ति है। अपने लड़के को अरथी पर तू ही चढ़ाएगा। अपनी पत्नी को भी अरथी पर तू ही चढ़ाएगा। तेरे सारे लड़के, तेरी सारी लड़कियां--तू ही उनको मरघट तक पहुंचाएगा। उस भोज ने क्रोध से उस ज्योतिषी को हथकड़ियां डलवा दीं और कहा, इसको जाकर जेलखाने में बंद कर दो। कैसे बोलना चाहिए, यह भी इसे पता नहीं है। यह क्या बोल रहा है पागल!

कालिदास बैठ कर यह सारी बात सुनते थे। जब वह ज्योतिषी चला गया तो कालिदास ने कहा कि उस ज्योतिषी को पुरस्कार देकर विदा कर दें।

राजा ने कहा, उसे पुरस्कार दूं? सुनते हो तुम उसने क्या कहा था!

कालिदास ने कहा कि क्या मैं भी आपका हाथ देखूं? कालिदास ने हाथ देखा और कहा कि आप बहुत धन्यभागी हैं। आप सौ वर्ष के पार तक जीएंगे। आप बहुत लंबी उम्र उपलब्ध किए हैं। आप इतने धन्यभागी हैं कि आपके पुत्र भी आपकी उम्र नहीं पा सकेंगे, पीछे छूट जाएंगे।

राजा ने कहा, क्या यही वह कहता था?

कालिदास ने कहा, यही वह कह रहा था, लेकिन उसके कहने का ढंग बिल्कुल ही गड़बड़ था।

भोज ने उसे एक लाख रुपये देकर ईनाम दिया, और उसे विदा किया सम्मान से। और उससे जाते वक्त कहा, मेरे मित्र, अगर यही तुझे कहना था तो ऐसे ही तूने क्यों न कहा? तूने कहने का ढंग कौन सा चुना था!

जोसुआ लिएबमेन करके एक यहूदी विचारक और पुरोहित था। उसने संस्मरण लिखा है कि जब मैं युवा था और पहली दफा गुरु के आश्रम में शिक्षा लेने गया, तो मेरा एक मित्र भी मेरे साथ था। हम दोनों को सिगरेट पीने की आदत थी। हम दोनों ही परेशान थे कि क्या करें, क्या न करें? सिर्फ एक घंटा मोनेस्ट्री के बाहर ईश्वर-चिंतन के लिए बगिया में जाने को मिलता था, उसी वक्त पी सकते थे सिगरेट, और तो कोई मौका नहीं था। लेकिन फिर भी यह सोचा कि पीने के पहले गुरु को पूछ लेना उचित है। तो मैं और मेरा मित्र दोनों पूछने गए। जब मैं पूछ कर वापस लौटा तो मैं बहुत क्रोध में था, क्योंकि गुरु ने मुझे मना कर दिया था। और जब मैं बगीचे में आया तो मेरा क्रोध और भी बढ़ गया, मेरा मित्र तो आकर बेंच पर बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। मालूम होता है गुरु ने उसे हां भर दी है। यह तो हद अन्याय हो गया था। मैंने जाकर उस मित्र को कहा कि मुझे तो मना कर दिया है उन्होंने, क्या तुम्हें हां भर दी है? या कि तुम बिना उनकी हां किए ही सिगरेट पी रहे हो?

उस मित्र ने कहा कि तुमने क्या पूछा था?

लिएबमेन ने कहा, मैंने पूछा था कि क्या हम ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकते हैं? उन्होंने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं। तुमने क्या पूछा था?

उसने कहा, मैंने पूछा था कि क्या हम सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन कर सकते हैं? उन्होंने कहा, हां, बिल्कुल कर सकते हो।

ये दोनों बातें बिल्कुल एक थींः ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पीएं या सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन करें। लेकिन दोनों बातें बिल्कुल अलग हो गईं। एक बात के उत्तर में उसी आदमी ने इनकार कर दिया, दूसरी बात के उत्तर में उसी आदमी ने हां भर दिया। निश्चित ही कौन स्वीकार करेगा कि ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पीएं? कौन अस्वीकार करेगा कि सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन करें या न करें? कोई भी कहेगा कि अच्छा ही है। अगर सिगरेट पीते समय भी ईश्वर-चिंतन करते हो तो बुरा क्या है, ठीक है।

उस दूसरे युवक ने कहा कि पहले मेरे मन में भी वही पूछने का ख्याल आया था, क्योंकि सीधी बात वही थी। लेकिन फिर तत्क्षण मुझे ख्याल आया कि भूल हो जाएगी। अगर मैं पूछता हूं कि ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकता हूं, तो मैंने पहले ही जान लिया था कि उत्तर नहीं में मिलने वाला है।

लिएबमेन ने लिखा है कि फिर मैंने जिंदगी में बहुत बार इसका प्रयोग किया। और तब तो धीरे-धीरे मुझे समझ में आया कि दूसरे आदमी से हां या न निकलवा लेना उस आदमी के हाथ में नहीं, तुम्हारे हाथ में है। वह दूसरे आदमी को पता भी नहीं चलता कि तुमने कब उससे हां निकलवा ली है या कब तुमने न निकलवा ली है। और अगर दूसरा आदमी न करता है, तो सोच लेना कि हमसे कहीं कोई भूल हो गई है। हो सकता है हमारे भाव बिल्कुल सही हों, हमारा ख्याल सही हो, सिर्फ हमारा मौजूद करने का ढंग गलत हो गया होगा। अन्यथा इस दुनिया में कोई भी आदमी न करने को तैयार नहीं है। हर आदमी हां करना चाहता है। लेकिन हां कहलवाने वाले लोग, उनकी तैयारी, उनकी समझ, उनकी सूझ, उस सब पर निर्भर करता है कि हम कैसे मौजूद करते हैं।

जब एक क्रांतिकारी दृष्टि को हजारों साल की रूढ़ियों से बंधे हुए समाज के सामने ले जाना हो, कैसे एक बड़ा काम खड़ा करना हो, एक विश्व-केंद्र खड़ा करना हो जहां से कि धीरे-धीरे वह ख्याल जीवित मनुष्यों को बदलने के लिए सक्रिय हो सके--तो कैसे?

रुपया नहीं है उतना महत्वपूर्ण, क्योंकि रुपया भी आ जाए और अगर दो-चार गलत आदमी भी उस केंद्र के दरवाजों पर खड़े हैं, तो सब रुपया व्यर्थ हो जाएगा। वह कोई मतलब का नहीं है। और यह भी सवाल नहीं है कि आप किसी से रुपया ले आएं। रुपया ले आया जा सकता है। सवाल तो यह है कि उस रुपये के साथ, जिससे आप रुपया लाए हैं, उस आदमी का हृदय भी आ जाए। नहीं तो ऐसा रुपया लाने की कोई जरूरत नहीं है। कई बार तो हम सिर्फ पीछा छुड़ाने के लिए रुपया दे देते हैं कि कोई हटे, टले यहां से। ऐसा रुपया तो लाना ही नहीं है वहां। क्योंकि यह रुपया बहुत महंगा है, एक आदमी को खोकर हम रुपया लाए।

वह जो देता है, वह देकर आनंदित हो और अनुभव करे निरंतर कि मैंने कम दिया, ऐसी पूरी भाव-भूमि हम उसके लिए खड़ी कर सकें। रुपये का ही नहीं--और श्रम, और बुद्धि, साथ-सहयोग, जो कुछ भी हम किसी से लेते हैं, उसे लगे कि जो व्यक्ति लेने आया था, जिस काम के लिए लेने आया था, उसके लिए यह बहुत कम था और मेरी असमर्थता थी कि मैं पूरा नहीं साथ दे सका। और उसके मन में ख्याल रहे कि वह कल साथ देने के लिए आतुर हो।

तो इस सबके लिए एक भाव-भूमि, वे लोग जो कार्य के संदेश-वाहक बनते हैं--किसी भी कार्य के--उनकी पूरी भाव-भूमि, उनकी पूरी पात्रता, उनका पूरा प्रशिक्षण, उनका पूरा ख्याल, उनके विचार, उनकी सारी बातें। संबंधित होना एक कला है, किसी व्यक्ति से संबंधित होना बहुत बड़ा आर्ट है।

कठिनाई हमें मालूम पड़ती है कि एक करोड़ कठिन बात होगी। कठिन इसलिए नहीं मालूम पड़ती, कठिन इसलिए मालूम पड़ती है कि हमें संबंधित होने की कला का कोई बोध नहीं है। इसलिए बहुत कठिन मालूम होता है। संबंधित होना बड़ी सूझ और समझ की बात है। हम तो किसी से टूटना बहुत आसानी से जानते हैं। किसी से जुड़ना बहुत कठिन है। हम घृणा करना बहुत आसानी से सीख लेते हैं, प्रेम करना नहीं। शत्रु बनाना एकदम सरल है, सवाल तो मित्र बनाने का है। और एक आदमी उतना ही सफल जीवन और कलात्मक ढंग से जीया, जिसके मित्र रोज बढ़ते चले गए हों। जो मरते समय कह सके कि मेरे इतने मित्र हैं पृथ्वी पर जिसका कोई हिसाब नहीं!

लेकिन आमतौर से उलटा होता है। बचपन में मित्र बहुत होते हैं, बूढ़े होते-होते कम होते चले जाते हैं। बचपन की बहुत याद आती है कि बहुत मित्र थे, सब अच्छा था। धीरे-धीरे आदमी बूढ़ा होता है, मित्र कम होते चले जाते हैं। जीवन के जीने में, संबंधित होने की कला में कोई कमी रह गई होगी, अन्यथा मित्र बढ़ते चले जाना चाहिए। जो भी संबंधित हो वह मित्र हो जाना चाहिए।

रूजवेल्ट पहला इलेक्शन लड़ा। तो उसने दस हजार लोगों को व्यक्तिगत नाम से पत्र लिखे। उन दस हजार लोगों को व्यक्तिगत नाम से पत्र लिखे। उनमें टैक्सी चलाने वाला ड्राइवर भी था, स्टेशन पर का कुली भी था, होटल का बैरा भी था। उसमें सब लोग थे। हैरान हो गए लोग! क्योंकि एक बैरे को, एक कुली को, एक ड्राइवर को पत्र मिला रूजवेल्ट का, व्यक्तिगत नाम से लिखा हुआ--कि मैं तो डरता था कि खड़ा हो जाऊं या न खड़ा हो जाऊं, लेकिन जब तुम्हारा ख्याल आया तो मैंने कहा एक वोट तो पक्का है, तो मैं खड़ा हो रहा हूं। तुम्हारी पत्नी की तबीयत अब कैसी है? जब मैं आया था तुम्हारे गांव, उसकी तबीयत खराब थी। और तुम्हारा लड़का अब बड़ा हो गया होगा, उसकी नौकरी का क्या हुआ? मेरी कोई जरूरत हो तो मुझे कहना।

दस हजार बिल्कुल सामान्यजनों को जब ये पत्र मिले, तो वे भूल ही गए कि रूजवेल्ट किस पार्टी का है और नहीं है। क्योंकि इस आदमी ने याद रखा!

वह किसी स्टेशन पर आता तो पिछली दफे जिसकी टैक्सी में बैठा था उसका नाम लेकर बुलाता कि फलां आदमी कहां है? वह अपना मित्र है, परिचित है पुराना, उसी की टैक्सी। वह टैक्सी में बैठ कर पांच मिनट जाता तो पांच मिनट व्यर्थ नहीं छोड़ता था, पांच मिनट टैक्सी ड्राइवर से दोस्ती कर लेता था। उससे पूछ लेता कि उसकी पत्नी कैसी है, उसके बच्चे कैसे हैं और कौन क्या कर रहा है।

रूजवेल्ट से उसके मित्रों ने कहा, तुम क्या फिजूल की बातें करते हो?

उसने कहा, तुम पागल हो। एक मनुष्य से पांच मिनट का मौका मिला है कि मैं उसका मित्र हो जाऊं और तुम कहते हो कि फिजूल की बातें करते हो। जीवन में मित्रता की संपत्ति के अतिरिक्त और क्या अर्थ का है? सार्थक क्या है? पांच मिनट एक व्यक्ति मुझे जीवित मिला है, पांच मिनट मैं चुपचाप पीछे बैठा रह सकता हूं, लेकिन पांच मिनट में मैं उसके हृदय के निकट भी पहुंच सकता हूं। तो पांच मिनट व्यर्थ खो देने का कोई कारण नहीं है, उनका मैं उपयोग कर रहा हूं।

तो रूजवेल्ट ने लाखों की संख्या में मित्र बना लिए। जिनको कुछ भी नहीं दिया। मित्रता को देने में कुछ देना तो नहीं पड़ता। सिर्फ एक प्रेमपूर्ण खुला हुआ हृदय, सिर्फ बढ़ाया हुआ एक हाथ, और सब पूरा हो जाता है। शायद सामान्य जीवन में हमें बहुत जरूरत भी नहीं पड़ती बहुत मित्र बनाने की।

लेकिन जो लोग किसी विचार को पहुंचाने के लिए उत्सुक हो गए हों, उन्हें निरंतर मित्रता का दायरा बड़ा होता जाए, इसका ख्याल रखना जरूरी है। जो भी आदमी एक बार संपर्क में आता है वह मित्र बन ही जाए। तो ये जो जिन पर आशा बांधते हैं, केंद्र के मित्र हैं, साथी हैं, यह मित्रों का जो समूह है, ये रोज मित्र बढ़ते चले जाएं और जो भी व्यक्ति निकट आता है वह मित्र बन जाए।

मैं तो यहां तक हैरान हुआ हूं, कि जिन घरों में मैं ठहरता हूं उन घरों के जो निकटतम मित्र हैं वे भी मुझसे परिचित नहीं हैं। क्योंकि वह घर के लोगों ने उन मित्रों को भी मुझसे मिलाने की कभी कोई फिकर नहीं की है। जिन घरों में मैं ठहरता हूं, उनके मेहमान, उनके परिचित, उनके संबंधी आते हैं तो वे मुझे मिलाते हैं कि ये हमारे भाई हैं। तो मैं उनसे पूछता हूं कि दो वर्ष हो गए, इन भाई को कभी तुमने मुझे मिलाया नहीं? नहीं, कोई ख्याल नहीं आया कुछ। इनको कभी लाए नहीं? नहीं, इनको कुछ मौका नहीं मिला कहने का। तो बहुत हैरानी होती है।

एक व्यक्ति जीवन में तो इतने बड़े मित्रों के जगत से संबंधित हो सकता है, एक दफा ख्याल, एक दफा बोध, इस बात का होश मन में हो, तो हम दस वर्ष के भीतर--आप एक करोड़ रुपया कहते हैं, एक करोड़ मित्र खड़े कर सकते हैं! कोई कठिनाई नहीं जरा भी, कोई जरा सी अड़चन नहीं। पर वह हमारे ख्याल में हो। और मैं आपको ध्यान दिलाना चाहूंगा, रुपये की उतनी फिकर न करें जितनी मित्रों की फिकर करें। क्योंकि रुपये तो मित्रों के साथ चले आएंगे। उसका क्या है! उसका क्या उपयोग है!

लेकिन मित्रों की हम फिकर न करें और रुपये की हम फिकर करें, तो सब गड़बड़ हो जाएगा। या मित्र की भी हम इसलिए फिकर करें कि उससे रुपये लेना है, तो भी सब गड़बड़ हो जाएगा। जब भी हम किसी आदमी के पास रुपये लेने जाते हैं तब हम उस आदमी का अपमान करते हैं, इसका हमें पता नहीं है।

अभी मेरे एक मित्र की लड़की की शादी हुई। वे बहुत धनी हैं। और यह उनकी लड़की ही थी, लड़का उनका कोई है नहीं। उस लड़की को जो भी लड़के देखने आए वह इनकार करती चली गई। उसके पिता परेशान हो गए। मुझे उन्होंने, लड़की को लेकर आए और कहा, हम बहुत मुश्किल में पड़ गए हैं। यह तो हरेक को इनकार कर देती है। यह चाहती क्या है?

उस लड़की ने मुझसे कहा कि अभी तक मुझे ऐसा लड़का नहीं दिखाई पड़ा जो मेरे लिए आया हो। वे पिता के पैसे के लिए आते हैं। इससे बड़ा मेरा कोई अपमान नहीं हो सकता कि कोई आदमी धन के लिए मुझसे

विवाह करे। वे धन के लिए आते हैं, यह देख कर ही मेरे लिए बात खतम हो जाती है। जब मेरे लिए कोई आएगा तो मैं तैयार हूं। लेकिन कोई मेरे लिए तो आए!

तो जब भी आप किसी के पास उसके धन के लिए जाते हैं तब आप उसका अपमान करते हैं, इसका आपको ख्याल ही नहीं। और जब इस अपमान में वह आपको धन भी देने से इनकार करता है, तो आप बड़े हैरान होते हैं कि बड़ा कंजूस है, बड़ा कृपण है, दो पैसे नहीं देता। आपको पता ही नहीं, वह पैसे दे कैसे? आप पैसे के लिए वहां गए हुए हैं। वह जाना इतना अपमानजनक, इतना इनसल्टिंग है किसी भी मनुष्य के लिए जिसका कोई हिसाब नहीं।

मनुष्य के लिए जाएं, पैसा तो आदमी की छाया की तरह आता है, ताकत तो छाया की तरह आती है। मित्र आ जाएं, उनकी छायाएं आ जाएंगी, उनको लाने के लिए नहीं जाना पड़ता। लेकिन अगर आप किसी के घर जाएं और कहें कि आपकी छाया को मैं सभा में आने के लिए आमंत्रित करता हूं, तो फिर हो गया आमंत्रण पूरा! न वह छाया आने वाली है, न वह आदमी आने वाला है!

धन तो आदमी की छाया है, यह जब तक हम नहीं समझेंगे तब तक हम भूल में पड़ते हैं। आदमी आता है, उसके पीछे उसकी ताकत आती है, उसका प्रेम आता है, उसकी शक्ति आती है, उसकी छाया आती है। और छाया तब खुशी से नाचती हुई चली आती है, उसे कोई लाने ले जाने कहीं जाना नहीं पड़ता।

तो इधर मैं यह प्रार्थना करूंगा कि कहीं ऐसा न हो कि आपको एक करोड़ रुपया इकट्ठा करने का सीधा ख्याल पकड़ जाए। यह सीधा ख्याल नहीं है। यह तो मित्र बढ़ाने का सवाल है। यह तो अधिकतम मित्रों को निकट लाने का सवाल है। रुपये का सवाल ही नहीं है यह, यह मामला आर्थिक नहीं है। तो वह जो फंड का आपने नाम रखा है, क्या नाम रखा है उसका? क्या आप कह रहे हैं कुछ गुजराती में?

भंडोर।

भंडोर नहीं। वह मित्र-संग्रह का नाम रख लें उसका, मित्र-संग्रह का फंड है वह। तो भंडोर बिल्कुल नहीं है। वह बात ही गलत है। वह तो कोई, कोई उसमें मतलब नहीं है। तो वह जो, जैसे मायाभाई हैं, वे उस फंड कलेक्शन के संयोजक हुए हैं, तो उनको याद रखना चाहिए कि मित्र-संग्रह करने के संयोजक हुए हैं, वह पैसे-वैसे का उतना सवाल नहीं है।

वे तो रेडी हो गए।

हां, वह तो राजी होना चाहिए। क्योंकि पैसा देने वाले को भी कठिन होता है, मांगने वाले को भी कठिन मालूम पड़ता है। मित्र बढ़ते जाने चाहिए। पैसा-वैसा तो गौण बात है, वह आ जाएगा, उसमें कोई सवाल नहीं है बड़ा। हमारे मित्र बढ़ते जाएं, यह हमारे सारे मित्रों को ख्याल रखना है। और हमारा जो भी मित्र है उसको ध्यान रखना है कि एक भी आदमी जो निकट आता है वह हमारा हो जाए। वह हमारे व्यवहार से, हमारे संबंध से, हमारे बोलने से हमारा हो जाए। हमारा एक भी शब्द उसे दूर ले जाने वाला नहीं, निकट लाने वाला बने।

यह अगर ख्याल में रहा, तो यह कोई कठिन नहीं है, दो साल में इतने मित्र इकट्ठे होंगे! हमें पता ही नहीं है कि मित्रों को बढ़ाए जाना है, उनका दायरा बढ़ाए जाना है। जो भी आदमी निकट आता है वह मित्र हो ही जाना चाहिए। यह मौका नहीं चूक जाना चाहिए। वह आदमी आया है, उसका पूरा सम्मान। और उसका सम्मान इसमें है कि हम उसे मित्र बनाते हैं।

चार लाख मित्र एक महीने में करना पड़े।

हां, बिल्कुल हो सकता है। यह जो... हमें ख्याल ही नहीं है न, हमें ख्याल नहीं है, दिन भर में कौन आदमी कितने लोगों से मिल रहा है, कितने लोगों के निकट जा रहा है, कितने लोगों से संबंधित हो रहा है।

लेकिन हम अपने काम से व्यस्त हैं, काम से मतलब है, मित्रता से तो कोई मतलब नहीं है। सीधी और सरल मित्रता का हमें ख्याल नहीं है। और जब भी कोई आदमी सीधी और सरल मित्रता का ख्याल लेता है, तो जिनको हम बिल्कुल कमजोर कहें, सामर्थ्यहीन कहें, दीन-हीन कहें, वे इतने बल की तरह आने शुरू हो जाते हैं, इतने सबल होकर आने शुरू हो जाते हैं।

तो मेरी दृष्टि में एक तो यह आपसे कहना था कि रुपये की बात बहुत महत्वपूर्ण है, इसलिए कहीं वह इतनी महत्वपूर्ण न हो जाए कि हमारा सारा चित्त उसके आस-पास ही चिंतन करने लगे। उसे हमेशा मनुष्य से नीचे और मित्रों से पीछे रखना है। एक मित्र अगर बनता हो रुपया खोकर, तो मित्र बचा लेना, रुपया खो देना है। और एक आदमी अगर रुपया देकर मित्रता छोड़ता हो, तो रुपया नहीं लेना है, मित्रता बचा लेनी है। वह ज्यादा दूरदृष्टि होगी, ज्यादा अर्थपूर्ण होगी, ज्यादा गहरी होगी, ज्यादा फायदे की होगी। तो इस पर थोड़ा ध्यान देना है।

और कुछ भय अगर काम करने वाले मित्रों के मन में हों तो काम में पीछे से रुकावट लगती है, खुद के भीतर से रुकावट लगती है। बाहर से उतनी रुकावट नहीं लगती काम में जितनी भीतर मेरे कोई भय हो उससे रुकावट लग जाती है। तो भीतर के भय का हमें बिल्कुल ही स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तो जब यहां इकट्ठे हुए हैं, तो भीतर कोई भी भय हो हमारे, उसे भीतर छिपा कर नहीं रख लेना चाहिए। क्योंकि भीतर छिपा हुआ वह मौजूद रहेगा और वह पीछे से खींचता रहेगा, कदम को बढ़ाने में डर देगा कि कहीं यह खतरा न हो, कहीं यह खतरा न हो, कहीं यह खतरा न हो।

तो वे सारे भय हमें स्पष्ट कर लेने चाहिए ताकि एकदम अभय मन हो। जितना अभय मन होता है उतनी तीव्र गति से काम कर पाता है। अगर भय है भीतर तो हम अपने ही हाथ को अपने हाथ से खींचते रहते हैं। हम खुद डरे रहते हैं। हम कहते भी हैं कि काम करना है और डरे भी रहते हैं कि कहीं यह भय न खड़ा हो जाए, कहीं यह भय न खड़ा हो जाए।

तो मुझे लगता है कि सबसे बड़ी जो रुकावट बनती है इस दिशा में सक्रिय होने में, वे भीतर के भय होते हैं। कई तरह के भय हो सकते हैं। इन सारे भयों पर विचार कर लेना चाहिए। इन सारे फियर्स को ठीक से समझ लेना चाहिए। और समझ कर बिल्कुल निर्भय हो जाना चाहिए। अगर ये मन में काम करते चले जाते हैं तो आप पाएंगे कि आप अपने ही हाथ से खुद को रोकने की जंजीरें भीतर खड़ी किए हुए हैं।

जैसे उदाहरण के लिए एक-दो-चार भय की हम बात कर लें कि क्या भय हो सकते हैं। बहुत तरह के भय हो सकते हैं। सबसे बड़ा भय... जैसे यहां इतने मित्र इकट्ठे हुए हैं, जब भी हमें यह ख्याल उठता है कि इतना रुपया इकट्ठा करना है, इतना काम करना है, इतनी व्यवस्था करनी है, तो एकदम से सीधा सवाल उठता है कि मुझे तो नहीं देना पड़ेगा यह रुपया? मुझे तो नहीं करना पड़ेगा यह? पहला भय मन के भीतर सहज खड़ा हो जाता है कि इसमें मैं, इसमें मैं कहां? हां, इसमें भय आ जाएगा।

यह जो भय खड़ा होता है, यह भय एकदम ही निर्मूल है। निर्मूल इसलिए है कि कोई संकोच से तो किसी को इसमें जरा भी सहयोग नहीं देना है। अगर किसी मित्र को लगता है कि इसलिए मुझे भय है, तो उसे उठ कर कह देना चाहिए। जैसे अभी खेतानजी ने कहा, वह बिल्कुल ठीक कहा। उसे कह देना चाहिए कि मैं इसमें कुछ भी नहीं दूंगा; लेकिन यह काम बढ़े, यह मैं चाहता हूं। तो मैं जो सहयोग दे सकता हूं वह मैं दूंगा, लेकिन उसमें

पैसा मैं नहीं दे सकता हूं। यह कह कर उसे निर्भय हो जाना चाहिए। फिर वह निर्भय होकर काम में लगता है, फिर उसे कोई झंझट नहीं रह जाती, उसे कोई प्रश्न नहीं रह जाता। उसे कोई संकोच पालने की जरूरत नहीं है। क्योंकि अगर वह संकोच पालता है तो वह पच्चीस तरह के, इस भय को छिपाए रखने के लिए पच्चीस और बातें करेगा और विचार करेगा और वह उससे कठिनाइयां खड़ी होंगी।

वह तो सीधी-साफ बात है। यहां कोई किसी को कोई संकोच से कुछ देना चाहिए सहयोग, किसी भी तरह का, उसका तो कोई सवाल ही नहीं है। वह उसकी मित्रता का आनंद हो, यह दूसरी बात है। उसके सामर्थ्य के बाहर हो, उसकी सीमा के बाहर हो, वह उलझन में हो, तो उसे यह विचार ही छोड़ देना चाहिए। उसे स्पष्ट कह देना चाहिए कि मैं इसमें सहमत हूं और यह काम ठीक है और मैं इसमें साथ दूंगा, लेकिन इतना जो मैं नहीं कर सकता हूं वह मैं यह नहीं कर सकता हूं। वह निर्भय हो जाएगा। ऐसे अगर पचास निर्भय मित्र हैं तो उनके पास बड़ी शक्ति खड़ी हो जाएगी। या वह कहे कि मैं इतना दे सकता हूं, इतना मैं दे दूंगा, तो भी निर्भय हो जाएगा। उसमें कोई चिंता और विचार का सवाल नहीं है।

ऐसे ही और ढेर सारे भय मन को अनेक-अनेक कोनों से पकड़ना शुरू करते हैं।

तो जब कार्यकर्ताओं का वर्ग मिले, अगली बार जब हम मिलें, तो इन सारी बातों पर बहुत स्पष्ट बातें करनी चाहिए। कुछ मित्रों को किन्हीं मित्रों से कुछ शिकायतें होती हैं, तो वे मुझे अलग से कहते हैं। वह मुझे पसंद नहीं है। जो भी शिकायत हो, जब हम सब मित्र मिलते हैं तो हमें कह देनी चाहिए। आखिर मित्र का मतलब ही यह होता है कि अगर उसकी कोई शिकायत है तो हम उससे कह दें कि यह हमें शिकायत है, इससे काम को नुकसान पहुंचेगा या काम को बाधा पड़ेगी। तो वह सारी शिकायतों की हमें बात कर लेनी चाहिए ताकि वे साफ हो जाएं। हो सकता है हम भूल में हों, हमारी शिकायत गलत हो, तो यह साफ हो जाए। हो सकता है जिस मित्र की हमने शिकायत की है, वह भूल में हो, तो उसकी बात साफ हो जाए।

लेकिन अगर मन-मन में कहीं हमारे कुछ बातें पलती रहें, तो वे दीवालें खड़ी करती हैं और जहां हमें इकट्ठा होकर खड़ा होना चाहिए वहां हम इकट्ठा होकर खड़े नहीं हो सकते हैं।

तो एक बात यह ध्यान में लेनी है कि अगर कोई काम करना है, बड़ा काम करना है, और एक बड़े सहयोग की जरूरत पड़ेगी, तो जो-जो चीजें सहयोग में बाधा बन सकती हैं उनको तोड़ने की हमें व्यवस्था कर लेनी चाहिए। अगली बार जब भी हम मिलते हैं तो हमें बहुत आत्म-आलोचना करने के लिए भी तैयार होना चाहिए। मित्रों की आलोचना करने के लिए भी तैयार होना चाहिए। उनको दूर करने के लिए हम क्या कर सकते हैं उसकी सूझ-समझ भी हमें पैदा करनी चाहिए। लेकिन अलग से बात करनी बंद कर देनी चाहिए। और प्रत्येक को यह ध्यान रखना चाहिए कि उससे ज्यादा महत्वपूर्ण काम है, अगर उस काम में कोई बाधा पड़ती है तो उसे बदलने के लिए तैयार होना चाहिए कि मैं बदल लूं। कोई भूल-चूक होती है, उससे तत्काल तैयार हो जाऊं और बदलने को राजी हो जाऊं।

ये थोड़ी सी बातें अगर हम ख्याल में ले लेते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हमारी गति पूरी क्षमता से आगे क्यों न बढ़ सके। और हम जो इरादा करते हैं वह पूरा क्यों न हो सके। और न केवल वह सफल हो बल्कि सुफल भी क्यों न हो सके। क्योंकि सफलता तो कई रास्तों से आ जाती है, लेकिन सुफलता कठिन बात है। अकेली सफलता तो कई तरह से आ सकती है, हजार रास्ते खोजे जा सकते हैं--जो रास्ते गलत होंगे, काम को सफल बना हुआ दिखा देंगे। लेकिन ऐसी सफलता की कोई आकांक्षा नहीं, कोई विचार भी नहीं करना चाहिए।

सुफल कैसे हो? जो फल आएं वे सचमुच शुभ कैसे हों? केवल फल आ जाएं, इतना काफी नहीं है। एक केंद्र बन जाए, एक आश्रम बन जाए, एक विद्यापीठ बन जाए, इतना काफी नहीं है। लेकिन जो हमारे इरादे हैं उनको पूरा करके बने। मेरी दृष्टि में, अच्छा काम अधूरा भी हो तो भी ठीक है और बुरा काम पूरा भी हो जाए तो ठीक नहीं। बुरा काम सफल भी हो जाए तो ठीक नहीं, अच्छा काम सपना भी रह जाए तो भी ठीक है। फिर

कोई और होगा जो उस सपने को आगे बढ़ाएगा। कोई हमने ठेका तो ले नहीं रखा है कि कोई सपने को हम पूरा ही करेंगे। लेकिन वह सपना सुंदर और शुभ है तो हम प्रयास करें।

और कोई समझौते के लिए नहीं तैयार होना चाहिए।

जैसे परमानंद भाई ने कहा कि वे खुश हुए कि मैं किसी खूंटे से बंध गया हूं।

वे भूल में हैं। वे बिल्कुल भूल में हैं। मैं किसी खूंटे से कहीं बंधता नहीं। कोई बंधने का कारण नहीं है, कोई बंधने की जरूरत भी नहीं है। बंधने का थोड़ा भी भय होता, तो मैं बात ही नहीं चलाता। बंधने का चूंकि कोई भय नहीं है इसलिए मैं राजी हो गया हूं। अगर जरा भी भय होता कि इसमें बंधन खड़ा हो जाएगा मेरे लिए, तब तो मैं राजी ही नहीं होता। चूंकि कोई भय नहीं है, क्योंकि बंधन खड़ा ही नहीं हो सकता; इसलिए बंधन का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि मैं कोई समझौता नहीं करूंगा। कल आप कहेंगे कि वह फलां आदमी एक लाख रुपया देता है तो जरा उसके धर्म के खिलाफ मत बोलें, तो मैं कोई आपकी बात मानने को राजी नहीं हो जाऊंगा। कल आप कहें कि वह इतने लोगों ने यह काम किया है इसलिए यह बात मत कहें, तो उसके लिए मैं राजी नहीं हो जाऊंगा। कहीं मैं किसी समझौते के लिए राजी नहीं हूं। कोई समझौते का सवाल ही नहीं है। इसलिए मैं तो कहीं बंधता नहीं हूं, कोई बंधन उससे खड़ा होता नहीं। और मैं किसी समझौते के लिए भी राजी नहीं हूं। मैं जो कह रहा हूं वह मैं कहूंगा और उसको जोर से कहूंगा। और उसको जोर से कह सकूं इसलिए यह सारा उपाय है। जो कर रहा हूं उसको जोर से कर सकूं। जितनी चोट आज करता हूं, कल और जोर से कर सकूं। जितना प्रहार आज करता हूं, कल और जोर से कर सकूं। और उसके लिए ताकत इकट्ठी हो सके कि वह प्रहार और जोर से किया जा सके, और सबलता से।

और संन्यासी की मेरी दृष्टि ही ऐसी है कि जो सब बंधन के बीच में भी खड़ा रह कर बंधन में नहीं होता, उसी को मैं संन्यासी कहता हूं। जो बंधन से भाग कर और बंधन में नहीं होता, वह संन्यासी अभी है नहीं। उसके मन में भय है कि कहीं बंध न जाए, इसलिए भागा फिर रहा है। वह बंधा हुआ है, इसलिए भागा फिर रहा है। उसका चित्त कहीं डरता है, कहीं अटका हुआ है। जिसका कहीं अटका हुआ नहीं है उसे कोई भय नहीं रह जाता, कोई कारण नहीं रह जाता।

तो उसमें कहीं, वह कहीं भी मन में ख्याल लेने की कोई जरूरत नहीं है कि मैं कहीं बंध रहा हूं। और जो मैं कह रहा हूं, वह जो मैं कल कहता रहा हूं उसकी ही तार्किक निष्पत्ति है। कल अभी और बातें आपसे कहूंगा, परसों और बातें कहूंगा। आपकी भूमिका जैसे तैयार होती चली जाती है उतना मैं आपसे कहना शुरू करूंगा। जितने दूर तक आप जाने को राजी हो जाते हैं उससे मैं थोड़े और आगे की बात कहूंगा, ताकि आप और थोड़े दूर जा सकें। शायद यही बात मैं आपसे दो साल पहले कहता तो शायद आप बंधने को राजी न होते। नहीं आपसे कहा, इसलिए नहीं कि मैं बंधने को राजी नहीं था। दो साल पहले आप तैयार नहीं होते इसलिए दो साल पहले नहीं कही बात। अभी भी जो बात कही है, दो साल बाद और बात आपसे कहूंगा। जितने आप राजी होते चले जाएंगे उतनी बात आपसे कहता चला जाऊंगा।

मेरी दृष्टि में पूरा ख्याल है। लेकिन आप जिस अर्थ में तैयार होंगे उस अर्थ में ही उसे कहा जा सकता है। अन्यथा उसे कहने का कोई कारण नहीं, कोई प्रयोजन नहीं है। अभी और बहुत सी क्रांतियों में आपके मन को ले जाने की मैं तैयारी करूंगा। शायद उन क्रांतियों में बहुत से मित्र डर जाएं और पीछे छूट जाएं। शायद उन क्रांतियों में बहुत से लोग ख्याल भी न करें कि इतनी बड़ी क्रांति की कोई बात होने को थी तो शायद हम पहले ही रुक जाते।

लेकिन जितनी बड़ी चुनौती खड़ी होती है उतना ही भीतर बल भी खड़ा होता चला जाता है। और एक मित्र छूटता है तो दस खड़े हो जाते हैं, अगर चुनौती सत्य हो, वस्तुतः मनुष्य के जीवन को उससे कोई हित होने को हो।

तो मैं कोई फूलों का रास्ता आपके लिए नहीं बता रहा हूं। उस पर और कांटे आने को हैं। और मुझे पूरा पता है। लेकिन अगर आपके हृदय में यह ख्याल आ गया हो कि देश की चेतना को और मनुष्य की चेतना को बदलने की कोई जरूरत आ गई है; आपने अपने दुख और पीड़ा से यह अनुभव किया हो--चारों तरफ के उपद्रव, चारों तरफ की उच्छृंखलता, चारों तरफ का जीवन जो छिन्न-भिन्न हो गया है, सब तरफ से जिसकी सारी जड़ें हिल गई हैं, सब तरफ कुम्हला गया, ऐसा लगता हो कि इसमें कोई नये प्राण डाले जा सकते हैं--तो साहस से उसके प्रति कदम उठाना जरूरी है।

जितने आप तैयार होंगे उतने बड़े साहस के लिए मैं आपसे कहना शुरू कर दूंगा। सर्वांगीण जीवन में क्रांति हो, वह मेरे ख्याल में है। धर्म से मैंने चर्चा शुरू की है, क्योंकि धर्म सबसे केंद्रीय तत्व है। और धर्म में क्रांति करने को जो राजी हो जाता है, मेरी मान्यता है, वह किसी भी चीज में क्रांति करने को राजी हो जाएगा। क्योंकि वह प्राणों का केंद्रीय मोह है। अगर उस पर कोई क्रांति करने को राजी हो गया तो फिर और जिंदगी के किसी मसले पर वह डरने वाला नहीं है। इसलिए उससे बात शुरू की है। जो लोग उसके लिए राजी हैं वे और चीजों के लिए भी राजी हो जाएंगे, यह मेरी समझ है।

अंत में एक बात कहूंगा, उसी संबंध में सुबह भी हम फिर चर्चा कर सकेंगे।

यह सारी कारोबारी बात हुई। इस सारी बात में, जैसे मैंने कल सांझ को आपसे कहा कि सेल्फ-सेंटर्ड, वह जो बिल्कुल स्व-केंद्रित हो जाता है, वह भूल है, खतरनाक है; लेकिन इसका मतलब, इसका मतलब यह नहीं है कि काम में उलझ जाना है पूरा और उसे भूल जाना है जो हम स्वयं हैं। काम भी इसलिए है ताकि दूसरों के भीतर जो स्वयं छिपा है उसकी हम उसे याद दिला सकें। तो हम उसे भूल जाएं तो खतरनाक है।

विनोबा के काम में सैकड़ों बहुत निष्ठाशील लोग आए। और दस वर्षों के, बारह वर्षों के, पंद्रह वर्षों के अनुभव से सिर्फ दुख और विषाद से भर कर धीरे-धीरे वापस होने लगे। उनमें से अनेक लोगों ने मुझसे कहा कि हम जिस ख्याल से आए थे, तो विनोबा ने तो हमें एक काम में लगा दिया, वह ख्याल तो एक तरफ रह गया। हम आए थे अपनी आत्म-उपलब्धि के लिए, आत्म-शांति के लिए, आत्म-ज्ञान के लिए, वह एक तरफ रह गया और हमें एक काम में लगा दिया। ये पंद्रह वर्ष हमारे निकल गए। और हमें ऐसा लगता है कि यह तो ठीक था, एक दुकान वह थी जो हम करते थे, एक दुकान यह थी जो की, लेकिन इससे हुआ क्या? हमें क्या हुआ?

तो इस संबंध में कल सुबह आपसे मुझे कहना है। यह ध्यान रखना है कि आप इस काम में कितने ही उत्सुक हो जाएं, लेकिन वह गौण है, वह प्रमुख नहीं है। प्रमुख तो वह है कि आपके जीवन में आलोक, आनंद अवतरित हो। वह हो तो आप बांट सकेंगे। वह न हो तो आप बांट भी नहीं सकेंगे।

तो हमें ऐसा कार्यकर्ता नहीं चाहिए जो साधक न हो। उस कार्यकर्ता की हमें कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि आज नहीं कल वह कार्यकर्ता दुखी होगा, परेशान होगा और सारा जिम्मा वह हम पर थोप देगा कि हमें एक काम में उलझा दिया और हम तो इसमें खो बैठे।

पूना के ही एक मित्र, माणिक प्रभु, वे विनोबा के पास गए। पहले वे रामकृष्ण मिशन में गए, तो उन्होंने उन्हें एक अस्पताल में लगा दिया। तो उन्होंने दो-चार वर्ष अस्पताल में सेवा की। फिर उनको लगा, भई ठीक है, यह तो किसी अस्पताल में भी हम कर लेते, लेकिन इससे हुआ क्या? इससे तो हम कहीं गए नहीं, मैं तो वही का वही हूं। वे वहां से छोड़ कर विनोबा के पास गए। विनोबा ने कहा कि तू दस साल की पैदल यात्रा कर पूरे मुल्क की और मेरा साहित्य ले जा और गांव-गांव में साहित्य पहुंचा दे। वे बेचारे साहित्य का झोला लेकर गांव-गांव घूमने लगे। दो साल घूम चुके। अभी वे एक तीन दिन पहले जबलपुर आए और मेरे पास आए। तो मैंने उनसे पूछा कि यह तो दूसरी अस्पताल शुरू हो गई। ठीक था, जब दो-चार साल में अनुभव किए कि यह तो अस्पताल है, ठीक है, इससे हुआ क्या? तो गीता-प्रवचन बेच कर क्या हो जाएगा? या मैं तुमसे यह गीता-प्रवचन छीन लूं और साधना-पथ पकड़ा दूं और क्रांतिबीज पकड़ा दूं कि जाओ गांव-गांव इसको बेचो दस साल तक। तो क्या होगा?

तो मैंने उनको कहा कि जैसे वे अस्पताल के दिन फिजूल गए, ये भी दस साल फिजूल चले जाएंगे, अगर यह ख्याल न हो आपको कि यह गौण है और केंद्रीय बात कुछ और है और उसे भूल नहीं जाना है। नहीं तो क्या पहुंचाएंगे लोगों तक? पहुंचाने का सवाल कहां है?

तो साधक प्रथम है और उसका कार्यकर्ता होना एकदम द्वितीय है। और अगर दोनों में से खोना हो, तो कार्यकर्तापन को खो देना, साधकपन को मत खोना।

तो इस संबंध में कल सुबह आपसे बात करूंगा, क्योंकि अंतिम जाने के पहले वह बात कर लेनी जरूरी है। नहीं तो इन तीन-चार बैठकों से कहीं आप एकदम कार्यकर्ता होकर लौट जाएं, तो वह भारी नुकसान हो गया। वह फिर, वह तो बहुत भारी नुकसान हो गया। तो कल सुबह उसके बाबत हम थोड़ी बैठ कर बात कर लेंगे।

लेकिन यह ध्यान में रहना चाहिए कि साधक हैं आप, कार्यकर्ता होना बिल्कुल गौण बात है। अगर वह खोती हो तो खो सकती है, लेकिन साधक होना नहीं खो सकता, किसी मूल्य पर नहीं खो सकता। साधक होते हुए अगर कोई काम आपसे बन सकता है, उसे जरूर करें, उसे जरूर पहुंचा दें। आत्मा रहे तो शरीर रह सकता है, शरीर अकेला रह जाए तो उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो हिंदुस्तान में यह भूल बहुत दफे हो चुकी है, रोज होती है। और आप जल्दी से कार्यकर्ता बन सकते हैं, यह मैं जानता हूं। यह कठिनाई नहीं है। यह एकदम सरल बात है। सवाल तो साधक बनने का कठिन है। कार्यकर्ता बनने का तो एकदम सरल है, उसमें क्या कठिनाई है! और कोई दूसरा काम न करके यह काम आप कर लेंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। बहुत लोग मिल जाएंगे आपको जो कि काम करने को एकदम तैयार हो जाएंगे।

लेकिन ध्यान रहे, क्रिया अक्रिया के केंद्र पर हो तो ही अर्थपूर्ण है, तो ही आध्यात्मिक है, नहीं तो नहीं। तो वह हम जो केंद्र भी बना रहे हैं वह अक्रिया सिखाने को बना रहे हैं। तो कहीं ऐसा न हो कि आप कार्यकर्ता हो जाएं। तब तो मामला खतम हो गया, उस केंद्र को बना कर हम क्या करेंगे! वह फिजूल हो जाएगा। उसका कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। उसकी बात हम कल सुबह करेंगे।

चौथा प्रवचन

'मैं' की छाया है दुख

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक धर्मगुरु ने एक रात एक सपना देखा। सपने में उसने देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। जीवन भर स्वर्ग की ही उसने बातें की थीं। और जीवन भर, स्वर्ग का रास्ता क्या है, वह लोगों को बताया था। वह निश्चिंत था कि जब मैं स्वर्ग के द्वार पर पहुंचूंगा तो स्वयं परमात्मा मेरे स्वागत को तैयार रहेंगे।

लेकिन वहां द्वार पर तो कोई भी नहीं था। द्वार खुला भी नहीं था, बंद था। और द्वार इतना बड़ा था कि उसके ओर-छोर को देख पाना संभव नहीं था। उस विशाल द्वार के समक्ष खड़े होकर वह एक छोटी सी चींटी की तरह मालूम होने लगा, इतना छोटा मालूम होने लगा। उसने बहुत द्वार को खटखटाया, लेकिन उस विशाल द्वार पर उस छोटे से आदमी की आवाजें भी पैदा हुईं या नहीं, इसका भी पता लगना कठिन था। वह बहुत डर गया। निरंतर उसने यही कहा था कि परमात्मा ने अपनी ही शक्ल में आदमी को बनाया। और आज इस विराट द्वार के समक्ष खड़े होकर वह इतना छोटा मालूम होने लगा। बहुत चिल्लाने, बहुत द्वार पीटने पर कोई द्वार से एक छोटी खिड़की खुली और किसी ने झांका। जिस व्यक्ति ने झांका था उसकी हजार आंखें होंगी। और इतनी तेज रोशनी थी उन आंखों की कि वह धर्मगुरु एक छोटे से दीवाल के कोने में सरक गया। इतना डर गया और चिल्लाया कि आप कृपा कर चेहरा भीतर रखें। हे परमात्मा! आप चेहरा भीतर रखें। मैं बहुत डर गया हूं।

उस हजार आंखों वाले व्यक्ति ने कहा कि मैं परमात्मा नहीं हूं, मैं तो केवल यहां का पहरेदार हूं, यहां का द्वारपाल हूं। तुम कहां हो, मुझे दिखाई नहीं पड़ते! तुम कितने छोटे हो और कहां छिप गए हो?

उस धर्मगुरु ने चिल्ला कर कहा कि मैं तो परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूं और स्वर्ग में प्रवेश पाना चाहता हूं।

उस द्वारपाल ने पूछा, तुम हो कौन और कहां से आए हो?

उसने कहा, क्या आपको पता नहीं? मैं एक धर्मगुरु हूं और पृथ्वी से आ रहा हूं।

उस हजार आंखों वाले आदमी ने कहा, पृथ्वी! यह पृथ्वी कहां है?

वह धर्मगुरु हैरान हुआ, उसने कहा, तुम्हें पृथ्वी का भी पता नहीं है!

उस हजार आंखों वाले आदमी ने कहा कि किस यूनिवर्स में, किस विश्व की पृथ्वी की तुम बात कर रहे हो? करोड़ों यूनिवर्स हैं। करोड़ों विश्व हैं। प्रत्येक विश्व के करोड़ों सूरज हैं। प्रत्येक सूरज की अपनी पृथ्वियां हैं। तुम किस पृथ्वी की बात करते हो? क्या नंबर है तुम्हारी पृथ्वी का? क्या इंडेक्स नंबर है?

उसे तो कुछ पता नहीं था। उसने कहा कि हम तो एक ही विश्व को जानते हैं और एक ही सूरज को। और हमने इसलिए उनका कोई नाम नहीं रखा, कोई नंबर नहीं रखा।

उस पहरेदार ने कहा, तब बहुत मुश्किल है पता लगाना कि तुम कहां से आते हो। पहली बार ही इस द्वार पर पृथ्वी का नाम सुना गया है। और मनुष्य, यह शब्द भी पहली बार ही मेरे कानों में पड़ा है।

उसके तो प्राण बैठ गए धर्मगुरु के! सोचा था परमात्मा द्वार पर स्वागत को मिलेंगे। यहां तो इसका भी कोई पता नहीं है कि जिस पृथ्वी से वह आता है वह कहां है। फिर भी उस पहरेदार ने कहा, तुम निश्चिंत रहो, मैं अभी पूछताछ करवाता हूं, थोड़ा समय तो लग जाएगा। उस भवन में खोज करवाता हूं कि तुम किस पृथ्वी की बातें करते हो, जहां सारी दुनिया की पृथ्वियों के संबंध में हमारे पास आंकड़े इकट्ठे हैं, नक्शे इकट्ठे हैं। लेकिन कुछ महीने लग जाएंगे, इसके पहले तो इसका पता लगना कठिन है कि तुम कहां से आते हो और किस जाति के हो और क्या प्रयोजन है तुम्हारा यहां आने का।

उसने कहा, मैं परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूं।

उस पहरेदार ने कहा, अनंत वर्ष हो गए मुझे इस द्वार पर, अभी तो मैं भी परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाया हूं। और अब तक मैं ऐसे व्यक्ति को भी नहीं मिला हूं इस स्वर्ग के द्वार पर जिसने परमात्मा के दर्शन किए हों। परमात्मा की पूरी सृष्टि को ही जान लेना कठिन है, परमात्मा को जानना तो और भी कठिन है। वह तो समग्रता का ही नाम है।

घबड़ाहट में उस धर्मगुरु की नींद टूट गई। वह पसीने से लथपथ था। घबड़ा गया था। फिर रात भर उसे नींद नहीं आ सकी। वह बार-बार यही सोचता रहा कि कहीं मनुष्य ने अपने अहंकार के ही प्रभाव में तो ये सारी बातें नहीं सोच ली हैं कि परमात्मा ने आदमी को अपनी ही शक्ल में बनाया और परमात्मा आदमी से मिलने को उत्सुक है और पुकार रहा है? और स्वर्ग के द्वार और मोक्ष, ये कहीं मनुष्य ने अपने ही मन की कल्पनाएं तो नहीं खड़ी कर ली हैं?

इस कहानी से इसलिए मैं शुरू करना चाहता हूं--इस धर्मगुरु के सपने से--कि आदमी एक बहुत बड़े भ्रम-लोक में जीता है। वह स्वयं को न मालूम क्या-क्या समझ लेता है। जब कि इस विराट विश्व के किसी कोने में उसका कोई भी अस्तित्व नहीं है। इस विश्व की विराटता को हम अनुभव करें और फिर उसके सामने अपने को खड़ा करें, तो हम कहां रह जाते हैं? हम कहां हैं? यह पृथ्वी बहुत छोटी है। हमारा सूरज इस पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा है। और यह सूरज, जितने सूरज को हम जानते हैं, उनमें सबसे छोटा है। और कोई दो अरब सूरज जान लिए गए हैं। और प्रत्येक सूरज का अपना विस्तार है। और ये दो अरब सूरज ही समाप्ति नहीं है, उसके आगे भी विश्व होगा, उसके आगे भी विस्तार होगा, उसके आगे भी फैलाव होगा। इस इतने अनंत विश्व के एक छोटे से पृथ्वी के कोने पर छोटा सा प्राणी है मनुष्य। वह भी कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं है उसकी। कोई साढ़े तीन अरब उसकी संख्या है। अगर हम और प्राणियों की संख्या के हिसाब से विचार करेंगे, तो पाएंगे वह कहीं भी नहीं है। और छोटे-छोटे प्राणी हैं, उनकी संख्या अनंत है। उसमें छोटी सी संख्या का यह मनुष्य है।

मनुष्य का यह जो ह्यूमन कार्नर है, यह छोटा सा जो कोना है इस जगत में, उस कोने में हम न मालूम क्या अपने को समझ बैठे हैं! न मालूम क्या अपने को सोच बैठे हैं!

यह मनुष्य भी बहुत थोड़े से दिन जीता है, कोई सत्तर-अस्सी वर्ष, ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष जीता है। इस अनंत विश्व के विस्तार में सौ वर्षों की कोई गणना नहीं, कोई कीमत नहीं, कोई जगह नहीं। पृथ्वी को बने ही कोई दो अरब वर्ष हो गए। और पृथ्वी बहुत नया आगमन है जगत में। अरबों-खरबों वर्ष पीछे हैं, उनकी कोईशृंखला का अंत नहीं; उतना ही समय आगे है, अनंत, इटरनल, उसका कोई अंत नहीं। उसमें एक छोटे से क्षणों में एक आदमी जी लेता है और न मालूम क्या सोच लेता है। स्पेस के ख्याल से भी आदमी ना-कुछ है, टाइम के ख्याल से भी आदमी ना-कुछ है।

धार्मिक व्यक्ति मैं उसे कहता हूं जो अपने इस ना-कुछ होने के अनुभव को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति की कथा उलटी रही है। धार्मिक व्यक्ति घोषणा करता हैः अहं ब्रह्मास्मि! मैं हूं ब्रह्म! मैं हूं ईश्वर! मैं हूं आत्मा! मैं हूं अनंत आत्मा! मैं हूं मोक्ष का अधिकारी! मैं यह हूं! मैं वह हूं! धार्मिक व्यक्ति इन बातों की घोषणा करता है।

ऐसे व्यक्ति को मैं धार्मिक नहीं कहता हूं। धार्मिक व्यक्ति वह है जो अपनी इस नथिंगनेस को, इस ना-कुछ होने को अनुभव कर लेता है। जिस दिन यह ना-कुछ होना अनुभव हो जाता है, उसी दिन जीवन के कोई बंद द्वार खुल जाते हैं और सब कुछ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। लेकिन ना-कुछ होने का अनुभव अत्यंत प्राथमिक है। बिल्कुल पहली सीढ़ी है कि हम जानें कि हम कुछ भी नहीं हैं। लेकिन यह हमें पता लगना कठिन होता है। क्योंकि हम मनुष्यों के बीच में जीते हैं और हम सबका भ्रम चूंकि समान है, इसलिए उस भ्रम का कभी खंडन नहीं होता। हम सब एक-दूसरे के भ्रम के पोषक बनते चले जाते हैं।

जब पहली बार गैलीलियो और उसके साथियों ने यह कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी ही चक्कर लगाती है सूरज के, तो मनुष्य के अहंकार को बड़ा धक्का पहुंचा। धर्मगुरुओं ने कहा, यह कैसे हो सकता है? परमात्मा ने विशेष रूप से मनुष्य को बनाया है। और सारा जगत मनुष्य के उपभोग के लिए बनाया है। तो जिस पृथ्वी पर मनुष्य रहता है वह पृथ्वी सूरज के चक्कर कैसे लगा सकती है? सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी के।

गैलीलियो को बुला कर अदालत में कहा कि माफी मांग लो। ऐसी भूल की बातें मत करो। आदमी जिस पृथ्वी पर रहता है वह कैसे सूरज का चक्कर लगा सकती है! सूरज ही चक्कर लगाता है।

लेकिन धीरे-धीरे जितनी हमारी समझ बढ़ी, पता चला कि पृथ्वी सेंटर नहीं है विश्व का--कि सारा विश्व उसका चक्कर लगाता हो। और पृथ्वी को सेंटर मानने का ख्याल हमें क्यों पैदा हुआ था? क्योंकि हम अपने को सेंटर मानने के ख्याल में थे। हम सारे जगत के केंद्र हैं, सारा जगत हमारे इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है। हम सब कुछ हैं बीच में, यह जो मनुष्य है, मनुष्यता है, यह केंद्र है और बाकी सब कुछ चक्कर लगाता है।

हजारों वर्षों से धार्मिक व्यक्ति यह कहते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि किन्हीं और प्राणियों से बिना पूछे ही हम यह घोषणा करते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। न तो हमने चींटियों से पूछा है, न हमने पक्षियों से पूछा है, यह एकतरफा गवाही हमने स्वीकार कर ली है, अपने ही मुंह से हम कहते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, वह सरताज है सृष्टि का। यह बिना किसी प्राणी से पूछे हुए हमने घोषणा कर दी है। और चूंकि किसी प्राणी को इस घोषणा का पता भी नहीं है इसलिए कोई प्रतिवाद भी नहीं आता, कोई इनकार भी नहीं करता है। हम अपने कोने में बैठे हुए मनुष्य घोषणाएं करते रहते हैंः हम यह हैं, हम वह हैं।

अगर पशु-पक्षियों से पूछा जाए और किसी दिन हम जान सकें कि वे क्या सोचते हैं, तो शायद ही कोई ऐसी प्राणी-जाति मिले, जो अपने मन में यह न सोचती हो कि हम सर्वश्रेष्ठ हैं। चींटियां सोचती होंगी--हम! बंदर सोचते होंगे--हम! डार्विन ने कह दिया कि मनुष्य विकसित हुआ है बंदरों से। अगर बंदरों से पूछा जाए तो बंदर यह कभी मानने को राजी नहीं होंगे कि आदमी उनके ऊपर एक विकास है। वे तो यही मानेंगे कि आदमी जो है हमारा एक पतन है। हम दरख्तों पर कूदते-छलांगते हैं, आदमी जमीन पर सरकता है। यह हमारा पतन है। हमारी जाति से कुछ लोग पतित हो गए हैं नीचे और वे आदमी हो गए हैं। यह एवोल्यूशन नहीं है। अगर बंदरों का कोई डार्विन होगा तो वह इसको एवोल्यूशन या विकास मानने को तैयार नहीं होगा कि आदमी कोई विकसित हो गया है। लेकिन आदमी मानने को राजी हो गए। आदमी के अहंकार को जो चीज भी पुष्ट करती है वह मानने को एकदम राजी हो जाता है। पृथ्वी केंद्र थी, मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी!

लेकिन धीरे-धीरे, रोज-रोज ये बातें छिनती चली गईं। विज्ञान ने रोज-रोज चोट की। पहली चोट यह हुई कि पृथ्वी केंद्र न रही। जिस दिन पृथ्वी केंद्र न रही, उसी दिन बहुत बड़ा धक्का मनुष्य के अहंकार को पहुंच गया। फिर हम सोचते थे कि मनुष्य के भीतर जितना हम घुसेंगे उतना ही परमात्मा उपलब्ध होगा, उतने ही आत्मा के दर्शन होंगे। इधर आया फ्रायड और उसने कहा कि मनुष्य के भीतर जितना घुसो, सिवाय सेक्स के कुछ उपलब्ध होता नहीं। बहुत घबड़ाहट सारी दुनिया में फैली। आदमी ने फिर इनकार किया कि कैसी फिजूल बातें हैं! भीतर तो है परमात्मा। और यह एक फ्रायड कहता है कि भीतर है सेक्स। ये तो सब बड़ी गलत बातें हैं। लेकिन जितनी हमारी समझ बढ़ी, पता चला कि आदमी के सामान्य केंद्र पर सेक्स ही है। वह उसी से जन्मता है, उसी में जीता है, उसी के लिए जीता है और उसी में समाप्त हो जाता है। और एक बड़ा धक्का लगा। और एक केंद्र अहंकार का टूट गया। और तीसरा बड़ा धक्का लगा, जब विराट विश्व की खोजबीन शुरू हुई और पाया कि अंतहीन सीमाएं हैं जगत की। कहीं कोई अंत होता नहीं, फैलता जाता है, फैलता जाता है जगत। कहीं कोई जगह नहीं आती जहां हम कहें कि यहां समाप्त हो गया।

सोचते थे हम कि तारे हमारे बहुत निकट हैं, रात को दिखाई पड़ते हैं। लेकिन जैसे-जैसे समझ बढ़ी, पता चला तारे हमसे बहुत दूर हैं। इतने दूर हैं कि उनकी गणना भी करनी बहुत कठिन है। सबसे करीब का जो तारा है हमसे, उसकी रोशनी भी आने में हम तक चार वर्ष लग जाते हैं। और रोशनी की गति साधारण नहीं होती, एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील होती है। एक सेकेंड में प्रकाश की किरण चलती है तो एक लाख छियासी हजार मील चलती है, एक सेकेंड में! जो सबसे करीब का तारा है उसकी किरण चले आज तो चार वर्ष बाद लोनावला पहुंचेगी। यह सबसे करीब का तारा है। दूर से दूर के जो तारे हैं, उनकी रोशनी उस दिन चली थी जिस दिन पृथ्वी बनी, दो अरब वर्ष पहले, अभी तक पहुंची नहीं। उनके आगे भी तारे हैं, वे हमें दिखाई नहीं पड़ सकते हैं, क्योंकि उनकी रोशनी हम तक अभी पहुंची ही नहीं है।

रात को जो तारे हम देखते हैं, वे जहां हमें दिखाई पड़ते हैं वहां नहीं होते। कोई तारा वहां नहीं होता। रात बिल्कुल झूठी है, कोई तारा वहां नहीं जहां हमें दिखाई पड़ रहा है। वहां कभी था। उसकी रोशनी इतनी देर में आई, इतनी देर में तो वह न मालूम कहां चला गया, कितनी यात्रा कर गया। अब वहां नहीं है। जो तारा सबसे करीब है वह चार वर्ष पहले वहां था, अब वहां नहीं है। चार वर्ष में तो वह अरबों मील चल चुका। और हो सकता है चार वर्ष में टूट कर नष्ट भी हो गया हो। तो भी हमें दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि चार वर्ष पहले वह वहां था, उसकी रोशनी वहां से चली थी, वह अब हमारी आंख पर आई है, तो हमें दिखाई पड़ रहा है वहां है। पूरी रात झूठी है, कोई तारा वहां नहीं है जहां हमें दिखाई पड़ रहा है। कोई तारा सात वर्ष पहले वहां था, कोई हजार वर्ष, कोई लाख वर्ष, कोई करोड़ वर्ष, कोई अरब वर्ष। और दो अरब वर्ष पहले जो तारे थे उनकी तो रोशनी पहुंचेगी धीरे-धीरे हम तक।

यह सारी रात झूठी है। ये तारे इतने दूर हैं, इनकी दूरी ने घबड़ाहट पैदा कर दी। इनके विस्तार ने, यह जो इतना एक्सपैंडिंग जगत है, इसने आदमी को एकदम छोटे से छोटा कर दिया। वह कहीं भी नहीं रह गया, उसकी कोई गणना नहीं रह गई, उसका कोई हिसाब नहीं रह गया। धार्मिक आदमी को बड़ी चोटें पहुंची हैं।

मेरी दृष्टि में तो धार्मिक आदमी को चोट पहुंचनी नहीं थी, बल्कि धार्मिक आदमी की गहराई बढ़नी थी इन बातों से। क्योंकि इन बातों से यह पता चलना शुरू हुआ कि हम कुछ भी नहीं हैं। और वह पुराना हमारा भ्रम टूटा, कि हम सब कुछ अपने को मान कर बैठे थे। उस भ्रम को धक्के लगे। उससे सारी दुनिया का धार्मिक जगत एकदम हिल गया, कंप गया, और उसे लगा कि यह तो आदमी कुछ भी नहीं है। तो फिर हमारी घोषणाएं, हमारी अमरता की घोषणाएं, हमारी आत्मा की, ब्रह्म की, ईश्वर की, मोक्ष को पाने की घोषणाएं, उनका क्या होगा?

लेकिन मेरी दृष्टि में, विज्ञान की इन तीन सौ वर्षों की खोजों ने असली आदमी--असली धार्मिक आदमी--को पैदा करने की भूमिका उपस्थित कर दी। असली धार्मिक आदमी का पहला लक्षण हैः अपने ना-कुछ होने को जान लेना। और जिस दिन कोई अपनी पूरी नथिंगनेस को परिपूर्णता में जान लेता है, उसी दिन शून्य को उपलब्ध हो जाता है।

तो आज की सुबह इस संबंध में मैं आपसे थोड़ी बात कहना चाहता हूं। हम कुछ भी नहीं हैं, यह बोध हमारा गहरे से गहरा होता जाना चाहिए। यह बोध हमारा निरंतर तीव्र से तीव्र होता जाना चाहिए कि मैं कुछ भी नहीं हूं। और ऐसा सोचने की जरूरत नहीं है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। ऐसा तो जिंदगी को हम देखेंगे तो हमको दिखाई पड़ जाएगा कि मैं कुछ भी नहीं हूं। इसे दिखाई पड़ने में कौन सी कठिनाई है? मृत्यु रोज इसकी खबर लाती है कि हम कुछ भी नहीं हैं। लेकिन हम मृत्यु को कभी गौर से देखते नहीं कि वह क्या खबर लाती है। मृत्यु को तो हमने छिपा कर रख दिया है। मरघट गांव के बाहर बना देते हैं ताकि दिखाई न पड़े।

किसी दिन आदमी समझदार होगा, धार्मिक होगा, तो मरघट गांव के बिल्कुल चौरस्ते पर बनाना होगा--कि रोज दिन में दस दफा निकलते, आते-जाते दिखाई पड़े, मौत ख्याल में आए, कि मौत है। अभी कोई लाश

निकलती है, मुर्दा निकलता है, बच्चों को हम घर के भीतर बुला लेते हैं, कि कोई मुर्दा निकल रहा है, भीतर आ जाओ। मुर्दा निकले और हममें समझ हो, तो सब बच्चों को बाहर इकट्ठा कर लेना चाहिए कि देख लो यह आदमी मर गया, और ठीक ऐसे ही हम सब मर जाने को हैं।

हमारे ना-कुछ होने का बोध जिस बात से भी गहरा होता हो, जिस बात से भी तीव्र होता हो, वे सारी प्रक्रियाएं हमारे जीवन में वास्तविक धर्म के जन्म का, सत्य के जन्म का, प्रकाश के जन्म का कारण बनती हैं।

हम ना-कुछ हैं, यह किन-किन बातों से ख्याल में गहरा हो सकता है?

इसी बात की पूरी प्रक्रिया को ध्यान समझना चाहिए, जिससे आपके ना-कुछ होने का आपको रोज-रोज पता चलता चला जाए। हमारी हालत उलटी है। हम कुछ हैं, इस बात की कोशिश में जीवन भर प्रयास करते हैं।

एक बोधिधर्म भिक्षु था, वह कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया। वहां के सम्राट वू ने उसका स्वागत किया।

वू ने, जो वहां का सम्राट था, बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए करोड़ों रुपये खर्च किए थे। हजारों भिक्षुओं को रोज भोजन देता था। हजारों मंदिर बनवाए थे। बुद्ध की लाखों प्रतिमाएं बनवाई थीं। एक ही बौद्ध मंदिर उसने बनवाया था कि जिसमें उसने बुद्ध की दस हजार प्रतिमाएं रखवाई थीं। वह दस हजार बुद्धों वाला मंदिर अब भी शेष है।

तो जब बोधिधर्म चीन पहुंचा, तो वू उससे मिलने आया और उसने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं, मैंने इतने मंदिर बनवाए, इतने भिक्षुओं को मैंने दान दिया, धर्म की मैंने इतनी प्रभावना की, दूर-दूर तक धर्मशास्त्र बंटवाए, धर्म का प्रचार करवाया, इस सबका फल क्या है?

बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं!

सम्राट तो बहुत हैरान हो गया! क्योंकि भिक्षुओं ने उसको यही समझाया था कि इसका फल है। तुम्हें मोक्ष मिल जाएगा, स्वर्ग मिल जाएगा। यह सब समझाया था। और बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं! फल तो कुछ भी नहीं है, लेकिन पाप जरूर तुम्हें लगा।

उस वू ने कहा, क्या कहते हैं आप! इस सबसे मुझे पाप लगा!

बोधिधर्म ने कहा, इससे आपका यह ख्याल मजबूत हुआ कि मैं कुछ हूं। मैंने इतना किया। इतने मंदिर बनवाए, इतने धर्मशास्त्र छपवाए, इतना प्रचार करवाया। इससे आपका यह ख्याल मजबूत हुआ कि मैं कुछ हूं। और जगत में एक ही पाप हैः इस बात का बोध कि मैं कुछ हूं। और एक ही पुण्य हैः इस बात का अनुभव कि मैं कुछ भी नहीं हूं।

वू तो नाराज हो गया। क्योंकि जिसने इतना किया हो और भिक्षु उससे कहे कि इसका कोई फल नहीं है, उलटा पाप है। वह तो नाराज होकर चला गया। और उसने आज्ञा दे दी कि बोधिधर्म उसके राज्य में नहीं ठहर सकेगा। बोधिधर्म को आज्ञा आई कि वू ने कहलवाया है कि तुम इस राज्य में नहीं ठहर सकोगे।

बोधिधर्म ने कहा, वह गलती में है। वह अगर चाहता भी कि मैं यहां ठहरूं, तो मैं ठहरने वाला नहीं था। ऐसे पापी राज्य में मैं रुकूंगा ही कैसे! उसको कहना कि वह चाहता भी कि मैं ठहरूं, तो मैं ठहरने वाला नहीं हूं। उसकी आज्ञा की कोई जरूरत नहीं, मैं तो जा ही रहा हूं।

उसके राज्य को छोड़ कर बोधिधर्म दूसरे राज्य में चला गया, नदी के उस पार निकल गया। जब वू की मृत्यु आई, कोई दस वर्ष बाद, रोज-रोज वह सोचता रहा, उस बोधिधर्म की बात उसके प्राणों को छेदती रही रोज-रोज, कि उसने कहा है कि कोई फल नहीं इसका, बल्कि पाप है, क्योंकि यह ख्याल पैदा हो गया कि मैं कुछ हूं। रोज-रोज सोचता रहा। फिर जैसे-जैसे मौत करीब आई, उसे लगना शुरू हुआ कि मैं तो ना-कुछ हो जाऊंगा।

और जब कल मृत्यु मुझे ना-कुछ कर ही देगी, तो मेरा यह ख्याल कि मैं कुछ था, मैंने इतना किया था, मैं यह था, मैं वह था, उसका क्या मूल्य रह जाएगा? क्या अर्थ रह जाएगा?

मरते वक्त उसने खबर भिजवाई, एक संदेशवाहक दौड़ाया, कि जाओ और बोधिधर्म को बुला लाओ! मुझे अनुभव हो रहा है कि शायद वही ठीक कहता था। मैं तो डूबता जा रहा हूं, सब विलीन होता चला जा रहा है।

बोधिधर्म के पास खबर पहुंची, बोधिधर्म ने कहा, मैं चलता तो हूं, लेकिन जिसकी खबर तुम लेकर आए हो, वह समाप्त हो गया है। और बहुत देर हो गई। जब मैंने कहा था, अगर वह तभी जान लेता कि मैं कुछ भी नहीं हूं, तो परम जीवन का उसे अनुभव हो जाता।

मृत्यु के क्षण में तो सभी जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं। लेकिन जीवन में जो जान लेते हैं वे धन्यभागी हैं। जीवन में ही जो इस सत्य को जान लेता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं... मृत्यु में तो इस सत्य को सभी को जान ही लेना पड़ता है, लेकिन तब बहुत देर हो गई, तब कोई क्रांति का समय न रहा... लेकिन जीवन में ही जो जान लेता है, जीते जी जो जान लेता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं।

च्वांगत्सु का शायद आपने नाम सुना हो। एक अदभुत फकीर था। एक गांव से निकलता था। गांव के बाहर, सांझ का समय था, अंधेरा था, एक आदमी की खोपड़ी से उसका पैर टकरा गया। मरघट था। उसने खोपड़ी को उठा कर सिर से लगा लिया और खोपड़ी को घर ले आया, अपने झोपड़े पर रख लिया। तो उसके मित्रों ने, उसके शिष्यों ने पूछा, इस खोपड़ी को यहां किसलिए ले आए हो?

उस च्वांगत्सु ने कहा कि मुझसे बड़ी भूल हो गई है। मरघट से मैं निकलता था, और वह छोटे लोगों का मरघट न था, बड़े लोगों का मरघट था। मरघट भी अलग-अलग होते हैं; छोटे आदमियों के अलग, बड़े आदमियों के अलग। जिंदगी में तो छोटे और बड़े अलग होते ही हैं, मृत्यु में भी हम फर्क कर लेते हैंः यह सम्राटों का मरघट है, यह दरिद्रों का मरघट है। तो उसने कहा, वह बड़े लोगों का मरघट था। यह किसी बड़े आदमी की खोपड़ी होनी चाहिए। हो सकता है किसी सम्राट की खोपड़ी हो। अगर यह आदमी जिंदा होता तो आज मेरी मुश्किल हो जाती। इसकी खोपड़ी में मेरा पैर लग गया था। कुछ भी हो, मर गया, फिर भी माफी तो मांग ही लेनी चाहिए, बड़े आदमी की खोपड़ी है। इसलिए इसको मैं ले आया, सम्मान से घर में रखूंगा, रोज माफी मांग लूंगा।

और फिर उस च्वांगत्सु ने कहा, यह खोपड़ी यहां पास रखी रहेगी तो मुझे यह ख्याल बना रहेगा कि आज नहीं कल मेरी खोपड़ी की भी यही गति हो जाने को है। आज नहीं कल किसी मरघट पर मेरी खोपड़ी पड़ी रहेगी और लोगों के जूते और लातें उसको लगती रहेंगी। जिस खोपड़ी के लिए मैं इतने सम्मान की अपेक्षा करता हूं, कल वह मिट्टी में मिल जाने को है, यह सत्य मुझे ख्याल में बना रहेगा इसलिए इस खोपड़ी को मैं पास ही रखने लगा हूं। और जिस दिन से इस खोपड़ी को मैंने अपने पास रखा है, अगर अब कोई जिंदा भी मेरी खोपड़ी में आकर लात मार दे, तो मैं ही उससे माफी मांग लूंगा कि आपके पैर को चोट तो नहीं लग गई है? क्योंकि यह लात तो लगनी है कल। मैं कब तक बचाऊंगा? यह खोपड़ी कल लातों में चली जाने को है।

यह जो सीधा सत्य है जीवन के ना-कुछ में बिखर जाने का, जीते जी जो इस सत्य को जानने में समर्थ हो जाता है, उसके जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उसी क्रांति को मैं धर्म कहता हूं। उसके जीवन में दुख का अंत हो जाता है। क्योंकि दुख की जड़ इस ख्याल में है कि मैं कुछ हूं। और जिस आदमी को यह ख्याल जितना ज्यादा है कि मैं कुछ हूं, वह आदमी उतने ही गहरे दुख में उतरता चला जाता है। दुख का और कोई आध्यात्मिक अर्थ नहीं है सिवाय इसके कि मैं कुछ हूं। यह जितनी तीव्रता से यह गांठ मेरे मन में होती है कि मैं कुछ हूं, उतनी ही यह गांठ दुख देती है। जिस आदमी का यह ख्याल मिट जाता है कि मैं कुछ हूं, उसे दुख देना कठिन हो जाता है,

उसे दुख नहीं दिया जा सकता। और जिस दिन दुख की सारी संभावना विलीन हो जाती है भीतर से, उसी दिन आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है।

आनंद को कोई खोज नहीं सकता। न ही आनंद कहीं मिलता है कि कोई चला जाए और भर लाए। न ही आनंद कोई दे सकता है किसी को। लेकिन दुख को हम खोजते हैं, दुख को हम इकट्ठा करते हैं, दुख की हम गांठ बांध लेते हैं और दुखी होते रहते हैं। दुख को हम चाहें तो विसर्जित कर दें, दुख को हम चाहें तो विदा कर दें। और दुख विदा हो जाए, तब जो शेष रह जाता है वही आनंद है।

और दुख किस गांठ पर इकट्ठा होता है?

मैं के अतिरिक्त, अहंकार के अतिरिक्त, दुख किसी और गांठ पर इकट्ठा नहीं होता। लेकिन हमारा सारा जीवन का उपक्रम इस दुख को ही इकट्ठा करने में है, इस दुख को ही बांध लेने में लगा रहता है। हम मंदिर भी बनाते हैं तो वह भी हमारे अहंकार की पूजा होती है कि मैंने बनाया यह मंदिर। हम सेवा भी करते हैं तो वह भी अहंकार की ही पूजा होती है कि मैंने की यह सेवा। हम प्रेम भी करते हैं तो भी वह घोषणा अहंकार की होती है कि मैं कर रहा हूं प्रेम। और तब प्रेम भी दुख लाता है, सेवा भी दुख लाती है, धर्म भी दुख लाता है। मंदिर और मस्जिद भी दुख लाते हैं। जहां 'मैं' है, वहां दुख अनिवार्य है। 'मैं' की छाया है दुख।

हम सब मुक्त होना चाहते हैं दुख से, लेकिन मैं से जो मुक्त नहीं होना चाहता वह दुख से मुक्त नहीं हो सकता है। हम दुख से तो बचना चाहते हैं और 'मैं' को भरना चाहते हैं। ये इतनी कंट्राडिक्ट्री, ये इतनी विरोधी बातें हैं कि इन दोनों का कोई मेल कभी नहीं हो सकता। क्या यह संभव नहीं है कि हम यह जानने में समर्थ हो जाएं, सफल हो जाएं कि मैं कुछ भी नहीं हूं? इसे बहुत रूपों में विचार करें तो आदमी सफल हो सकता है।

पहला तो मैंने यह कहा कि स्थान, स्पेस के विस्तार को निरंतर ख्याल में लेना चाहिए।

लेकिन स्पेस का जो विस्तार है उससे हमारे सब संबंध छूट गए हैं। आदमी की बनाई हुई बस्तियों में स्पेस का कोई पता नहीं चलता। बंबई जैसी बस्ती में, कब चांद निकलता है, कब डूबता है, कोई पता नहीं चलता। आदमी के मकान इतने बड़े हैं कि आकाश उसमें छिप गया।

अगर कोई घड़ी, आधा घड़ी को जमीन पर चुपचाप लेट गया हो और आकाश के विस्तार को देखता रहे, तो उसे पता चलेगा कि मैं कुछ भी नहीं हूं, मैं कहां हूं! अनंत के विस्तार की प्रतीति, चारों तरफ जो दूर तक असीम फैला है उसका अनुभव, उसका बोध, उसके प्रति जागना--मैं कुछ भी नहीं हूं, इसका ख्याल लाएगा।

एक विस्तार स्पेस का है, दूसरा विस्तार टाइम का है। समय की भी, काल की भी कोई सीमा नहीं, पीछे अनंत है, आगे अनंत है, उसमें मैं कहां हूं? इस काल की अनंत धारा में मैं कहां हूं? इस काल की अनंत गंगा में मेरी बूंद कहां है? एक सपने से भी ज्यादा नहीं।

तो ये दो विस्तार--समय का और स्थान का; आकाश का और काल का। इन दोनों विस्तारों को उनकी पूरी गहराई में देखने से, मैं कुछ भी नहीं हूं, इसका अनुभव होना शुरू होता है। तो इन दोनों पर मेडिटेशन, इन दोनों पर ध्यान रोज-रोज गहरा करने की जरूरत है। उठते, बैठते, चलते, सोते, इस बात का पूरा ख्याल रखना जरूरी है, इसकी रिमेंबरिंग, इसका स्मरण कि मैं कहां हूं? मेरे होने के दो ही बिंदु हैं जहां मैं होता हूं। टाइम और स्पेस जहां कटते हैं वहीं मैं हूं। और अगर ये दोनों अनंत हैं, तो मेरे होने का क्या? थोड़े से समय का क्या मूल्य है जब मैं जीता हूं? और थोड़े से स्थान का क्या मूल्य है जिसको मैं घेरता हूं? कल मौत आएगी; न तो मैं स्थान घेरूंगा फिर और न समय घेरूंगा, वे दोनों बातें समाप्त हो जाएंगी।

इन दोनों के ऊपर निरंतर ध्यान, इन दोनों का निरंतर स्मरण, इन दोनों की निरंतर प्रतीति, बहुत अदभुत, बहुत अदभुत गहराई में, शांति में, मौन में ले जाती है। लेकिन करें तो ही ख्याल में आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है।

तो एक तो इन दो बातों पर ध्यान के लिए आपसे कहूंगा। इनको किसी भी क्षण भूलना उचित नहीं है। यह दोनों तरफ का अनंत विस्तार हमारे ख्याल में बना रहना चाहिए। और अगर यह दो बातों का बोध स्पष्ट हो जाए, तो आप एक क्रांति अपने भीतर होती हुई पाएंगे। आपको पता भी नहीं चलेगा कि भीतर कोई व्यक्ति बदलने लगा और एक दूसरे व्यक्ति का जन्म शुरू हो गया। गहरे अर्थों में तो ये दो बोध, लेकिन इसके आस-पास और बहुत से बोध सहयोगी हो सकते हैं।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि जाकर कभी-कभी मरघट पर बैठा करो।

एक भिक्षु ने उनसे पूछा कि मरघट पर किसलिए?

तो बुद्ध कहते कि वहां जीवन अपनी पूर्णता को उपलब्ध होता है, तुम भी उसी तरफ रोज चले जा रहे हो, इसका शायद तुम्हें वहां ख्याल आए। जब वहां चिता जलती हो, तो बैठ कर देखा करो। शायद किसी दिन तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि चिता पर कोई और नहीं, तुम्हीं चढ़े हुए हो। देरी थोड़ी सी होगी, आज कोई और चढ़ा है, कल मैं चढ़ूंगा, परसों कोई और चढ़ेगा। तो शायद किसी दिन चिता को देख कर तुम्हें ख्याल आ जाए कि कोई और नहीं, तुम्हीं चढ़े हुए हो। तो भिक्षुओं को अनिवार्य रूप से वे कहते थे कि मृत्यु के संबंध में वे ध्यान करें।

दूसरी बात, जीवन के सतत परिवर्तन--कल मैं कुछ और था, आज मैं कुछ और हूं; परसों मैं बच्चा था, आज जवान हूं, कल बूढ़ा हो जाऊंगा; एक दिन मैं नहीं था और एक दिन मैं फिर नहीं हो जाऊंगा--यह जो फ्लक्स, यह जो धारा है निरंतर परिवर्तन की...

हेराक्लाइटस कहता थाः एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हैं। जब तक हम दुबारा उतरने जाते हैं, नदी बह गई; जब तक हम दुबारा उतरने जाते हैं, तब तक हम बदल गए। एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हैं।

हेराक्लाइटस से कोई मिलने आता और जब जाने लगता, तो हेराक्लाइटस उससे कहता कि मेरे मित्र, ख्याल रखना, तुम जो आए थे वही वापस नहीं लौट रहे हो! और तुम जिससे मिले थे आकर, अब उसी से विदा नहीं ले रहे हो। तुम भी बदल गए, मैं भी बदल गया।

चौबीस घंटे सब बदला जाता है। वहां कुछ भी थिर नहीं है, वहां कोई भी चीज...

एडिंग्टन ने एक बार मजाक में यह कहा कि भाषा के कुछ शब्द बिल्कुल ही झूठे हैं। तो ऑक्सफर्ड में वह बोलता था, तो किसी ने पूछा कि जैसे? तो उसने कहा, रेस्ट! रेस्ट बिल्कुल झूठा शब्द है। कोई चीज ठहरी हुई है ही नहीं। सारी चीज बदलती जा रही है। कोई चीज थिर नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है, कोई चीज खड़ी हुई नहीं है। जिसको आप खड़ा हुआ भी देख रहे हैं वह भी खड़ा हुआ नहीं है, उसके भीतर भी सब भागा जा रहा है। ये दीवालें मकानों की आपको खड़ी दिखाई पड़ रही हैं, ये दरख्त आपको ठहरे हुए मालूम पड़ रहे हैं। यह बिल्कुल झूठी बात है। यह दरख्त ठहरा हुआ नहीं है। नहीं तो यह दरख्त कभी बूढ़ा नहीं हो पाएगा। यह भागा जा रहा है भीतर, यह बूढ़ा होता चला जा रहा है। यह दीवाल ठहरी हुई नहीं है, यह भीतर बदलती जा रही है। नहीं तो यह मकान कभी गिर नहीं पाएगा। सब बदल रहा है।

इस बदलाहट का पूरा बोध अगर आपको है तो आपको यह पता नहीं चलेगा कि मैं हूं। क्योंकि जहां सब बदल रहा है वहां मैं के खड़े होने के लिए जगह कहां है? जहां कोई चीज खड़ी नहीं है, जहां सब फ्लक्स है, जहां सब प्रवाह है, वहां मैं कहां हूं?

इसलिए बुद्ध ने तो एक बड़ी अदभुत बात कहनी शुरू की थी। उन्होंने कहा थाः आत्मा है ही नहीं। क्योंकि आत्मा के लिए खड़े होने की जगह कहां है? लोग नहीं समझ पाए कि यह क्या बात उन्होंने कही। पर बुद्ध आत्मा और अहंकार का एक ही अर्थ करते थे। वे कहते थे कि इस बात का भाव कि मैं हूं, यही अहंकार है, यही आत्मा है।

अगर सब कुछ बदल रहा है, तो मैं खड़े होने के लिए कहां जगह पाऊंगा? मेरे थिर होने की कहां गुंजाइश है?

सांझ हम एक दीया जला देते हैं, सुबह हम कहते हैं कि वही दीया अब तक जल रहा है, उसे बुझा दें। झूठी हम बात कहते हैं। सांझ जो दीया जलाया था वह तो कभी का बुझ गया। लौ हर क्षण बदलती जाती है, दूसरी लौ आ जाती है, पहली लौ बुझ जाती है, तीसरी आ जाती है, चौथी आ जाती है। इतनी तीव्रता से ज्योति बुझती जा रही है, धुआं होती जा रही है, दूसरी ज्योति जलती आ रही है। सांझ जो ज्योति हमने जलाई थी, सुबह हम उसी को नहीं बुझाते हैं। रात भर ज्योति बदलती रही, बदलती रही, बदलती रही, रात भर ज्योति बदलती रही, वही ज्योति सुबह नहीं है।

जो आप पैदा हुए थे वही थोड़े ही आप मर जाते हैं, सब बदलता रहा, सब बदलता रहा, ज्योति की तरह जन्म से लेकर मृत्यु तक सब बदलता रहा। इस पूरी बदलाहट का बोध, तो आपको पता नहीं चलेगा कि मैं हूं।

तो ये चार बोध--एक तो समय का विस्तार, एक आकाश का विस्तार, क्षण-क्षण परिवर्तन और अंततः मृत्यु--इन चार पर जो मेडिटेट करता है, जो ध्यान करता है, वह उस परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जहां उसका पता चल जाता है जो काल से भी अनंत है और जो आकाश से भी विस्तीर्ण है, और जिसकी कोई मृत्यु नहीं, और जिसमें कोई परिवर्तन नहीं। लेकिन इन चार के बोध से उसका पता चलता है जो इन चारों से भिन्न और पृथक है।

इन चारों के बोध से उसका क्यों पता चलता है? असल में पता चलने के लिए, किसी भी चीज के ठीक-ठीक बोध के लिए विपरीत की पृष्ठभूमि चाहिए।

स्कूल में हम बच्चों के लिए काले तख्ते, ब्लैक बोर्ड बना देते हैं। सफेद दीवाल पर भी सफेद खड़िया से लिख सकते हैं, लेकिन तब बच्चों को कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। और अगर सफेद खड़िया से सफेद दीवाल पर कोई शिक्षक लिखता होगा तो हम कहेंगे पागल है! ब्लैक बोर्ड हम बना देते हैं और सफेद खड़िया से उस पर लिखते हैं, क्योंकि काले की पृष्ठभूमि में सफेद की रेखाएं उभर कर स्पष्ट हो आती हैं।

अगर हमें उसे खोजना हो जो अनंत है और असीम है, उसे खोजना हो जिसमें कोई परिवर्तन कभी नहीं होता, उसे खोजना हो जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती, उसे खोजना हो जो शाश्वत है, उसे खोजना हो जो परमात्मा है, उसे खोजना हो जो सत्य है, तो हमें उसका बोध, उसकी पृष्ठभूमि खड़ी करनी होगी, जो कि निरंतर परिवर्तन में है, जो कि निरंतर मर रहा है। उसका बोध, उसके काले तख्ते पर, वह जो बिल्कुल भिन्न है और विपरीत है, उसकी सफेद रेखाएं उभर आएंगी और दिखाई पड़ जाएंगी। जितनी अंधेरी रात होती है, तारे उतने ही चमकदार दिखाई पड़ते हैं। तारे तो दिन में भी रहते हैं, लेकिन वे दिखाई नहीं पड़ते। तारों को देखने के लिए रात की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि दिन की रोशनी में तारों के दिखाई पड़ने की कोई जगह नहीं रह जाती। लेकिन रात के अंधकार में वे चमक आते हैं, वे अलग दिखाई पड़ने लगते हैं।

तो ये चार स्मरण जितने प्रगाढ़ हो जाएंगे, उतना ही इन चारों से जो भिन्न है, जो नॉन-टेम्पोरल है, जो नॉन-स्पेसियल है, जो न समय के भीतर है और न स्थान के भीतर है, जो अनचेंजिंग है, अनमूविंग है, जो न बदलता है और न परिवर्तित होता है, जो अनडाइंग है, जिसकी कभी कोई मृत्यु नहीं होती, उसका अनुभव, उसकी प्रतीति, उसका साक्षात हो सकता है। उसके लिए यह तैयारी करनी अत्यंत आवश्यक है। और जिस दिन उसका अनुभव होता है उसी दिन जीवन वस्तुतः जीवन बनता है। उसी दिन जीवन आलोक से मंडित होता है। उसी दिन जीवन समस्त बंधनों से शून्य और रिक्त हो जाता है। उसी दिन हम उसे जान पाते हैं जिसको जान लेने के बाद फिर कुछ जानना और पाना शेष नहीं रह जाता है। वही है उपलब्धि। उसी की दिशा में, उसी सागर

की खोज में हम सबके जीवन की नदियां बही जाती हैं। लेकिन जो इन नदियों को ही सब कुछ समझ लेता है वह फिर सागर तक पहुंचने से वंचित रह जाता है।

ये चार चीजों का बोध आपके भीतर नथिंगनेस को, नो-बीइंग को, नहीं हूं मैं कुछ, इस भाव को गहरा करेगा। और जिस दिन यह भाव पूर्ण हो जाएगा कि मैं कुछ नहीं हूं, उसी दिन एक विस्फोट हो जाएगा और उसका पता चलेगा जो मैं हूं, जो सब कुछ है। नथिंगनेस से ही टोटेलिटी का, शून्य से ही पूर्ण के अनुभव का द्वार खुलता है। शून्य में जो प्रतिष्ठित है वह धन्य है। शून्य में प्रतिष्ठा पाने की जो अभीप्सा और प्यास है, वही साधना है।

कल रात मैंने आपसे कहा कि हम, साधक हमारे जीवन के केंद्र पर हो। और साधक का अर्थ हैः ना-कुछ होने का भाव।

कबीर कहते थेः मैं एक बांस की पोंगरी हूं। जो संगीत है, वह मुझसे बहता है, लेकिन मैं ही वह संगीत नहीं हूं। मैं संगीत को रोकने में बाधा तो बन सकता हूं, लेकिन संगीत को पैदा करने वाला मैं नहीं हूं। बांसुरी अगर गड़बड़ हो तो संगीत पैदा नहीं होगा, लेकिन बांसुरी संगीत की जन्मदात्री नहीं है।

जिस दिन हमें पता चलता है कि मैं ना-कुछ हूं, उस दिन हम बांस की एक पोंगरी रह जाते हैं। और फिर परमात्मा का संगीत उस बांस की पोंगरी से सहज प्रवाहित होता चला जाता है। फिर कोई बाधा नहीं रह जाती हमारी तरफ से, फिर हम पोली बांस की पोंगरी हो जाते हैं। वह पोलापन जो है, वह जो नथिंगनेस है वह पोलापन है। वह जो ना-कुछ हो जाना है, वह सारी चीज पोली हो गई, जगह दे दी गई। अब परमात्मा बह सकता है।

रवींद्रनाथ मरते थे, उसके दो दिन पहले किसी मित्र ने उनसे कहा कि आपने इतने गीत गाए, कि आप तो धन्यभागी हैं और आप तो आप्तकाम हैं, आप तो पा लिए उसे जो पाने जैसा था। रवींद्रनाथ ने कहा, मेरे मित्र, जो गीत मैंने गाए उनका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन जिन गीतों को गाते वक्त मैं मौजूद ही नहीं था, बस उनका ही थोड़ा सा मूल्य है। और मैंने दो तरह के गीत गाए। एक जो मैंने गाए, उनका कोई मूल्य नहीं है। एक जिनको मैंने गाया ही नहीं--मैं केवल बांसुरी बन गया--किसी और ने गाया, और मुझसे वे बह गए और प्रवाहित हो गए, उनका मूल्य है। जिन गीतों के लिए लोगों ने मुझे धन्यवाद दिया है, वे मैंने गाए ही नहीं थे। जो मैंने गाए थे, उनमें तो भूल हो गई है। उनमें वह बात नहीं है, वह अमृत स्वर नहीं है।

साधक का अर्थ हैः इतना खाली हो जाना कि वह समष्टि का माध्यम बन जाए, बांसुरी बन जाए, उससे सारा संगीत बह जाए।

साधक का अर्थ हैः इतना शून्य, इतना पोला हो जाना कि परमात्मा उससे प्रवाहित हो सके। मार्ग बन जाए।

साधक का अर्थ हैः मार्ग बन जाना, माध्यम बन जाना, केवल बीच का सेतु बन जाना, ताकि परमात्मा उससे प्रकट हो सके। वह जो समष्टि है, वह जो सबके भीतर छिपा हुआ प्राणों का संगीत है, वह उसके लिए एक बांसुरी बन जाए।

यह बांसुरी आप बन सकें, इसकी मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं। और आपसे भी... क्योंकि जो मैंने चार बातें कहीं, वह जो चार स्मरण और ध्यान करने को कहा, अगर उन पर थोड़ा सा भी प्रयास किया, तो कोई भी कारण नहीं है कि हम क्यों न बन जाएं। क्योंकि हम वस्तुतः वही हैं जो हम बनना चाहते हैं। सिर्फ हमें स्मरण नहीं है, सिर्फ हमें ख्याल नहीं है, सिर्फ हमें पता नहीं है।

हम उस बंद आंखें किए हुए आदमी की तरह हैं जो सूरज के सामने खड़ा है और आंखें बंद किए है और चिल्ला रहा है कि बहुत अंधकार है, मैं क्या करूं? दीया जलाऊं? लेकिन बंद आंख आदमी को दीया जलाने से भी क्या होगा! जो चिल्ला रहा है कि मैं क्या करूं? मैं क्या न करूं? मैं अंधकार में खड़ा हूं। उससे अगर कोई कहे

कि तुम सिर्फ आंख खोल लो। तो उसे बड़ी हैरानी होगी कि इतना बड़ा अंधकार मेरे सिर्फ आंख खोलने से कैसे मिट जाएगा? आंख जैसी छोटी सी चीज, पलक जैसा छोटा सा परदा, इतने बड़े अंधकार को कैसे मिटा देगा जिससे मैं घिरा हूं? वह कहेगा, मुझे विश्वास आता नहीं आपकी बात पर कि आंख खोलने से इतना बड़ा अंधकार मिट जाएगा। आंख खोलने से अंधकार के मिटने का संबंध ही क्या है?

शायद हम समझाने भी बैठें तो उसके ख्याल में भी न आए। क्योंकि बात उसकी ठीक है, लॉजिकल है। इतनी छोटी सी आंख, इतनी छोटी सी पलक, इससे इतने बड़े अंधकार का क्या संबंध है? और इतनी सी पलक खोलने से इतना बड़ा अंधकार मिट जाएगा क्या? लेकिन काश वह आंख खोल कर देखे तो वह पाएगा, निश्चित ही मिट जाता है। यह छोटी सी पलक का परदा बहुत बड़ा अंधकार पैदा कर देता है।

अहंकार का छोटा सा बोध सारे अंधकार को पैदा करता है। वह अहंकार का परदा हट जाए, वह आंख खुल जाए, तो रोशनी है, प्रकाश है। सूरज हमेशा मौजूद है, हम आंख बंद किए हुए खड़े हैं। इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

परमात्मा करे हमारी यह आंख खुल सके।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

अवधिगत संन्यास

मेरे मन में इधर बहुत दिनों से एक बात निरंतर ख्याल में आती है और वह यह कि सारी दुनिया से, आने वाले दिनों में, संन्यासी के समाप्त हो जाने की संभावना है। संन्यासी, आने वाले पचास वर्षों बाद, पृथ्वी पर नहीं बच सकेगा। वह संस्था विलीन हो जाएगी। उस संस्था के नीचे की ईंटें तो खिसका दी गई हैं, उसका मकान भी गिर जाएगा।

लेकिन संन्यास इतनी बहुमूल्य चीज है कि जिस दिन दुनिया से विलीन हो जाएगी उस दिन दुनिया का बहुत अहित हो जाएगा।

मेरे देखे, संन्यासी तो चला जाना चाहिए, संन्यास बच जाना चाहिए। और उसके लिए पीरियाडिकल संन्यास का, पीरियाडिकल रिनन्सिएशन का मेरे मन में ख्याल है। वर्ष में, ऐसा कोई आदमी नहीं होना चाहिए, जो एकाध महीने के लिए संन्यास न ले ले। जीवन में तो कोई भी ऐसा आदमी नहीं होना चाहिए जो दो-चार बार संन्यासी न हो गया हो।

स्थायी संन्यास खतरनाक सिद्ध हुआ है, कि कोई आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी हो जाए। उसके खतरे दो हैं। एक खतरा तो यह है कि वह आदमी जीवन से दूर हट जाता है। और परमात्मा की, प्रेम की या आनंद की जो भी उपलब्धियां हैं, वे जीवन के घनीभूत अनुभव में हैं, जीवन के बाहर नहीं। दूसरी बात यह होती है कि जो आदमी जीवन से हट जाता है, उसकी जो शांति, उसका जो आनंद है, वह जीवन में बिखरने से बच जाता है, जीवन उसका साझीदार नहीं हो पाता। तीसरी बात यह है, लोगों को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि गृहस्थ अलग है और संन्यासी अलग है। तो गलत काम करते वक्त भी हमें यह ख्याल रहता है कि हम तो गृहस्थ हैं, यह तो करना हमारी मजबूरी है, संन्यासी हो जाएंगे तो हम नहीं करेंगे। तो धर्म और जीवन के बीच एक फासला पैदा हो जाता है।

मेरी दृष्टि में, संन्यास जीवन का अंग होना चाहिए। संन्यास जीवन को समझने और पहचानने की विधि होनी चाहिए। ऐसे आदमी का जीवन अधूरा और अधूरी शिक्षा माननी चाहिए उसकी, जो आदमी वर्ष में थोड़े दिनों के लिए संन्यासी न हो जाता हो! अगर बारह महीने में एक महीने या दो महीने कोई व्यक्ति परिपूर्ण संन्यासी का जीवन जीता हो तो उसके जीवन में आनंद के इतने द्वार खुल जाएंगे जिसकी उसे कल्पना भी नहीं हो सकती। इन दो महीनों में वह संन्यासी रहेगा। फिर पूरी तरह ही संन्यासी रहेगा दो महीने। इन दो महीनों में दुनिया से उसका कोई भी संबंध नहीं है। संन्यासी का भी जितना संबंध होता है दुनिया से उतना भी उसका दो महीने में संबंध नहीं है।

और यह जान कर आपको हैरानी होगी, जो आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी हो जाता है वह गृहस्थियों के ऊपर निर्भर हो जाता है। इसलिए वह दिखता तो है कि संसार से दूर गया, लेकिन संसार के पास उसे रहना पड़ता है। लेकिन जो आदमी बारह महीने में दो महीने संन्यासी होता है वह किसी के ऊपर निर्भर नहीं होता, वह अपने ही दस महीने का जो गृहस्थ जीवन था उस पर निर्भर होता है। वह संसार के ऊपर आश्रित नहीं होता। इसलिए किसी से भयभीत भी नहीं होता, किसी से संबंधित भी नहीं होता।

अगर एक आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी होगा तो वह किसी का आश्रित होगा ही; वह बच नहीं सकता। और अंतिम परिणाम यह होता है कि संन्यासी दिखाई तो पड़ते हैं कि हमारे नेता हैं, लेकिन वे अनुयायियों के भी अनुयायी हो जाते हैं। वे उनके भी पीछे चलते हैं। संन्यासियों को आज्ञा देते हैं गृहस्थ कि तुम ऐसा करो और वैसा मत करो। गृहस्थ उनका मालिक हो जाता है, क्योंकि उनको रोटी देता है। संन्यासी गुलाम हो गया है।

संन्यासी की गुलामी टूट सकती है एक ही रास्ते से कि आदमी कभी-कभी संन्यासी हो। वर्ष में ग्यारह महीने वह गृहस्थ हो और एक महीने संन्यासी हो। तब वह किसी पर निर्भर नहीं है। वह अपनी ग्यारह महीने की कमाई पर निर्भर है। किसी से उसको लेना-देना नहीं है। और यह एक महीने वह पूरी फ्रीडम, पूरी स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता है, बिना किसी आश्रय के। तो यह एक महीने में वह परिपूर्ण संन्यास का अनुभव करेगा जो कि कोई संन्यासी कभी नहीं कर पाता है। तब वह पूर्ण मुक्ति से जी सकता है।

और यह एक महीने में जिस विधि से वह जीएगा और जिस आनंद को, जिस शांति को अनुभव करेगा और जिस स्वतंत्रता में प्रवेश करेगा--वापस लौट जाएगा एक महीने के बाद जिंदगी में। वापस लौट जाएगा और जिंदगी के घनेपन में प्रयोग करेगा कि जो उसने एकांत में सीखा था, क्या भीड़ में उसका उपयोग कर सकता है? क्योंकि एकांत में शिक्षा होती है, भीड़ में परीक्षा होती है। जो भीड़ से बच जाता है वह परीक्षा से बच जाता है। उसकी शिक्षा अधूरी है। जो मैंने अकेले में जाना है, अगर भीड़ में मैं उसका उपयोग नहीं कर सकता हूं तो वह जानना गलत है। वह बहुत मूल्य का नहीं है। वहां कसौटी है, क्योंकि वहां विरोध है, वहां परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं, वहां प्रतिकूल हैं। वहां भी मैं शांत रह सकता हूं या नहीं? वहां भी मैं, अपने भीतर जिस संन्यास को मैंने एक महीने साधा है और जो आनंद पाया है, क्या मैं घर के भीतर, दुकान पर बैठ कर भी उस संन्यास को साध सकता हूं या नहीं? यह ग्यारह महीना उसे निरीक्षण करना है, ऑब्जर्व करना है। वर्ष भर बाद उसे फिर महीने भर के लिए लौट आना है, ताकि वह फिर, जो वर्ष भर में उसने अनुभव किया है परीक्षा से गुजर कर, उसे और गहरा कर सके। पिछले वर्ष जहां गया था, और नयी सीढ़ियां पार कर सके।

अगर एक आदमी बीस साल की उम्र के बाद सत्तर साल तक जीए और पचास वर्षों में पचास महीने के लिए संन्यासी हो जाए--इस जगत में ऐसा कोई सत्य नहीं है जिससे वह अपरिचित रह जाए, ऐसी कोई अनुभूति नहीं है जिससे वह अनजाना रह जाए।

और यह जो रिनन्सिएशन होगा पीरियाडिकल, यह जो एक अवधि के लिए लिया गया संन्यास होगा, यह उसे जीवन से नहीं तोड़ेगा।

अन्यथा हमारा संन्यासी जो है वह जीवन-विरोधी हो गया। पत्नी और बच्चे उससे भयभीत हैं, मां-बाप उससे भयभीत हैं, क्योंकि वह तो जीवन को उजाड़ कर चला जाएगा।

यह जो कभी-कभी संन्यासी होता है, इससे जीवन को भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं। बल्कि जब यह लौटेगा तो इसकी पत्नी पाएगी कि और भी ज्यादा प्यारा पति होकर लौटा है। उसके बच्चे पाएंगे, वह ज्यादा बेहतर बाप होकर लौटा है। उसकी मां पाएगी कि वह ज्यादा श्रद्धा, ज्यादा प्रेम से, आदर से भरा हुआ बेटा होकर लौटा है।

और तब इस एक महीने के बाद जो वह ग्यारह महीने घर में जीएगा और जो सुगंध उसने पाई है वह बिखरेगी उसके संबंधों में, तो वह दुनिया को बनाएगा। अब तक संन्यासी ने दुनिया को उजाड़ा है और बिगाड़ा है, उसको बनाया नहीं है। वह जीवन को निर्मित करने में, सृजन करने में सहयोगी और मित्र हो जाएगा।

तो मेरे मन में, एक अवधि के लिए संन्यास अनिवार्य है, वह मेरे ख्याल में है। इस भांति, संन्यासी तो दुनिया से समाप्त हो जाए तो फिर कोई डर नहीं है, संन्यास बचा रहेगा। और इस भांति संन्यास व्यापक रूप से डिफ्यूज हो जाएगा बड़े पैमाने पर, क्योंकि हर आदमी को हक हो जाएगा फिर संन्यासी होने का। अभी हर आदमी को हक नहीं हो सकता। क्योंकि अभी हर आदमी संन्यासी हो जाए तो जीवन एक मरघट बन जाए, मृत्यु बन जाए।

और जो काम हर आदमी न कर सकता हो, उस काम में कोई भूल है। जो काम हर आदमी का अधिकार न बन सकता हो, उसमें कोई भूल है।

अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं तो जीवन आज उजड़ जाए, इसी क्षण। तो जो संन्यासी भी हैं उनको भी वापस लौट आना पड़े। तो यह जो आजीवन संन्यास है, यह भ्रांत है, यह गलत है।

तो इस तरह संन्यास बच सके दुनिया में, उसके लिए एक बड़ा गहरा प्रयोग करना जरूरी है। तो वह जो सी.एस. ने जो सुझाव दिया है, मेरे मन के बहुत अनुकूल है। उस तरह की संभावना उस सुझाव से पूरी हो सकती है।

और फिर, जैसा कि पी.के. ने कहा कि आपकी बात समझ में आती है, बुद्धि तक पहुंचती है; लेकिन उससे व्यक्तित्व परिवर्तित नहीं होता।

ठीक कहते हैं वे। क्योंकि व्यक्तित्व की बनावट वर्षों की बनावट है, पूरे जीवन की। और जो जानते हैं वे कहते हैं, अनेक जीवन की बनावट है वहां। आप मेरी बात सुनते हैं, वह व्यक्तित्व का एक छोटा सा कोना जो बुद्धि का है, वहां सुनाई पड़ती है, बुद्धि को ठीक भी मालूम पड़ती है। लेकिन व्यक्तित्व बुद्धि से बहुत बड़ी बात है। बुद्धि व्यक्तित्व का एक छोटा सा अंश मात्र है। पूरी पर्सनैलिटी इंटलेक्ट से बहुत बड़ी बात है। बुद्धि तो द्वार की भांति है। जैसे एक महल है, उस पर एक दरवाजा है। महल बहुत बड़ा है, महल दरवाजा नहीं है। दरवाजा महल भी नहीं है। दरवाजे का काम कुल इतना है कि महल में किसी को प्रवेश दे देता है, इससे ज्यादा उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो बुद्धि तो केवल प्रवेश-द्वार है व्यक्तित्व का। व्यक्तित्व बहुत बड़ी चीज है। और बहुत सी चीजों से निर्मित होता है। जिनकी आपको कल्पना भी नहीं होती कि इन चीजों से व्यक्तित्व निर्मित होता है।

तो आपकी बुद्धि में तो एक बात पहुंच जाती है, लेकिन आपका पूरा व्यक्तित्व उन्हीं चीजों से निर्मित है जिसके विरोध में बुद्धि में आपके बात पहुंच जाती है। और उस व्यक्तित्व में कोई फर्क नहीं होता कहीं भी। वह व्यक्तित्व वैसा ही बना रहता है। तब आप बेचैनी में पड़ जाते हैं कि मैं क्या करूं और क्या न करूं?

तो अगर यह संभव हो सके कि मेरे पास आप महीने, दो महीने या तीन महीने हैं--तो आपके समग्र व्यक्तित्व में कहां-कहां, क्या-क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए, उनके लिए मैं सुझाव दे सकता हूं। मेरे साथ रह कर उन पर आप प्रयोग कर सकते हैं कि वह व्यक्तित्व कहां-कहां से बदल लिया जाए। एक बार आपको ख्याल में आ जाए! आपको पता ही नहीं होता, कि कितनी अजीब सी चीजों से व्यक्तित्व जुड़ा रहता है, जिसका हमें पता ही नहीं होता।

हरि सिंह गौर का नाम आपने सुना होगा, उन्होंने सागर विश्वविद्यालय का निर्माण किया। वे हिंदुस्तान के संभवतः अपने जमाने के बड़े से बड़े वकीलों में से थे। प्रिवी कौंसिल में वकालत करते थे लंदन में। उनसे मैं कुछ बात कर रहा था। और पूरे व्यक्तित्व की बात उनसे मैंने कही। तो उन्होंने कहा कि मुझे अपना एक अनुभव ख्याल आता है। मुझे हमेशा से आदत थी--जिसका मुझे कोई पता नहीं रह गया था--कि जब भी मैं पैरवी करता था, आर्ग्यु करता था अदालत में, तो जब भी कोई गांठ आ जाती थी, कोई उलझन आ जाती थी, और मेरी बुद्धि काम नहीं करती थी, तो मुझे पता नहीं होता था, मैं अपने कोट के बटन को घुमाने लगता था। इसका मुझे पता ही नहीं था, यह अनकांशस हैबिट का हिस्सा हो गई थी। और जैसे ही मैं कोट का बटन घुमाता था, मुझे रास्ता मिल जाता था।

जैसे कोई आदमी सिर खुजाता है, कोई आदमी कुछ और करता है, वैसे ही वे बटन घुमाते थे। वे एक बड़े मामले में, किसी स्टेट का एक बड़ा मामला था, उसमें वे वकील थे। और उनका विरोधी वकील इस बात को निरंतर देखता रहा था कि वे बटन घुमाते हैं, जब भी कुछ आर्ग्युमेंट करने में उन्हें कठिनाई होती है। उसने उनके ड्राइवर को मिला कर उनके कोट का बटन तुड़वा लिया। जब वे अदालत में आए तो कोट हाथ में लेकर आए, और ड्राइवर को उसने कुछ पैसे दिए, उसने उसका ऊपर का बटन तोड़ लिया। वे अदालत में पहुंच गए, उन्होंने कोट डाल लिया। और जब वे आर्ग्यु कर रहे थे, और ठीक वक्त पर जब उनको उलझन आई, बटन पर हाथ गया, वहां बटन नहीं था। वे एकदम... सारी उनकी बुद्धि काम करनी बंद कर दी। वे एकदम घबड़ा गए। वह पहला

मुकदमा था जो वे हार गए। और वे मुझसे बोले, उस बटन के पीछे मैं हार गया। लेकिन उस वक्त मुझे कुछ समझ में नहीं पड़ा फिर। बटन नहीं है, मेरे लिए सब कुछ खतम हो गया। एक एसोसिएशन था, एक संबंध हो गया था, एक कंडीशंड रिफ्लेक्स हो गया था दिमाग का, कि बटन घूमती तो मस्तिष्क काम करता। बटन नहीं घूमती तो मस्तिष्क काम नहीं करता।

अब बटन जैसी छोटी सी चीज से मस्तिष्क के चलने का इतना अनिवार्य संबंध हो सकता है, इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। बटन जैसी छोटी-छोटी चीजों से हमारा सारा व्यक्तित्व संचालित होता है, जिसका हमें पता ही नहीं होता। तो पूरे व्यक्तित्व की बदलाहट के लिए बहुत सी बातें जाननी जरूरी हैं, जिसकी आपको कल्पना ही नहीं हो सकती कि ये बातें भी जाननी जरूरी हैं, या इन बातों में भी फर्क होने से फर्क पड़ जाएगा।

एक आदमी शांत होना चाहता है, और चुस्त कपड़े पहने हुए है। उसे कल्पना भी नहीं हो सकती कि चुस्त कपड़े और मन के शांत होने में विरोध है। यह दिखाई नहीं पड़ता। नहीं तो हम मिलिटरी में लोगों को चुस्त कपड़े कभी के पहनाना बंद कर देते। मिलिटरी में चुस्त कपड़े पहनाना अत्यंत जरूरी है। चुस्त कपड़ा लड़ने की वृत्ति का सहयोगी है। ढीला कपड़ा लड़ने की वृत्ति का सहयोगी नहीं है। जो कौमें ढीले कपड़े पहनती हैं वे लड़ाकू नहीं रह जातीं।

तो अब कपड़े जैसी फिजूल की चीज से भी कोई व्यक्तित्व के भीतर लड़ने, अशांत होने और शांत होने का संबंध हो सकता है, यह एकदम से ख्याल में नहीं आता। आपको पता नहीं है कि अगर आप चुस्त कपड़े पहने हों और सीढ़ियां चढ़ रहे हैं, तो आप दो-दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ जाएंगे। और ढीले कपड़े पहने हैं, तो आप एक-एक सीढ़ी चढ़ेंगे, दो-दो सीढ़ियां नहीं चढ़ेंगे। नौकरों को चुस्त कपड़े जान कर पहनाए जाते रहे हैं ताकि वे तेजी से काम कर सकें। मालिक ढीले कपड़े पहनते रहे हैं, क्योंकि उन्हें कोई काम करने का कोई सवाल ही नहीं है। सारी दुनिया में संन्यासियों ने ढीले कपड़े चुन लिए, उसका कोई कारण था। उन्हें कोई काम नहीं करना है। जिन्हें काम करना है उनके लिए चुस्त कपड़े चाहिए। चुस्त कपड़ा जो है मन तक चुस्ती ले जाता है, तीव्रता ले जाता है, एक गति लाता है। ढीला कपड़ा जो है वह एक शिथिलता लाता है, एक रिलैक्स्ड माइंड पैदा करता है, भीतर सब रिलैक्स्ड हो जाता है।

मैं तो उदाहरण के लिए कह रहा हूं। व्यक्तित्व के बहुत से हिस्से हैं, जो कि सब के सब आपको बनाते हैं। आपके जूते से लेकर आपकी टोपी तक, आपके खाने से लेकर आपकी नींद तक, आपके बोलने के शब्दों से लेकर आपके सपनों तक, सब आपके व्यक्तित्व को निर्मित करता है, सब! यह सब एक तरफ पड़ा रहता है, आपने मेरी बात सुन ली और सोचा कि सब बदलाहट हो जानी चाहिए। तो आप पागल हैं! ऐसे कहीं बदलाहट हो जाएगी? यह तो केवल बदलाहट के लिए इशारा हुआ। और अगर यह इशारा समझ में आता है तो उसका मतलब यह होगा कि आप अपने पूरे व्यक्तित्व को खोजें अब कि इस इशारे के विरोध में कहां-कहां क्या-क्या पड़ा है। और अगर दिखाई पड़ जाएगा कि विरोध में है, तो आप बदल लेंगे। बदलाहट के लिए कुछ बहुत करना नहीं पड़ता। एक दफे दिखाई पड़ना चाहिए। यह ख्याल में आना चाहिए कि कहां बात अटकी होगी।

और इतनी क्षुद्र चीजों में बात अटकी होती है कि आप सोचते होंगे कि कोई बहुत बड़ी-बड़ी बातों में अटकी है, तो आप गलती में हैं। जिंदगी में बड़ी बातें हैं ही नहीं। जिंदगी में बहुत छोटी बातें हैं। और हम बड़ी बातों पर विचार करते रहते हैं और समय गवां देते हैं। जिंदगी में बहुत छोटी-छोटी बातें हैं। जिन पर न कोई विचार करता, न कोई फिकर करता, न कोई हिसाब लगाता। उन छोटी-छोटी बातों से सारा व्यक्तित्व निर्मित होता है।

तो वह संभव नहीं हो पाता। वह संभव हो सकता है कि मेरे निकट आप थोड़े ज्यादा दिन हैं, तो आपकी छोटी-छोटी बातों पर आपको निकटता से मैं देख सकूं, आपको कुछ सुझाव दे सकूं, आपको कुछ फर्क करने को कह सकूं कि इसमें फर्क करके देखें क्या होता है। कई बार इतनी छोटी चीजों के फर्क इतने बड़े परिवर्तन ले आते

हैं जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, जिसका कोई संबंध नहीं जोड़ सकते कि इतनी छोटी बात का इतना बड़ा संबंध क्या हो सकता था। लेकिन व्यक्तित्व बड़ी जटिल, बड़ी कांप्लेक्स बात है। बुद्धि बहुत अधूरी है, बुद्धि बहुत द्वार है। बुद्धि से शुरुआत होती है, अंत नहीं होता। तो मेरी बात सुन कर सिर्फ एक प्रारंभ होता है, वह अंत नहीं है। उससे केवल आपके लिए निमंत्रण होता है, कि अब कुछ आप कर सकते हैं। तो उचित है कि ज्यादा देर...

फिर, वैसा कोई भी केंद्र आप बनाते हैं, तो कई महत्वपूर्ण काम और भी वहां किए जा सकते हैं। जैसे देश भर में मेरे जितने मित्र हैं, वे सभी यह कहते हैं कि उनके बच्चों के लिए मैं कुछ करूं। उनके बच्चों के लिए कुछ विचार करना जरूरी है। अगर कभी भी कोई केंद्र बनता है, तो महीने दो महीने के लिए बच्चों के अलग कैंप रखे जा सकते हैं--कि बच्चे दो महीने के लिए, छुट्टियां हैं तो मेरे सारे मित्रों के बच्चे आकर दो महीने मेरे पास रह जाएं। उनके साथ मैं थोड़ी मेहनत करूं। क्योंकि असली मेहनत उनके साथ है, आपके साथ उतनी असली मेहनत नहीं है। और अगर आपको बात मेरी समझ में आती है, तो आप अपनी कम फिकर करिए, अपने बच्चों की ज्यादा फिकर कर लीजिए। अगर मेरी बात आपको समझ में आती है, तो अपने बच्चों की ज्यादा फिकर कर लीजिए। उनके साथ बहुत आसानी से जो हो सकता है, वह आपके साथ बहुत कठिन हो गया है। आपका सब जाल करीब-करीब खड़ा हो गया है। और उस जाल के साथ आपके मोह भी बंध गए हैं। बच्चों के पास कोई जाल नहीं है। अगर आपमें हिम्मत हो तो उन बच्चों को उस क्रांति की दिशा में संलग्न कर दीजिए।

तो यह हो सकता है कि वहां बच्चे इकट्ठे हो सकें। आज नहीं कल यह भी हो सकता है कि वहां एक विद्यापीठ ही हो। यह भी हो सकता है कि वहां एक छात्रावास हो। बच्चे पढ़ें पूरे नगर में जाकर, लेकिन रहें वहां, रात वहां रुकें। तो उनके जीवन पर प्रयोग किया जा सके, पढ़ें-लिखें वे कहीं भी। वहां बड़े हॉस्टल्स हों और नगर के जो बच्चे वहां रहना चाहते हैं, वे रहें वहां, पढ़ें वे कहीं भी। पढ़ने का उस संस्था से कोई संबंध न हो, लेकिन उनके जीवन और चर्या से--वे कैसे रहें, कैसे उठें, क्या करें--उस संबंध में उनके लिए प्रयोग किए जा सकते हैं। वह उस तरह का कोई केंद्र हो तो वहां यह हो सकता है।

तीसरी बात, मुझे पूरे मुल्क में जगह-जगह सैकड़ों लोगों ने यह बात कही इधर कि अगर प्रत्येक रात्रि को ध्यान का पूरा प्रयोग रेडियो से रिले किया जा सके दस मिनट के लिए, तो मुल्क में लाखों लोग रोज रात में अपना रेडियो खोल कर उसे घर प्रयोग कर सकते हैं। आज नहीं कल आपके पास कोई बड़ा केंद्र हो तो पूरा ट्रांसमिशन का सेंटर आपके पास हो सकता है--कि आप सारे मुल्क में, जैसा कि अभी अग्रवाल जी ने कहा कि उचित है कि मैं जाऊं सामने। बिल्कुल ठीक है। मैं जा सकूं तो बहुत अच्छा है। लेकिन एक दफे जहां हो आता हूं, वहां वर्ष भर तक नहीं जा पाता हूं या दो वर्ष नहीं जा पाता हूं, तो वह जो एक बात वहां पैदा होती है वह फिर इस वर्ष में विलीन हो जाती है। जब मैं फिर वर्ष भर बाद पहुंचता हूं तो करीब-करीब फिर नई बस्ती हो जाती है वह, क्योंकि साल भर में वह सारा सब खो गया। इस पीछे वर्ष भर फॉलो-अप करने को कोई व्यवस्था होनी जरूरी है। कितने लोगों ने मुझसे कहा कि कितना उचित हो जाए कि हम रोज रात्रि को दस बजे पंद्रह मिनट के लिए रेडियो पर ध्यान के पूरे सजेशन सुन सकें और उसको करते हुए सो सकें। तो बहुत बड़ा काम हो सके, और लाखों नहीं, करोड़ों लोग उसका उपयोग ले सकें। यह आज नहीं कल आपके पास कोई केंद्र हो और बड़ी योजना हो, तो वहां से यह सब कुछ हो सकता है।

मुल्क में, आज आप एक जगह शुरू करते हैं, कोई जरूरी नहीं कि वहां मुझे बांध कर रखें, आज नहीं कल मुल्क में चार जगह आप बना सकते हैं, मैं चार-चार महीने वहां रहूं एक-एक जगह। यह भी जरूरी नहीं है कि मैं वहां, एक केंद्र बनाते हैं तो वहां बंध जाता हूं, मेरा जाना-आना जारी रह सकता है। वहां जो लोग रहेंगे, महीने में मैं वहां पंद्रह दिन रहूं, पंद्रह दिन मैं बाहर जाऊं। पंद्रह दिन मेरे साथ रहें वे, पंद्रह दिन मेरे बिना रहें, उसका

भी फायदा है। क्योंकि पंद्रह दिन मेरे साथ जो करते हैं, वह पंद्रह दिन मेरे बिना करें, उसका भी मूल्य है। मेरे अभाव में करें। क्योंकि महीने भर बाद तो वे अपने घर जाएंगे, वहां मैं नहीं रहूंगा। तो यह जारी रह सकता है कि मैं कुछ दिन बाहर रहूं, कुछ दिन वहां रहूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इससे कुछ मेरी यात्राएं रुकने का कोई कारण नहीं है। बल्कि अभी मेरे पास न मालूम कितने पत्र आते हैं कि हम आपके पास आकर रहना चाहते हैं। मेरे पास तो वहां कोई व्यवस्था नहीं है। मेरे अपने रहने की कोई व्यवस्था नहीं है, तो दूसरे के रहने की तो मैं कोई व्यवस्था कर ही नहीं सकता। मैं तो बिल्कुल बेघर-बार हूं, मेरा कोई घर तो है ही नहीं। तो मैं खुद ही किसी का मेहमान हूं, वहां मैं किसकी व्यवस्था करूं? इतने पत्र आते हैं!

कुछ स्थायी रूप से रहना चाहते हैं। अभी मैं आया, उसके तीन दिन पहले ही सागर से एक वृद्धजन का पत्र आया कि मेरी सत्तर वर्ष की उम्र है और अब मैं थोड़े-बहुत दो-चार जो वर्ष बचे हैं वह मैं खोना नहीं चाहता। और जब से आपकी बात सुनी है, तब से मैं मुश्किल में पड़ गया हूं--जो मैं करता था वह फिजूल हो गया। और अब मृत्यु इतने करीब है कि मैं चाहता हूं कि आपके निकट रहूं और जो करने जैसा है उसे करूं। तो मैं आपके पास आकर रहना चाहता हूं। मैं अपना खर्च उठा लूंगा, सब कर लूंगा।

लेकिन मेरे पास तो कोई व्यवस्था नहीं है। तो कुछ लोग स्थायी रूप से, एक सीमा हम उम्र की बांध सकते हैं कि पचपन या साठ वर्ष के बाद अगर कोई स्थायी रूप से रहना चाहे तो वह रह सकता है। साठ वर्ष तक तो हम किसी आदमी को स्थायी रूप से लेने को वहां राजी नहीं होंगे, उसके लिए तो पीरियाडिकल संन्यास होगा। साठ वर्ष के बाद अगर कोई स्थायी रूप से वहां रहना चाहता है तो बिल्कुल रह सकता है, उसके लिए स्थायी संन्यास हो सकता है।

तो न मालूम कितने लोग हैं जो उत्सुक हैं। और मुझे यह भी लगता है कि मेरे ही मित्र, अनेक मित्र यह सोचने लगे हैं कि यह बहुत हो गया, हमने पचास या पचपन वर्ष तक कमा लिया, सब व्यवस्था कर ली, अब हम चाहते हैं...

मेरे एक मित्र हैं, उन्होंने मेरी बातें सुनीं, उनकी उम्र पचास वर्ष थी, उन्होंने कहा कि बस इस वर्ष मेरी वर्षगांठ आती है, मैं सारा काम समाप्त कर दूंगा, बहुत हो गया! कमा लिया और खाने लायक हो गया और अब मेरे लिए कोई जरूरत भी नहीं, अब मैं किसलिए कमाए जाऊं? ठीक इक्यावनवीं वर्षगांठ पर उन्होंने सब, सब बिल्कुल बंद कर दिया! सारी दुकानें बंद करवा दीं, सारा हिसाब बंद करवा दिया। अपनी पत्नी को कहा कि अब हमारे पास इतना है कि हम दोनों अगर सौ वर्ष भी जीएं तो बहुत है, दो सौ वर्ष भी जीएं तो बहुत है। अब हम करेंगे क्या? तो उन्होंने सब बंद कर दिया। अब वे मुझे बार-बार लिखते हैं कि मैंने सब बंद कर दिया; अब मैं चाहता हूं कि मैं आपके पास आ जाऊं। यहां मैं क्या करूं?

पर मेरे पास कोई व्यवस्था नहीं, मैं तो यहां-वहां घूमता-फिरता हूं। मैं किसको वहां, किसके लिए कहूं? तो उचित है कि वैसी कोई जगह हो, वहां कुछ लोग स्थायी रूप से आकर रहना चाहें, वे स्थायी रूप से रहें। जो लोग बार-बार आकर चले जाना चाहें, वे लोग वैसा करें।

थाईलैंड में, बर्मा में, जापान में, तीनों मुल्कों में पीरियाडिकल रिनन्सिएशन की व्यवस्था है। प्रधानमंत्री से लेकर नीचे तक का आदमी यह सौभाग्य पा जाता है कि जीवन में कभी न कभी संन्यासी हो जाए। हम भी ऐसे भागते हैं--कभी कोई महीने भर के लिए मसूरी जाता है, कोई लोनावला आता है, कोई कहीं जाता है। लेकिन क्या फर्क पड़ता है उस भागने से? कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। सिर्फ जगह बदलती है, और कोई फर्क नहीं पड़ता। थोड़ी सी आबो-हवा का फायदा होता है। लेकिन मानसिक रूप से कहीं कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। तो महीने भर के लिए मानसिक परिवर्तन भी हो जाए, स्थान का परिवर्तन तो हो ही, वह हो सकता है। और विशेषकर बच्चों के लिए कुछ मैं कर सकूं, इसके लिए फिकर करनी चाहिए।

दूसरा, अभी जो शिविर होते हैं, चूंकि वे तीन ही दिन के लिए होते हैं, इसलिए बहुत विस्तार में पूरे जीवन के सब पहलुओं को छूना संभव नहीं हो पाता। एक स्थायी केंद्र होता है, तो हम विशिष्ट विषयों पर अलग-अलग शिविर वहां आयोजन कर सकते हैं।

जैसे मेरी दृष्टि सभी विषयों के प्रति है। मुझे ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि भगवान के संबंध में बात करना ही जरूरी है, मुझे मालूम पड़ता है कि सेक्स के संबंध में भी बात करना उतना ही जरूरी है। मुझे ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि ध्यान के संबंध में ही बात करना जरूरी है, मुझे ऐसा भी मालूम पड़ता है कि प्रेम के संबंध में भी बात करना उतना ही जरूरी है। मुझे यह नहीं मालूम पड़ता कि योग के संबंध में बात करना जरूरी है, भोग के संबंध में उतनी ही बात करनी जरूरी है। यह पूरा जीवन छुआ जा सके।

अब कितने ही मित्रों ने मुझे पत्र लिखे और कहा कि एक दंपतियों का शिविर हो, जिसमें पति-पत्नी सब सम्मिलित हों इकट्ठे। या एक पारिवारिक शिविर हो, जिसमें कोई भी व्यक्ति पूरा परिवार लेकर सम्मिलित हो। और मैं पूरे परिवार के जीवन के संबंध में, पूरे परिवार के अंतर्संबंध के संबंध में, पूरे परिवार के सोचने-विचारने के, घर के संबंध में पूरा विचार रख सकूं कि घर कैसे जीए! एक घर कैसा यूनिट हो! परिवार में क्या हो!

इतना गलत हो रहा है सब, परिवार इतना गलत है, इतना झूठा, इतना कुरूप कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। घर अच्छे हैं, मकान अच्छे बनते जा रहे हैं, और परिवार बिल्कुल कुरूप, अग्ली से अग्ली होता चला जा रहा है। एकदम सड़ गया है परिवार, उसमें कोई प्रेम नहीं, कोई आदर नहीं, कोई अंतर्संबंध नहीं। उस ढकोसले पर वह सारा जीवन चल रहा है। और हम इधर बाहर आकर शांति की तलाश करेंगे और परिवार हमारा बदलता नहीं है तो शांति नहीं मिल सकती।

तो पूरे परिवार के अंतर-जीवन में क्या क्रांति हो सकती है, उसके संबंध में अलग शिविर हों। विवाह, प्रेम, सेक्स, इसके संबंध में अलग शिविर हों। और लड़कों के लिए सबसे बड़ा प्रश्न आज वही खड़ा हो गया है। उसका कोई हल नहीं होता है तो पूरा समाज डूब जाएगा। भोग की निंदा करने से कोई अर्थ नहीं है। भोग जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। और जो सम्यक रूप से भोगने में समर्थ हो जाता है, वही योग को उपलब्ध होता है। योग और भोग में विरोध नहीं है। विरोध आज तक रखा गया है। उससे नुकसान हुआ, उससे फायदा नहीं हुआ।

तो एक सामान्य भोग का जीवन कैसे क्रमशः योग में प्रविष्ट हो सकता है, उन दोनों के बीच क्या सेतु हो सकता है। विरोध नहीं, क्या मार्ग हो सकता है दोनों को जोड़ने वाला। उस पर काम करना, सोचना जरूरी है।

तो जीवन के सारे प्रश्नों पर--समाज की व्यवस्था पर, अर्थ की व्यवस्था पर... क्योंकि आपको ख्याल नहीं है, सब तरफ, आज नहीं कल, जिन बातों का आप बिल्कुल विचार नहीं कर रहे हैं वे सब मसले की तरह खड़ी हो जाने वाली हैं। आज नहीं कल मुल्क के सामने कम्युनिज्म का सवाल होगा। उससे आप बच नहीं सकेंगे, उससे आप भाग नहीं सकेंगे। और अगर आपने कुछ नहीं सोचा है, तो कम्युनिज्म एक हत्यारे की तरह पूरे मुल्क पर छा जाएगा, एक खूनी क्रांति की तरह छा जाएगा। अगर हमने सोचा है, विचारा है और मुल्क की बुद्धि को तैयार किया है, तो कम्युनिज्म एक अत्यंत शांतिपूर्ण ढंग से मुल्क में आ सकता है। वह एक बात और होगी। लेकिन हमारा धार्मिक आदमी इन पर विचार नहीं करता।

मेरी दृष्टि में तो पूरा जीवन विचारणीय है। आज नहीं कल सवाल अर्थ के खड़े होंगे। सारे मुल्क की राजनीति बिल्कुल सड़ गई है। उसमें हम सब पिसे जा रहे हैं, सब गाली दे रहे हैं, लेकिन कोई हल नहीं है, कोई रास्ता नहीं है। अंधों की तरह खड़े हैं और बर्दाश्त कर रहे हैं। जो हो रहा है, देख रहे हैं। यानी करीब-करीब ऐसा है कि मकान जल रहा है और हम बाहर खड़े निंदा कर रहे हैं कि किसने आग लगा दी! और यह क्या हो गया! और यह कैसे बुझेगा! और मकान तो जलता चला जा रहा है, और हम सब खड़े विचार कर रहे हैं और मकान जल रहा है। दस-पचास साल बाद हमारे बच्चे हमें लानत देंगे कि ये कैसे लोग थे कि मुल्क पूरा जलता रहा और बेवकूफियां बढ़ती रहीं और सब बैठे देखते रहे और चर्चा करते रहे, और कुछ भी नहीं किया जा सका।

तो राजनीति पर विचार करना जरूरी है कि मुल्क की राजनीति कैसी हो? मुल्क का धर्म कैसा हो? मुल्क का समाज-शास्त्र कैसा हो? मुल्क का परिवार कैसा हो? मुल्क की आर्थिक व्यवस्था कैसी हो? इन सब पर भी...

मुल्क में जगह-जगह लोग मुझसे कहते हैं कि क्या मैं इनको... अभी माथेरान में ही--उसका उत्तर मैं नहीं दिया, क्योंकि उसका उत्तर देने के लिए पूरा कैंप ही चाहिए--किसी मित्र ने एक प्रश्न पूछा था कि क्या मैं अपनी सारी शक्ति थोड़े से लोगों के शांत होने की दिशा में ही लगा दूंगा? वृहत्तर समाज के लिए मेरी शक्तियां काम में नहीं लाऊंगा? क्या मैं थोड़े से लोगों के शांत होने की दिशा में ही अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा? या कि यह बड़ा मुल्क, इस मुल्क का पूरा जीवन भी प्रभावित हो सके, इस दिशा में कुछ नहीं करूंगा?

उनका पूछना ठीक है। मेरे मन में भी बहुत दुख है कि उसके लिए कुछ किया जाना चाहिए। क्योंकि नहीं करने का मतलब होता है, फिर जो हो रहा है, हम उससे सहमत हैं। नहीं करने का मतलब नहीं करना नहीं होता। नहीं करना भी किसी तरह के करने में सहमति है। अगर एक आदमी किसी की हत्या कर रहा है, और मैं कहता हूं कि मुझे कुछ भी नहीं करना है, तो भी मैं हत्यारे के साथ साथी हूं। क्योंकि मैं हत्या देख रहा हूं खड़े होकर। मैं रोक सकता था। मैं नहीं रोक रहा हूं, तो मैं सहयोगी हो रहा हूं।

तो यह मत सोचिए कि कोई आदमी राजनीति में भाग नहीं ले रहा है। आपके साधु-संन्यासी राजनीति में उत्सुक नहीं हैं, तो आप यह मत सोचिए कि वे राजनीति के भागीदार नहीं हैं। वे भागीदार हैं। क्योंकि जो चल रही है, फिर उनकी सहमति है उसमें। फिर जो चल रहा है, उसमें उनका विरोध नहीं है। जिंदगी में जो भी जी रहा है, वह जिंदगी की हर चीज पर भागीदार है। वह कहीं भाग नहीं सकता। भागता है तो भी भागीदार है। क्योंकि वह यह कहता है कि मैं कुछ भी नहीं करना चाहता इस संबंध में। उसका मतलब है, स्टेटस-को, जो मौजूद है, उसकी वह सहमति दे रहा है--कि जैसा चल रहा है, ठीक है। तो हम बच नहीं सकते जीवन से।

तो जीवन के सर्वांगीण, सब पहलुओं को छुआ जा सके। और सबके छूने की अत्यंत जरूरत हो गई है, क्योंकि सारा जीवन इंटररिलेटेड है, सब एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। अगर मुल्क की राजनीति गलत है तो मुल्क की शिक्षा ठीक नहीं हो सकती। मुल्क की शिक्षा ठीक नहीं हो सकती तो मुल्क का धर्म ठीक नहीं हो सकता। मुल्क का धर्म ठीक नहीं होता तो शिक्षा ठीक नहीं होती। शिक्षा ठीक नहीं होती तो राजनीति ठीक नहीं होती। सब जुड़ा हुआ है। इस सारे जुड़े हुए के लिए पूरा इंटिग्रेटेड, एक दृष्टि, और एक जीवन-व्यवहार, और जीवनचर्या हम विकसित कर सकें। तो उसके लिए जरूरी होगा कि एकांत में अधिक दिनों तक, अधिक मसलों पर हम कांफ्रेंसेज बुला सकें, सेमिनार बुला सकें, शिविर बुला सकें। वहां शांति से हम रह सकें।

आज किसी होटल में हम ठहर जाते हैं। होटल होटल है। होटल का कोई साइकिक एटमास्फियर नहीं होता। होटल का कोई मानसिक वातावरण नहीं होता। हम जाकर ठहर जाते हैं, खाने-पीने और रहने का काम हो जाता है। लेकिन अगर कल कोई हम स्थल बनाते हैं, तो मेरी दृष्टि में है कि हम उसका पूरा मनोवैज्ञानिक वातावरण निर्मित करेंगे। वहां के दरख्त भी आपसे कुछ कहने चाहिए, वहां के मकान भी आपसे कुछ कहने चाहिए, वहां का रास्ता भी आपको कुछ सुझाव देना चाहिए, वहां की हवा भी आपसे कुछ कहना चाहिए, वहां जो लोग रहते हैं उनकी मौजूदगी आपसे कुछ कहना चाहिए। वहां एक पूरा साइकिक एटमास्फियर, एक पूरा मानसिक वातावरण होना चाहिए कि उस वातावरण में प्रविष्ट होते ही एक आदमी को लगेः स्थान ही नहीं बदला, मेरे मन की धाराएं और तरंगें भी बदली हैं। वह सब वहां किया जा सकता है। और छोटी-छोटी चीजों से सारा फर्क पड़ता है।

हिटलर हुकूमत में आया तो उसने इनकार करवा दिया कि कोई बच्चों को अब गुड्डियां खेलने को न दी जाएं। गुड्डा-गुड्डी और शादी-विवाह रचाना बंद। बच्चों के लिए सारे खिलौने बदल दिए। बस तोप, बंदूक, तलवार, ये खिलौने होंगे। छोटा बच्चा पहले दिन झूले पर आएगा, तो उसके ऊपर घुनघुना नहीं लटका हुआ है, एक तोप लटकी हुई है। वह पहले दिन ही देखता है तो तोप देखता है। यह पहला इंप्रेशन उसके माइंड पर है

तोप का। हिटलर ने कहा कि गुड्डा-गुड्डी नहीं चलेंगे। ये बच्चों को कमजोर बनाते हैं, ये इंपोटेंट बनाते हैं। ये बच्चों को बलशाली नहीं बनाते और युद्ध के लिए तैयार नहीं करते हैं। युद्ध के लिए उसे तैयार करना है तो बच्चे को पहले दिन तोप ही मिल जानी चाहिए।

अब बच्चों के सारे खिलौने लाल रंग से रंगे होते हैं। बिल्कुल गलत बात है। लाल रंग से रंगे हुए बच्चे जो खिलौना खेलेंगे, वे अशांत होंगे। लाल रंग मन में अशांति पैदा करने का बड़ा मूलभूत कारण है। आप हरे दरख्तों को देख कर खुश होते हैं। आपको पता नहीं है, हरे दरख्तों में क्या है सिवाय हरे रंग के! जंगल में जाकर आप खुश होते हैं, शांति मालूम पड़ती है। हरे रंग की वजह से पड़ रही है, और कुछ भी नहीं। और कोई कारण नहीं है, सिर्फ हरे रंग का विस्तार आंख के स्नायुओं को शिथिल कर देता है, शांत कर देता है। लाल रंग तेज कर देता है, स्नायुओं को खींच देता है। अगर लाल रंग को बहुत देर तक देखते रहें तो आप क्रोध से भर जाएंगे। यहां सब लोग लाल कपड़े में बैठे हों तो आप थोड़ी देर में घबड़ा जाएंगे, सफोकेशन मालूम होगा कि यह बड़ी गड़बड़ है, यहां से हट जाना चाहिए। सूदिंग नहीं है वह। लेकिन बच्चों के खिलौने लाल रंग से रंगे हुए हैं। वे हरे रंग से रंगे होने चाहिए, अगर उनको भविष्य में शांति की दुनिया में ले जाना है। नहीं तो वे तो अशांति में जाएंगे।

तो मेरा कहना यह है कि जीवन तो इतनी छोटी-छोटी चीजों से संयुक्त है और बंधा हुआ है कि उन सब पर विचार, उन सब पर चिंतन, और हम सारे घर को... । तो वहां जो केंद्र बने, वह सारी वैज्ञानिक दृष्टि से बने। वहां का रंग, वहां के मकान, वहां के पौधे, वहां के फूल, वहां की सड़कें, वहां की हवा, वहां के लोग--कि वहां एक आदमी प्रविष्ट होता है तो वह सब तरह से उसके भीतर परिवर्तित होने के लिए हम सारी सुविधा वहां जुटा दें। वह कोई साधारण आश्रम होने वाला नहीं है। वह तो पूरी एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला होने वाली है। वह तो एक पूरी, विज्ञान के आधार पर, मनुष्य के सारे आज तक के अनुभव के आधार पर एक पूरी विज्ञान की प्रयोगशाला है, कि वहां एक आदमी को हम पूरा बदल देंगे एक महीने के भीतर कि वह दूसरा आदमी होकर जाए। और वह जो सीख कर जाता है, जो लेकर जाता है, वह अपने घर में उतने परिवर्तन पैदा करने की कोशिश करे।

तो मेरे मन के तो अनुकूल है। वह आप सोचें उसको विस्तार से, उसको व्यवस्थित करें। मैं जो श्रम कर सकता हूं, वहां वह बहुत सरलता से हो सकता है अगर सारी व्यवस्था वहां जुटा दी जाती है। और तब, जैसे पी.के. कहते हैं कि मेरा व्यक्तित्व नहीं बदला, इनका व्यक्तित्व इतना बदल दिया जा सकता है कि ये कहने लगें कि अब और मत बदलो, अब मुझे घर जाने दो। ये इतना कह सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है, इसमें जरा भी कठिनाई नहीं है। क्योंकि आदमी का व्यक्तित्व बनाया हमने है, बदल हम सकते हैं। जो हमने बना लिया है वैसे हम हैं, जो हम बदल लेंगे तो हम दूसरे हो जाएंगे। आदमी का व्यक्तित्व बदलना कोई कठिन बात नहीं है, जरा भी कठिन बात नहीं है, क्योंकि व्यक्तित्व के बदलने की तो सीधी साइंस है। बनाने की साइंस है, हमने बनाया है एक खास ढंग से। उसमें जहां-जहां ईंटें हमने रखी हैं वे खिसका देनी हैं, वह व्यक्तित्व तो दूसरा हो जाएगा, बिल्कुल दूसरा हो जाएगा।

तो इस दिशा में सोचें। और भी जो सुझाव आए मित्रों के, वे भी महत्वपूर्ण हैं। साहित्य पहुंचाने के लिए, अधिकतम लोगों तक पहुंच सके बात, उसके लिए, उसको सोचें। और सोचेंगे तो बहुत से मार्ग निकल आएंगे। सोचेंगे तो बहुत मित्र मिल जाएंगे, जो दे सकें अपना श्रम, अपनी शक्ति। मित्र हैं, आज हमारे पास काम ही नहीं है। मुझे जगह-जगह लोग पूछते हैं, हम क्या करें? हम कुछ करना चाहते हैं। हमारे पास कोई काम नहीं है कि उनको हम बताएं कि आप यह करें। आपके पास काम हो तो लोगों की कोई भी कमी नहीं पड़ेगी। बहुत अच्छे-अच्छे लोग आते जाएंगे, और रोज अच्छे-अच्छे आते जाएंगे।

कोई आदमी कुआं खोदता है तो पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ लगते हैं। फिर धीरे-धीरे अच्छी जमीन हाथ आती है। फिर पानी के स्रोत आते हैं। हमको अपने को तो अभी कंकड़-पत्थर ही मानना चाहिए, अभी हम

कुआं खोदना शुरू किए हैं। हमसे बहुत अच्छे लोग आ जाएंगे। हमसे ज्यादा काम करने वाले, हमसे ज्यादा बुद्धिमान, हमसे ज्यादा लगनशील लोग आ जाएंगे। और हमारी तैयारी होनी चाहिए कि जब भी हमसे ज्यादा लगनशील हों, हम जगह छोड़ दें, और उसको कहें कि तुम आ जाओ, तुम मुझसे ज्यादा बेहतर सम्हाल सकोगे। यह तो किसी प्रेम और किन्हीं मित्रों के समूह का लक्षण होता है कि हम हमेशा जगह छोड़ने को तैयार हों, कि कोई बेहतर आ गया तो मैं छोड़ दूंगा। मैं तभी तक हूं जब तक मुझसे बेहतर नहीं है, नहीं तो मैं हट जाऊंगा और उसे कहूंगा। क्योंकि रोज बेहतर लोग आएंगे।

इतना बड़ा मुल्क है, इतनी ऊर्जा है मुल्क के पास, इतने बढ़िया लोग हैं। हम उनको जिस दिन पुकारना शुरू करेंगे, बहुत लोग आएंगे। अभी हमने पुकारा भी नहीं है। अभी कोई आवाज भी नहीं दी। अभी इस दिशा में तो मैंने मुल्क में कभी किसी से कुछ नहीं कहा है। आप तैयार होते हैं तो मैं कहना शुरू करूंगा। आप कुछ दिन में घबड़ा जाएंगे कि इतने लोग मिल सकते हैं काम के लिए! मैंने तो कोई अपील नहीं की है अभी किसी से कि आकर किसी काम में हाथ बंटाए। लेकिन अपने आप लोग कहना शुरू किए हैं। जिस दिन मैं अपील करूंगा और लोगों को निमंत्रण दूंगा कि वे आ जाएं काम करने के लिए, आपको काम खोजना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए काम तय कर लें, सोचें दिशाएं, और लोग मैं ला दूंगा, लोगों की आप चिंता न करें, उसकी कोई कठिनाई नहीं है, उसकी कोई कठिनाई नहीं है।

बस।

छठवां प्रवचन

संगठन और धर्म

सुबह मैंने आपकी बातें सुनीं। उस संबंध में पहली बात तो यह जान लेनी जरूरी है कि धर्म का कोई भी संगठन नहीं होता है; न हो सकता है। और धर्म के कोई भी संगठन बनाने का परिणाम धर्म को नष्ट करना ही होगा। धर्म नितांत वैयक्तिक बात है, एक-एक व्यक्ति के जीवन में घटित होती है; संगठन और भीड़ से उसका कोई भी संबंध नहीं है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि और तरह के संगठन नहीं हो सकते हैं। सामाजिक संगठन हो सकते हैं, शैक्षणिक संगठन हो सकते हैं, नैतिक-सांस्कृतिक संगठन हो सकते हैं, राजनैतिक संगठन हो सकते हैं। सिर्फ धार्मिक संगठन नहीं हो सकता है।

यह बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि अगर मेरे आस-पास इकट्ठे हुए मित्र कोई संगठन करना चाहते हैं, तो वह संगठन धार्मिक नहीं होगा। और उस संगठन में सम्मिलित हो जाने से कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो जाएगा। जैसे एक आदमी हिंदू होने से धार्मिक हो जाता है, मुसलमान होने से धार्मिक हो जाता है, वैसे ही जीवन जागृति केंद्र का सदस्य होने से कोई धार्मिक नहीं हो जाता। धार्मिक होना दूसरी ही बात है। उसके लिए किसी संगठन का सदस्य होने की जरूरत नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि जो किसी संगठन का--धार्मिक संगठन का--सदस्य है, वह धार्मिक संगठन की सदस्यता उसके धार्मिक होने में निश्चित ही बाधा बनेगी। जो आदमी हिंदू है वह धार्मिक नहीं हो सकता है। जो जैन है वह भी धार्मिक नहीं हो सकता। जो मुसलमान है वह भी धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि संगठन में होने का अर्थ संप्रदाय में होना है। संप्रदाय और धर्म विरोधी बातें हैं। संप्रदाय तोड़ता है, धर्म जोड़ता है।

इसलिए पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि मेरे आस-पास अगर कोई भी संगठन खड़ा किया जाए तो वह संगठन धार्मिक नहीं है। उसे धार्मिक समझ कर खड़ा करना गलत होगा। इसलिए जिन मित्रों ने कहा कि धार्मिक संगठन नहीं हो सकता, उन्होंने बिल्कुल ही ठीक कहा है, कभी भी नहीं हो सकता है। लेकिन उनको शायद भ्रांति है कि और तरह के संगठन नहीं हो सकते।

और तरह के संगठन हो सकते हैं। जीवन जागृति केंद्र भी और तरह का संगठन है, धार्मिक संगठन नहीं। इस समाज में इतनी बीमारियां हैं, इतने रोग हैं, इतना उपद्रव है, इतनी कुरूपता है कि जो मनुष्य भी धार्मिक है, वह मनुष्य चुपचाप इस कुरूपता, इस गंदगी, इस समाज की मूर्खता को सहने को तैयार नहीं हो सकता। जो मनुष्य धार्मिक है वह बरदाश्त करने को तैयार नहीं होगा कि यह कुरूप समाज जिंदा रहे और चलता रहे। जिस मनुष्य के जीवन में भी थोड़ी धर्म की किरण आई है वह इस समाज को आमूल बदल देना चाहेगा।

जीवन जागृति केंद्र धार्मिक संगठन नहीं है, लेकिन धार्मिक लोगों का संगठन है सामाजिक परिवर्तन और क्रांति के लिए। इसकी सदस्यता से कोई धार्मिक नहीं हो जाएगा; लेकिन जो लोग चाहते हैं कि समाज को, जीवन को, नीति को, चलती हुई व्यवस्था को, परंपरा को बदला जाए, वे लोग इस संगठन के सदस्य हो सकते हैं और इस संगठन को मजबूत बना सकते हैं। यह संगठन सामाजिक क्रांति का संगठन होगा, धार्मिक नहीं; सोशल रिफॉर्म के लिए; धार्मिक शांति के लिए नहीं, सामाजिक क्रांति के लिए।

यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह एक सामाजिक क्रांति का आंदोलन है। और जो व्यक्ति भी थोड़ा सा प्रबुद्ध होगा, शांत होगा, जीवन को देखेगा और समझेगा, यह हिंसा होगी उसकी तरफ से कि वह इस समाज को जैसा यह है वैसा ही चलने दे। कोई धार्मिक मनुष्य इस समाज की मौजूदा स्थिति को बरदाश्त नहीं कर सकता है, सिर्फ अधार्मिक लोग ही बरदाश्त कर सकते हैं। वे, जिनके प्राणों में कोई करुणा नहीं है, वे ही समाज में चलती हुई कुरूपता को देख सकते हैं। वे, जिनके जीवन में प्रेम की कोई किरण नहीं है, वे ही घृणा के इतने

अंधकार को सह सकते हैं। वे, जिनके भीतर मनुष्यता मर गई है, वे ही अपने चारों तरफ मनुष्यता के मरे हुए रूप के बीच रहने को राजी हो सकते हैं। या तो धार्मिक आदमी इस समाज को बदलेगा, बदलने की कोशिश करेगा, या अपने को मिटा देगा, लेकिन इसी समाज में रहने की तैयारी उसकी नहीं हो सकती है।

तो जीवन जागृति केंद्र एक संगठन होगा--धार्मिक संगठन नहीं, सामाजिक क्रांति, उथल-पुथल के लिए एक संगठन। वह एक आंदोलन होगा।

लेकिन वह आंदोलन इस अर्थों में नहीं, जिस तरह कि मोहम्मद का आंदोलन है कि आदमी मुसलमान हो जाए तो सब हो गया। जो मुसलमान है वह मोक्ष पहुंच जाएगा और जो नहीं है उसके द्वार बंद हो गए। इस तरह का वह संगठन नहीं होगा। उसका मोक्ष से कोई भी संबंध नहीं है। मोक्ष से संबंध संगठन का कभी होता ही नहीं, वह व्यक्ति की निजी बात है।

लेकिन जिन लोगों के जीवन में भी थोड़ी सी शांति फलित होगी, जिनके जीवन में भी प्रभु का थोड़ा सा प्रकाश आएगा, क्या वे समाज को ऐसा ही देखते रहेंगे जैसा कि समाज है? यह बरदाश्त के बाहर है। धार्मिक मनुष्य बुनियादी रूप से विद्रोही होगा। और अगर आज तक दुनिया में धार्मिक मनुष्य विद्रोही नहीं हुआ तो उसका एक ही कारण है कि वह मनुष्य धार्मिक ही न रहा होगा। धार्मिक आदमी रिबेलियस होगा ही। उसके जीवन में क्रांति होगी ही।

लेकिन क्रांति तो अकेले नहीं हो सकती, क्रांति के लिए तो संगठन चाहिए। क्योंकि जब हम क्रांति करने चलते हैं तो क्रांति को रोकने वाली जो शक्तियां हैं वे संगठित हैं। उनके खिलाफ एक आदमी का क्या अर्थ है? क्रांति के विरोध में जो प्रतिगामी, जो रिएक्शनरी फोर्सेज हैं वे सब संगठित हैं। उनके खिलाफ एक आदमी का क्या प्रयोजन है? क्या अर्थ है?

जिंदगी में जो लोग गलत हैं वे संगठित खड़े हुए हैं और अच्छा आदमी यह सोच कर कि संगठन की क्या जरूरत है, बुरे आदमियों का साथी और सहयोगी बनता है। यह ध्यान रखना चाहिए, चोर और बदमाश सब संगठित हैं। राजनैतिक संगठित हैं। जिंदगी को खराब करने वाले सारे लोग संगठित हैं। और अच्छा आदमी सोचता है, संगठन की क्या जरूरत है!

तो फिर इसका एक ही फल होगा कि यह अच्छा आदमी भी--चाहे जानते हुए, चाहे न जानते हुए--बुरे आदमियों का एजेंट सिद्ध होगा। क्योंकि बुरे आदमियों के संगठित रूप को बदलने के लिए अच्छे आदमियों के भी संगठन की अत्यंत अनिवार्य जरूरत है। पर एक बात ध्यान में रखते हुए कि वह संगठन धार्मिक नहीं है, उस संगठन का धर्म से सीधा संबंध नहीं है। धार्मिक लोग उस संगठन में हो सकते हैं, लेकिन उस संगठन की सदस्यता से कोई धार्मिक नहीं होता है। सामाजिक क्रांति की दृष्टि को ध्यान में लेकर एक संगठन अत्यंत जरूरी है।

यह हमेशा से दुर्भाग्य रहा है कि बुरे आदमी सदा से संगठित रहे हैं, अच्छा आदमी हमेशा अकेला खड़ा रहा है। और इसीलिए अच्छा आदमी हार गया, अच्छा आदमी जीत नहीं सका। अच्छा आदमी आगे भी नहीं जीत सकेगा। अच्छे आदमी को भी संगठित होना जरूरी है। बुराई की ताकतें इकट्ठी हैं। उन ताकतों के खिलाफ उतनी ही बड़ी ताकतें खड़ा करना आवश्यक है।

तो मैं धार्मिक संगठन के एकदम विरोध में हूं, लेकिन संगठन के विरोध में नहीं हूं। इस भेद को समझ लेना जरूरी है।

दूसरी बात, यह संगठन क्या चाहेगा? क्या करना चाहता है? क्या इसकी प्रवृत्ति होगी?

समाज की जो जरूरतें हैं उनको ध्यान में लेंगे तो इसकी प्रवृत्ति ख्याल में आ सकती है। समाज की पूरी जीवन-व्यवस्था ही रुग्ण है; उसमें आमूल क्रांति की जरूरत है, उसमें बुनियाद से ही पत्थर बदल देने की जरूरत है। जैसे हम आदमी को आज तक ढालते रहे हैं, वह ढालने का ढांचा ही गलत सिद्ध हुआ है। उस ढांचे से अनिवार्यरूपेण बीमारियां पैदा होती हैं। फिर हम एक-एक आदमी को जिम्मेवार ठहराते हैं कि तुम जिम्मेवार

हो, जब कि वह आदमी विक्टिम होता है, शिकार होता है, जिम्मेवार नहीं होता। और उस पर हम जिम्मेवारी थोपते रहे हैं पिछले पांच हजार वर्षों से। यह बिल्कुल ही आदमी के साथ अन्याय हुआ है।

आदमी गरीब होगा, चोर हो जाना बहुत संभव है। आदमी दीन-हीन होगा, उसका पापी हो जाना बहुत संभव है। जब तक दुनिया में दरिद्रता है, दीन-हीनता है, तब तक हम मनुष्य को सच्चे अर्थों में नैतिक बनाने में समर्थ नहीं हो सकते। इतनी दरिद्रता होगी कि प्राण ही दरिद्रता में डूबे हों, तो नीति का स्मरण रखना बहुत मुश्किल है। एक तरफ समाज का सारा धन इकट्ठा हो जाए और समाज के अधिक लोग निर्धन हों और फिर हम उन्हें समझाएं कि तुम धन का लोभ मत करना, तुम धन का मोह मत करना, तुम किसी दूसरे के धन को प्रतिस्पर्धा से मत देखना...

हम कुछ ऐसी बातें सिखा रहे हैं कि एक घर के एक कोने में सुस्वादु भोजन का ढेर लगा है और भूखे लोग घर के चारों तरफ इकट्ठे हुए हैं, उनकी नाकों में उस भोजन की सुगंध जा रही है, उनकी आंखें उस भोजन को देख रही हैं, और वे भूखे हैं, और उनके पूरे प्राण रोटी मांग रहे हैं और हम उन्हें समझा रहे हैं कि देखो, भूल कर भी कभी भोजन का ख्याल मत करना, भोजन का विचार मत करना; दूसरे के भोजन की तरफ देखना भी मत; यह बड़ा पाप है।

समाज की पूरी की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि उससे अनीति पैदा होती है। अगर समाज के व्यापक पैमाने पर एक नैतिक जीवन विकसित करना हो--धार्मिक मैं नहीं कह रहा हूं-- नैतिक जीवन विकसित करना हो, तो हमें समाज की सारी आमूल धारणा को सोचना-विचारना पड़ेगा। हमें सोचना पड़ेगा सब तरफ।

तो जीवन जागृति केंद्र समाज की आर्थिक व्यवस्था पर भी स्पष्ट दृष्टिकोण लेना चाहेगा। और उस दृष्टिकोण को गांव-गांव, कोने-कोने तक पहुंचाना चाहेगा। समाज की शिक्षा दूषित है, समाज की सारी शिक्षा दूषित है; शिक्षा के नाम पर सिर्फ धोखा होता है। न तो मनुष्य का व्यक्तित्व निर्मित होता है, न उसकी आत्मा विकसित होती है, न उसके प्राणों में कुछ ऐसा फलित होता है जिसे हम जीवन का अर्थ, जीवन की कला, कुछ कह सकें। आदमी बिना कुछ जाने हाथ में डिग्रियां लेकर वापस चला आता है। बिना कुछ हुए घर वापस लौट आता है और जिंदगी का सबसे बहुमूल्य समय शिक्षा के नाम पर नष्ट हो जाता है। जिस समय में कुछ हो सकता था वह बिल्कुल ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है। जीवन जागृति केंद्र को नई शिक्षा के संबंध में एक स्पष्ट दृष्टि विकसित करनी होगी कि नई शिक्षा कैसी हो।

हमारा परिवार बिल्कुल सड़-गल गया है, लेकिन हम उसमें इतने दिन से रह रहे हैं कि हमें पता भी नहीं चल रहा है कि उसकी सब चीजें सड़ गई हैं। कोई दंपति सुखी नहीं है। कोई पिता सुखी नहीं है बेटे से। कोई बेटा सुखी नहीं है बाप से। कोई मां अपने बच्चों से सुखी नहीं है। कोई गुरु खुश नहीं है अपने शिष्यों से। कोई शिष्य अपने गुरुओं से खुश नहीं है। सारा का सारा समाज कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि एक-दूसरे को दुख देने के लिए ही निर्मित हुआ है।

परिवार की आमूल धारणा बदलनी जरूरी है। नये तरह का परिवार विकसित होना चाहिए जहां पिता और बेटे, मां और बेटे, पति और पत्नी संतुष्ट हों, जीवन में अधिकतम संतोष उपलब्ध कर सकें। और ऐसा समाज निर्मित हो सकता है, ऐसा परिवार निर्मित हो सकता है। सिर्फ हमने उस संबंध में सोचा नहीं है, विचारा नहीं है।

उदाहरण के लिए मैंने कहा कि जीवन की सारी व्यवस्था पर जीवन जागृति केंद्र एक आंदोलन फैलाना चाहेगा। मेरी उस सब संबंध में दृष्टि है।

धर्म के संबंध में मेरी दृष्टि है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवन के और पहलुओं पर मैं नहीं सोचता हूं। मेरी तो अपनी समझ यह है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का थोड़ा सा भी प्रकाश होगा वह उस प्रकाश के सहारे जीवन के सारे पहलुओं को देखने में समर्थ हो जाता है। धर्म का दीया हाथ में हो तो हम जीवन की सारी समस्याओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू पर मेरी दृष्टि है। वह मैं आपसे कहना चाहता हूं, पूरे समाज से कह देना चाहता हूं। जीवन जागृति केंद्र उस सारी बात को पहुंचाने का ध्यान लेगा।

जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जिसमें बदलाहट की जरूरत न आ गई हो। सच तो यह है कि वह सिर्फ ऐतिहासिक जरूरतों से पैदा हो गया है हमारा जीवन; सक्रिय और सचेतन रूप से मनुष्य का समाज निर्मित नहीं हुआ है। अब तक जो समाज निर्मित हुआ है वह बिल्कुल अचेतन, ऐतिहासिक प्रक्रिया से निर्मित हो गया है; सचेष्ट रूप से, विचार करके समाज की कोई भी चीज निर्मित नहीं हुई है। जरूरत है कि हम सचेष्ट होकर जीवन के एक-एक पहलू पर पुनर्विचार करके निर्मित करने का विचार करें। और सब कुछ बदला जा सकता है।

अभी इजरायल में उन्होंने पंद्रह वर्षों से एक छोटा सा प्रयोग किया है। प्रयोग का नाम है किबुत्ज। यह परिवार में एक अत्यंत क्रांतिकारी प्रयोग है। मैं चाहता हूं कि हिंदुस्तान के गांव-गांव में भी वह प्रयोग हो। आने वाले दो सौ वर्षों में जो बच्चे किबुत्ज के प्रयोग से विकसित होंगे वे बिल्कुल नये तरह के बच्चे होंगे। किबुत्ज एक व्यवस्था है जहां तीन महीने के बाद बच्चे को गांव के सामूहिक आश्रम में प्रवेश दे दिया जाता है--तीन महीने के बच्चे को। उसे मां-बाप से दूर ही पाला जाता है। मां-बाप मिल सकते हैं--महीने में, पंद्रह दिन में, सप्ताह में, रोज--जब उन्हें सुविधा हो वे जाकर बच्चे को प्यार कर सकते हैं, लेकिन बच्चे का सारा पालन-पोषण सामूहिक कर दिया गया है।

सामूहिक पालन-पोषण के अदभुत परिणाम हुए हैं। सामान्यतया सोचा गया था कि बच्चों का प्रेम इस भांति मां-बाप के प्रति कम हो जाएगा। लेकिन परिणाम यह हुआ है कि किबुत्ज के बच्चे अपने मां-बाप को जितना प्रेम करते हैं, दुनिया का कोई बच्चा कभी नहीं कर सकता। उसका कारण यह है कि उन बच्चों को मां-बाप का प्रेम ही देखने का मौका मिलता है, और तो कुछ भी देखने का मौका नहीं मिलता। मां-बाप जब भी जाते हैं उन बच्चों के पास तो उन्हें हृदय से लगाते हैं, प्रेम करते हैं। जब वे बच्चे घंटे दो घंटे को घर आते हैं तो मां-बाप प्रेम करते हैं। न मां-बाप को उन पर नाराज होने का मौका है, न क्रोध करने का, न गाली देने का। न उन बच्चों को मौका मिलता है कि बाप मेरी मां के साथ कैसा व्यवहार करता है, मां मेरे बाप के साथ किस तरह के वचन बोलती है--इस सबका उन्हें कुछ भी पता नहीं है।

मां-बाप उन्हें एकदम देवता मालूम होते हैं, क्योंकि जब भी वे आते हैं तब उनको देवता पाते हैं। वे घड़ी आधा घड़ी को आते हैं। मां-बाप घड़ी आधा घड़ी को अपने बच्चों से मिलने जाते हैं। बीस वर्ष की उम्र में जब वे वापस लौटेंगे पूरी शिक्षा लेकर तो मां-बाप के संबंध में उनके मन में कोई भी घृणा, कोई भी रोष, कोई भी प्रतिक्रिया, कोई भी रिबेलियन नहीं हो सकता है। उनका जितना प्रेम पाया गया...

अब तक सोचा जाता था कि मां-बाप से दूर रखने में बच्चों का प्रेम कम हो जाएगा, लेकिन किबुत्ज के प्रयोग ने सिद्ध कर दिया है कि मां-बाप और बच्चों के बीच प्रेम अदभुत रूप से विकसित हुआ। वहां जो बच्चे सामूहिक रहे...

इसका हमें ख्याल ही नहीं है कि छोटे बच्चों को बूढ़ों के साथ पालना एकदम अनैतिक है। छोटे बच्चों की बुद्धि छोटे बच्चों की है, बूढ़ों की बुद्धि बूढ़ों की है। बूढ़ों को जीवन भर का अनुभव है, वे और ढंग से सोचते हैं, बच्चे और ढंग से। और हमारे सभी बच्चों को बूढ़ों के साथ पलना पड़ता है। इसमें कितना अनाचार हो जाता है बच्चों के साथ, इसका हमें हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। न बूढ़े बच्चों को समझ सकते हैं, न बच्चे बूढ़ों को समझ सकते हैं। बूढ़े दुखी होते हैं कि ये बच्चे हमें परेशान कर रहे हैं। और बच्चों को हम कितना परेशान करते हैं, इसका हमें कोई हिसाब नहीं है।

किबुत्ज ने कहा कि बूढ़ों और बच्चों को साथ-साथ पालना बच्चे को बचपन से ही पागल बनाने की चेष्टा है। क्योंकि बूढ़े का अपना सोचने का ढंग है। उसका ढंग गलत है, यह नहीं; उसका अपना जीवन का अनुभव है; उसका अपना सोचने का ढंग है; उसकी उम्र के देखने का अपना रास्ता है; छोटे बच्चे की जिंदगी से उसका क्या संबंध है?

तो किबुत्ज कहता है कि एक उम्र के लोगों को एक ही उम्र के लोगों के साथ पालना ही मनोवैज्ञानिक है। तो जिस उम्र के बच्चे हैं वे उसी उम्र के बच्चों के साथ पाले जाएं। और इसका परिणाम यह हुआ है कि किबुत्ज से आए हुए बच्चों में एक ताजगी, एक नयापन, बात ही और, खुशी ही और।

हमारे बच्चे तो बूढ़ों के साथ रह-रह कर उदास हो जाते हैं। इसके पहले कि वे खुश होना सीखें, चारों तरफ उदासी उनको पकड़ लेती है। वे एकदम भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि हर चीज में उन्हें लगता है कि वे गलत हैं। पिता किताब पढ़ रहे हैं, गीता पढ़ रहे हैं, और बच्चे को लगता है कि वह शोर कर रहा है तो गलत कर रहा है।

अब बच्चे को कभी ख्याल में भी नहीं आता कि गीता पढ़ना क्या इतना उपयोगी हो सकता है कि मेरा शोर करना फिजूल हो! बच्चे के लिए कूदना और शोर करना इतना सार्थक है कि उसकी कल्पना के बाहर है कि आप एक किताब लेकर बैठे हैं तो कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हैं कि हम शोर न करें। हर चीज धीरे-धीरे उसको पता चल जाती है कि वह गलत है।

तो हम हर बच्चे को गिल्टी और अपराधी बना देते हैं। बचपन से ही उसे लगने लगता है कि जो मैं करता हूं वह गलत है। शोर करता हूं, गलत है; खेलता हूं, गलत है; दौड़ता हूं, गलत है; झाड़ पर चढ़ता हूं, गलत है; नदी में कूदता हूं, गलत है; कपड़े पहने हुए वर्षा में खड़ा होता हूं, गलत है। मैं जो भी करता हूं, गलत है। इसका इकट्ठा परिणाम होता है कि मैं गलत आदमी हूं। हम अपराधी पैदा कर रहे हैं बचपन से।

और उसका कुल कारण यह है कि बच्चों को उनकी भिन्न उम्र के लोगों के साथ पाला जा रहा है। किबुत्ज में उन्होंने व्यवस्था की है कि बच्चे एक उम्र के बच्चों के साथ पलें। उनको सम्हालने के लिए भी उनसे थोड़ी ही ज्यादा उम्र के बच्चे हों, बहुत बड़ी उम्र के लोग नहीं। बड़ी उम्र के लोग कोनों में और दूर खड़े रहें। वे इतना ही ध्यान रखें तो काफी है कि बच्चे कोई अपने को आत्म-हानि न पहुंचा लें। बस इससे ज्यादा ध्यान रखने की कोई जरूरत नहीं है।

मेरे एक मित्र एक किबुत्ज स्कूल में गए और वे देख कर दंग रह गए! बच्चों का खाना हो रहा था, और उन्होंने कहा कि मैंने जिंदगी में पहली दफा अनुभव किया कि खाना बच्चों का ऐसा होना चाहिए। पचास बच्चे थे। कुछ बच्चे मेज पर नाच रहे हैं--उसी पर जिस पर कि खाना चल रहा है, कुछ बच्चे तंबूरा बजा रहे हैं, एक बच्चा ट्विस्ट करके डांस कर रहा है, एक लड़की गीत गा रही है। सारा खेल चल रहा है, बीच में खाना भी चल रहा है, नाच भी चल रहा है। उन्होंने कहा कि वह दो-ढाई घंटे तक चलता रहा, वह खाना और वह नाच। मैंने पूछा, क्या यह रोज होता है? उन्होंने कहा, खाना और बिना नाचे और बिना गाए कैसे हो सकता है! उन्होंने कहा कि मैं दो घंटे तक देख कर दंग रह गया! वे बच्चे इतने खुश थे!

लेकिन यह बूढ़ों के साथ तो खाने में नहीं हो सकता। यह असंभव है। हमारे बच्चों के खुशी जानने के पहले उनकी खुशी नष्ट हो जाती है। उनको बच्चे की तरह पाला ही नहीं गया।

तो मेरी दृष्टि है, बच्चे से लेकर बूढ़े तक, आर्थिक व्यवस्था से लेकर राजनीति तक, शिक्षा, समाज, परिवार, इस सारे को कैसे रूपांतरित किया जाए। और उसके लिए एक संगठन की जरूरत है। वह धार्मिक संगठन नहीं है। इस पर तो विस्तार में आपसे बात नहीं कर सकूंगा। इस पर तो एक अलग कैंप लेने का विचार चलता है जहां मैं, समाज के सारे अंगों को कैसे बदला जाए, उस पर अलग से आपसे पूरी बात कर सकूं।

दूसरी बात, कुछ बातें हमें मान कर चलनी चाहिए। जैसे, जिस समाज में हम हैं वह रुग्ण है। इसलिए हम अगर किसी संगठन में यह शर्त बना देते हैं कि स्वस्थ लोग ही उस संगठन के सदस्य हो सकेंगे, तो वह संगठन कभी बनेगा नहीं। यह वैसे ही है जैसे कोई अस्पताल एक तख्ती लगा दे दरवाजे पर कि सिर्फ वे ही लोग अस्पताल में भर्ती हो सकते हैं जो स्वस्थ होंगे। तो उस अस्पताल में कोई भर्ती नहीं होगा, क्योंकि पहली तो बात यह कि अस्पताल की जरूरत ही नहीं रह जाती। दूसरी बात यह कि अस्पताल में आदमी तभी जाता है जब वह बीमार है।

तो अगर हम इस तरह की शर्तें और कंडीशंस बनाएं कि निरहंकारी लोग संगठन में आएं, जिन्हें मान, पद-प्रतिष्ठा का कोई सवाल नहीं है वे संगठन में आएं, जिन्हें धनी और निर्धन के बीच कोई फर्क नहीं है वे संगठन में आएं, तो आप गलत शर्तें लगा रहे हैं। मैं यह मानता हूं कि लोग संगठन में रह जाने के बाद इस भांति के हो जाने चाहिए, लेकिन यह संगठन में आने की शर्त नहीं हो सकती। जो आदमी इस संगठन में रह जाए वह ऐसा

हो जाना चाहिए। लेकिन ऐसा हो तब संगठन हम खड़ा करेंगे या संगठन बनाएंगे, तो हम पागल हैं! फिर संगठन बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

यह हमें मान कर चलना पड़ेगा कि संगठन खड़ा होगा तो आदमी की बीमारियों के साथ शुरू होगा। इस बात को स्वीकार करके चलना पड़ेगा कि आदमी में बीमारियां हैं। अब उन बीमारियों को कितना बचाया जा सकता है, उसका ध्यान रखना जरूरी है; कितना दूर किया जा सकता है, उसके उपाय करने जरूरी हैं। और अंतिम लक्ष्य ध्यान में होना चाहिए कि वह दूर हो जाए। कैसे दूर होगा?

सामान्य मनुष्य की सारी क्रियाएं अहंकार से प्रेरित होती हैं। यह तो परम धर्म की अनुभूति पर उपलब्ध होता है कि अहंकार खो जाता है। तब सारी क्रियाएं निरहंकार हो जाती हैं। लेकिन उसके पहले यह नहीं होता।

तब क्या रास्ता है? लेकिन अहंकारग्रस्त मनुष्य भी अच्छा काम कर सकता है और अहंकारग्रस्त मनुष्य बुरा काम भी कर सकता है। अच्छे काम के साथ उसके अहंकार को जोड़ा जा सकता है और बुरे काम के साथ भी जोड़ा जा सकता है। निश्चित ही, परम अर्थों में अच्छा काम तभी होता है जब अहंकार शून्य हो जाता है। लेकिन वह पहली शर्त नहीं हो सकती किसी संगठन की। जब भी कोई सामाजिक जीवन और संगठना खड़ी करनी हो तो यह मान कर चलना होता है कि आदमी के रोग को हम स्वीकार करते हैं। उस रोग का अधिकतम शुभ के लिए हम प्रयोग करने की कोशिश करेंगे।

अब जैसे यही सवाल है--कुछ लोग पचास रुपये में ठहरे हुए हैं, कुछ लोग तीस रुपये में ठहरे हुए हैं। इसमें कई कारण हो सकते हैं। और जैसा समाज है, वर्ग विभाजित, उसमें यह असंभव है कि इस पूरे वर्ग विभाजित समाज में आप एक छोटा सा ओएसिस बनाना चाहें जहां कि वर्ग विभाजन न हो। क्योंकि यहां जो लोग आएंगे वे वर्ग विभाजित समाज से आएंगे। उनके सारे जीवन का सोचने का ढांचा वर्ग विभाजन का है। इस ढांचे से वे लोग यहां आएंगे तीन दिन के लिए। अगर हम यह शर्त रख लें कि यहां वर्ग विभाजित भाव छोड़ देना पड़ेगा तो ही प्रवेश पा सकते हैं, तो प्रवेश ही नहीं पाया जा सकता है।

वर्ग विभाजित समाज है। समाज क्लासेस में बंटा हुआ है। वह जो आदमी यहां आ रहा है वह उस समाज से आ रहा है। उसके प्राणों में गहरे वह वर्ग बैठ गया है। उस वर्ग को निकालना है। वर्ग को निकालने की चेष्टा करनी है। लेकिन वर्ग न हो, यह योग्यता नहीं बनाई जा सकती, पहली क्वालीफिकेशन, कि तब उसे प्रवेश मिलेगा।

पचास रुपये वाला आदमी है; वह पचास रुपये वाला आदमी पचास रुपये की सुविधा मांगता है; उसकी अपनी आदतें हैं। पचास रुपये की सुविधा उसे न दी जाए तो वह नहीं आएगा। मुझे पता चला कि बंबई से और दो-चार सौ लोग आने वाले थे, लेकिन पचास रुपये वाला हिस्सा खत्म हो गया, वे नहीं आ सके। अब यह जो आदमी है, यह पचास रुपये में ठहरता है।

मैं नहीं कहता कि यह विभाजन खत्म कर दिया जाए, मैं तो यह कहता हूं विभाजन और थोड़ा बड़ा किया जाए। सौ रुपये का भी वर्ग हो, अस्सी का भी हो, सत्तर का भी हो, दस का भी हो, पांच का भी हो, शून्य का भी हो।

जैसा एक मित्र ने कहा कि कुछ लोग हैं जो कुछ भी नहीं दे सकते।

जो कुछ भी नहीं दे सकते उनको लाने का एक ही उपाय है कि जिन्हें डेढ़ सौ रुपये देने में मजा हो सकता है उनके लिए डेढ़ सौ का वर्ग भी हो। इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है। तो शून्य वाला भी लाया जा सकता है।

कुछ को सिर्फ डेढ़ सौ रुपये देने में ही सुख उपलब्ध होता है कि वे डेढ़ सौ वाले वर्ग में ठहरे हुए हैं। उनको इतना सुख लेने दिया जाए। यह तो पीछे की बात होगी कि हमारी यहां की व्यवस्था और विचार और चिंतना और व्यवहार से उनको पता चले कि वे बेवकूफ थे, उन्होंने भूल की। यह तो यहां केंद्र का जो व्यवहार होगा शून्य रुपया देने वाले से, वह वही होगा जो डेढ़ सौ रुपये देने वाले से होगा।

व्यवहार मैं कह रहा हूं--खाट नहीं कह रहा हूं, तकिया नहीं कह रहा हूं। क्योंकि ठीक है कि डेढ़ सौ रुपये वाले के लिए आपको दो अच्छे तकिए देने पड़ेंगे; वे देने चाहिए। लेकिन व्यवहार! यहां केंद्र का जो कार्यकर्ता है

वह डेढ़ सौ रुपये वाले से ज्यादा सम्मान से बोलेगा, तो गलती होती है, तो भूल होती है। जिसने एक भी पैसा नहीं दिया है उससे अगर वह असम्मान से बोलता है तो भूल होती है। तो हम वर्ग पैदा कर रहे हैं फिर। ये तो वर्ग हैं--सौ रुपये, डेढ़ सौ रुपये वाले--हम पैदा नहीं कर रहे; उसी वर्ग से यह समाज आ रहा है। हम वर्ग मिटाने के लिए एक नया समाज खड़ा करना चाहते हैं। यहां जो व्यवहार होगा, उस तल पर रत्ती भर का फासला नहीं होना चाहिए।

लेकिन यह फासला होगा कि डेढ़ सौ रुपये वाला मेरे बंगले के पास ठहरेगा। यह व्यवहार का फासला नहीं है। वह डेढ़ सौ रुपये भी दे और गांव में भी ठहरे, और जो कुछ भी न दे वह मेरे पास ठहरे, तो यह किस अर्थ में न्यायपूर्ण होगा? उसे ठहरने दें यहां। उसके यहां ठहरने से कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि जब वह मुझसे मिलने आएगा तब उसको पता चलेगा कि मुझसे मिलने जो सौ कदम पैदल चल कर आया है उसमें और वह जो दो कदम चल कर आया है, मुझसे मिलने में कोई फर्क नहीं है।

और फिर हमें नई धारणा विकसित करनी चाहिए कि डेढ़ सौ रुपये वाले बंगले में वे लोग ठहरे हुए हैं जो उतने स्वस्थ नहीं हैं कि दस रुपये वाली जगह में ठहर सकें। वह हमें विकसित करनी चाहिए धारणा। वह जो पचास रुपये वाले में ठहरा हुआ है वह अस्वस्थ आदमी है, तीस रुपये वाला आदमी ज्यादा स्वस्थ है, वह तीस रुपये में भी गुजारा करता है। हमें धारणा, वैल्यूज बदलनी हैं। डेढ़ सौ रुपये, सौ रुपये से आप नहीं छुटकारा पा सकते हैं। हमें यह धारणा बनानी चाहिए कि तीस रुपये वाले में जो ठहरा है वह ज्यादा स्वस्थ आदमी है, पचास में जो ठहरा है वह बीमार है। डेढ़ सौ वाला और भी बीमार है, उसके लिए ज्यादा सुविधा की व्यवस्था के आयोजन की जरूरत है। और बीमार आदमी के प्रति हमारी दया होनी चाहिए, घृणा नहीं होनी चाहिए। स्वभावतः, बीमार आदमी के प्रति दया ही होती है, घृणा का क्या कारण है! हमें धारणा बदलनी चाहिए, वैल्युएशन। हमारे सोचने और वैल्यूज का फर्क होना चाहिए।

इसलिए मुझे ख्याल आता है कि केंद्र के मित्रों ने जो वर्ग के नाम रखे हैं वह "ए" क्लास तो तीस रुपये वालों के लिए शायद रखिए, "सी" क्लास पचास रुपये वालों के लिए रखिए। वह थर्ड क्लास में पचास रुपये वाला है, वह फर्स्ट क्लास में है नहीं। होना भी यह चाहिए। होना भी यह चाहिए कि हम दृष्टिकोण बदलें कि पचास रुपये वाले को भी ख्याल हो कि पचास रुपये वाले में ठहरना थोड़ा दया के पात्र बनना है। तीस रुपये वाले में ठहरने वाले को लगता हो कि वह ज्यादा स्वस्थ आदमी है। सौ आदमी के साथ जो ठहर सकता है वह आदमी ज्यादा सामाजिक है। जो कहता है कि मैं अकेले ही ठहरूंगा, दूसरे के साथ सो भी नहीं सकता रात, यह आदमी रुग्ण है। इसकी व्यवस्था हमें करनी चाहिए। और हम उपाय करेंगे कि धीरे-धीरे यह सौ के साथ ठहर सके। लेकिन हम यह शर्त लगा दें कि नहीं, यहां तो एक ही वर्ग होगा, तो हम सिर्फ इसको रुकावट डाल रहे हैं।

और बड़े मजे की बात यह है कि जिसको हम रुकावट डाल रहे हैं वह उसके लिए भी सहारा बनता जो कि नहीं आ सक रहा है। आपको शायद अंदाज नहीं है, जिन लोगों से तीस रुपये की व्यवस्था की गई है, तीस रुपये में उनका खर्च हो नहीं रहा है। उनका खर्च कोई पैंतीस और सैंतीस के करीब पड़ेगा। वे सात रुपये पचास रुपये वाला चुका रहा है। पचास का खर्च नहीं है। खर्च कोई चालीस के करीब है। वे दस रुपये जो ज्यादा हैं पचास रुपये वाले पर, वे चालीस वाले को तीस किए जा सकें इसलिए हैं। लेकिन आदमी की बुद्धि बड़ी अजीब है। उसके लिए इंतजाम किया जाए तो वह परेशान होता है कि मुझे तीस का हिस्सा बना दिया। न इंतजाम किया जाए तो चालीस देने की उसकी तैयारी नहीं है। और जो आदमी उसके लिए दस रुपये चुका रहा है वह आदमी घृणा का पात्र हो रहा है।

फिर यह समाज आपका, इसका जिम्मा न तो जीवन जागृति केंद्र पर है, न मुझ पर है। यह आपके सारे बाप-दादों पर है; पांच हजार साल में जो समाज उन्होंने पैदा किया है वह बेवकूफी से भरा हुआ है। आज तो समाज को स्वीकार करके चलना पड़ेगा--उसमें बदलाहट करनी है तो भी।

लेकिन यहां केंद्र के मित्रों को व्यवहार में जरूर बहुत ध्यान रखने की जरूरत है। उस तल पर हमारे मन में धन की कोई स्वीकृति नहीं होनी चाहिए, जरा भी नहीं होनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि धन का

अपमान होना चाहिए। क्योंकि हमारी बुद्धि इसी तरह काम करती है, या तो हम धन को आदर देते हैं या अपमान करते हैं। बस दो के बीच हम डोलते हैं। धन की सहज स्वीकृति होनी चाहिए। धन का मूल्य है। धन की शक्ति है। और गलत हैं वे लोग जो समझते हों कि धन का कोई मूल्य नहीं है और कोई शक्ति नहीं है। धन का बहुत मूल्य है और बहुत शक्ति है। लेकिन उस कारण कोई मनुष्य सम्मानित नहीं होता। मनुष्यता धन से बहुत बड़ी बात है। खाट धन से मिलती है, और तकिए भी धन से मिलते हैं, और मकान भी धन से मिलता है, और भोजन भी धन से मिलता है। मनुष्यता धन से नहीं मिलती। तो खाट, तकिए, और गद्दियों में तो फर्क होगा, लेकिन मनुष्यता के आदर में फर्क नहीं होना चाहिए।

और जब धीरे-धीरे इस केंद्र के मित्र एक हवा पैदा कर लेंगे कि यहां मनुष्यता में कोई फर्क नहीं है तो हम वह वक्त भी ले आएंगे कि हम कहेंगे कि जो जितना दे सके वह उतना दे--तीस और सौ के बीच जो जितना दे सके वह उतना दे दे या दस और सौ के बीच जितना दे सके उतना दे दे। जो जितना दे सके उतना दे और जो जितनी सुविधा में रहना चाहे उतनी सुविधा लिख कर दे दे। वह एक धीरे से विकास की बात है, कि आज से पांच साल के बाद हम यह कर सकेंगे कि दस से और सौ तक जिसको जितना देना हो उतना दे दे, और जितनी उसकी जरूरत हो उतनी मांग कर ले। हो सकता है दस रुपये देने वाला बीमार हो और उसे सौ रुपये की व्यवस्था की जरूरत हो, लेकिन वह सौ न दे सकता हो। और यह भी हो सकता है कि सौ देने वाला सौ दे सकता हो और बीमार न हो और दस रुपये की व्यवस्था में रह सकता हो। वह प्रेमपूर्ण हवा हम धीरे-धीरे पैदा कर सकते हैं, लेकिन वह बुनियादी शर्त नहीं बनाई जा सकती, वह पहली योग्यता नहीं बनाई जा सकती। वह हमारे हवा और निर्माण की बात है।

इसी भांति जीवन जागृति केंद्र के मित्र और कार्यकर्ता एकदम से आज प्रतियोगिता से मुक्त नहीं हो जाएंगे। लेकिन प्रतियोगिता से मुक्त हो सकते हैं, यह लक्ष्य रखा जा सकता है। लेकिन इसे भी सीधा लक्ष्य बनाने की जरूरत नहीं है। मेरी दृष्टि में, नकारात्मक लक्ष्य कभी भी नहीं बनाने चाहिए। ध्यान होना चाहिए कि हमारा प्रेम विकसित हो। जितना प्रेम विकसित होगा, प्रतियोगिता उतनी ही कम हो जाती है।

शायद आपको यह पता ही न हो कि जो आदमी प्रतियोगिता की मांग करता है, वह क्यों मांग करता है। यह आपको पता है? एक आदमी कहता है कि मुझे पहला स्थान चाहिए, मैं दूसरे स्थान पर खड़ा होने को राजी नहीं हूं। लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि कोई आदमी पहले स्थान पर खड़ा क्यों होना चाहता है?

शायद आपने ख्याल भी न किया होगा, जिस आदमी को जीवन में प्रेम नहीं मिलता वही आदमी प्रथम होने की दा.ैड में पड़ता है। क्योंकि प्रेम में तो प्रत्येक व्यक्ति तत्काल प्रथम हो जाता है। जिसको भी मैं प्रेम दूंगा वह प्रथम हो गया। अगर आपने मुझे प्रेम दिया तो मैं प्रथम हो गया, इस जगत में मैं द्वितीय नहीं रहा। जिस आदमी को प्रेम नहीं मिलता जीवन में और जो न प्रेम दे पाता है और न ले पाता है, वह आदमी प्रेम की कमी प्रतियोगिता से पूरी करता है। काम्पिटीशन जो है वह सब्स्टीट्यूट है, प्रतियोगिता जो है वह पूरक है। जिसको प्रेम नहीं मिला वह फिर प्रतियोगी बन जाता है। फिर वह कहता है, मुझे किसी तरह प्रथम होना है।

अगर मैं एक लड़की को प्रेम करूं तो अनजाने वह लड़की यह अनुभव करेगी कि उससे ज्यादा सुंदर इस पृथ्वी पर कोई स्त्री नहीं है। बस मेरा प्रेम उसको यह ख्याल दिला देगा कि उससे सुंदर, उससे श्रेष्ठ कोई स्त्री नहीं है। अगर मुझे कोई प्रेम करे तो मुझे यह ख्याल पैदा हो जाएगा उसके प्रेम के कारण, उसकी आंखों के कारण, उसके हाथ के स्पर्श से कि मेरे जैसा पुरुष इस जगत में कोई भी नहीं है। प्रेम प्रत्येक व्यक्ति को प्रथम बना देता है। जिस पर प्रेम की नजर गिरती है वह प्रथम हो जाता है।

तो जिनके जीवन में प्रेम नहीं हो पाता, वे बेचारे प्रथम होने की कोशिश करते हैं। इसलिए प्रतियोगिता प्रश्न नहीं है, प्रश्न हमेशा प्रेम है। जिस आदमी के जीवन में प्रेम फलित होता है उसे ख्याल ही भूल जाता है कि वह प्रथम आए। प्रथम आने का सवाल ही समाप्त हो जाता है। प्रेम प्रथम बना देता है प्रत्येक को।

तो यह सवाल नहीं है कि प्रतियोगिता छोड़ें। वह मेरी दृष्टि नहीं है। मेरी दृष्टि यह है कि केंद्र के मित्र कितने प्रेमपूर्ण हो सकें, उस दिशा में प्रयास करना है। वे जितने प्रेमपूर्ण होते चले जाएंगे उतनी ही प्रतियोगिता क्षीण होती चली जाएगी। प्रतियोगिता केवल बीमारी है; प्रेम के अभाव से पैदा होती है। इसलिए प्रतियोगिता मिटानी है, यह बात ही गलत है। प्रतियोगिता कभी नहीं मिटती जब तक प्रेम नहीं बढ़ता।

इस दुनिया में इतनी प्रतियोगिता है, क्योंकि प्रेम बिल्कुल नहीं है। और यह रहेगी प्रतियोगिता। एक कोने से मिटाइएगा, दूसरे कोने से शुरू हो जाएगी। इधर से दबाइएगा, वहां से निकलने लगेगी। क्योंकि बुनियादी सवाल प्रतियोगिता नहीं है; प्रेम कैसे विकसित हो, उस पर जोर देना है। और इस पूरी संगठना को प्रेम पर ही खड़ा करना है। प्रेम के सूत्र हैं, वह मैं आपसे धीरे-धीरे बात करता हूं अनेक बार कि प्रेम कैसे विकसित हो। इसी में छोटी-मोटी थोड़ी सी बातें और मुझसे सुबह हुई हैं, वे भी मैं आपसे कहूं।

ऐसा रोज होता है। मेरे आस-पास कार्यकर्ताओं का एक वर्ग इकट्ठा होगा ही। जरूरी भी है कि इकट्ठा हो। न इकट्ठा हो तो मेरा जीना ही मुश्किल हो जाए। सुबह से उठता हूं--उठा और रात सोया, तब तक एक क्षण का भी विश्राम मुझे नहीं है। नहीं हो सकता, मैं भी जानता हूं कि विश्राम लेने जैसा समय भी नहीं है। इतनी परेशानी में आदमी है कि विश्राम क्या लेना! लेकिन अगर काम भी करना हो तो विश्राम जरूरी है, और किसी अर्थ में नहीं। जो मित्र मुझे मिलने आते हैं उनको तो पता भी नहीं होता।

अभी बनारस में एक दिन बोल कर मैं लौटा--रात को कोई दस बजे। और घर पर आठ-दस आदमी इकट्ठे हैं। सुबह से मैं बोल रहा हूं, रात दस बजे लौटा हूं कि अब जाकर सो जाऊंगा, कमरे पर आठ-दस लोग इकट्ठे हैं। उनको पता भी नहीं है। उनका कोई कसूर भी नहीं है। उन्हें कुछ बातें पूछनी हैं। वे बहुत प्रेम से मिलने आए हैं। वह अपनी बातें उन्होंने शुरू कर दीं। वे साढ़े बारह बजे तक बात किए चले जा रहे हैं। अब घर के जो मेरे होस्ट हैं वे परेशान इधर-उधर घूम रहे हैं। वे बार-बार इशारा करते हैं कि अब इनको उठाऊं। लेकिन वे तो बातचीत में इतने तल्लीन हैं। और उनकी बातचीत उपयोगी है; अर्थपूर्ण है; उनके जीवन की समस्या है। कहां वे ख्याल रखें कि अब मुझे सो जाना चाहिए। एक बजे जाकर उनको आखिर कहना पड़ा। कहा तो वे दुखी हुए, और कहा कि हम छह महीने से राह देख रहे हैं आपके आने की। और कल सुबह तो आप चले जाएंगे। क्या यह नहीं हो सकता कि आज आप हमारे लिए न सोएं? मैंने कहा कि यह हो सकता है; लेकिन यह कितने दिन चल सकेगा? यह हो सकता है, आज मैं नहीं सोऊंगा, कल मैं नहीं सोऊंगा, लेकिन यह कितने दिन चल सकता है?

अभी एक दिन एक मीटिंग थी आठ बजे। सात बजे मैं थका-मांदा लौटा और सो गया आकर, कि आठ बजे की मीटिंग में जाना है। एक मित्र मिलने आए, वे मित्र यहां हैं। तो मेरे छोटे भाई ने उनको कह दिया कि नहीं, वे तो नहीं मिल सकेंगे, आप आठ बजे मीटिंग में आ जाएं। वे बेचारे महीनों से आने के ख्याल में होंगे। उनको बहुत दुख हुआ। वे रोते हुए घर लौटे। मुझे कल ही पता चला। उनकी तरफ से कोई भी कसूर नहीं है। उनको कुछ भी पता नहीं, वे इतने प्रेम से छह महीने में साहस जुटा कर मिलने आए। न मालूम कितना भाव लेकर आए होंगे! न मालूम क्या कहने आए होंगे! और किसी ने कह दिया कि नहीं, अभी नहीं मिल सकते। इसमें गलती किसकी है?

मैं मानता हूं, कार्यकर्ता की ही गलती है सदा। क्योंकि जो आया है, उसकी तो गलती नहीं है। कार्यकर्ता की सदा गलती है, क्योंकि इसी बात को थोड़े भिन्न ढंग से कहा जा सकता था, यह बात थोड़ी प्रेमपूर्ण हो सकती थी। इस बात के कहने में कि "अभी नहीं मिल सकते हैं, आप मीटिंग में आठ बजे पहुंच जाएं," मेरा तो ध्यान रखा गया, लेकिन जो मिलने आया था उसका कोई भी ध्यान नहीं रखा गया। यह भूल हो गई। यह एकदम भूल हो गई। मुझसे भी ज्यादा ध्यान उसका रखा जाना जरूरी है जो मुझसे मिलने आया है; क्योंकि न मालूम कितनी आकांक्षा, न मालूम कितने ख्याल, न मालूम कितना विचार लेकर वह आया है। इस बात को ऐसा भी तो कहा जा सकता था कि मैं दिन भर से थका हुआ आया हूं, अभी लेट गया हूं। अगर आप कहें तो उठा दूं। आप सोच लें!

मैं नहीं सोचता कि जो आदमी मुझसे नहीं मिलने के कारण रोता हुआ घर लौटा, वह मुझे उठाने के लिए राजी होता, यह नहीं हो सकता। यह असंभव था। यह असंभव था, अगर जिन्होंने उनको कहा था, यह कहा होता कि वे सोए हैं दिन भर से थके हुए आकर और आठ बजे मीटिंग में फिर जाना है, थोड़ी तकलीफ होगी; आप कहें तो मैं उठा दूं। तो मैं नहीं मानता हूं कि वे मित्र जो रोते हुए लौटे थे, इतने भाव से भरे आए थे, वे इतनी भी कृपा मुझ पर न दिखाते। वे मुझे... तब लेकिन वे रोते हुए नहीं लौटते, तब वे खुश लौट सकते थे।

लेकिन कार्यकर्ता की धीरे-धीरे स्थिति एक रूटीन की हो जाती है। उसको समझाने- बुझाने का ख्याल भी नहीं रह जाता। उसकी भी तकलीफ है। एक को हो तो वह समझाए, उसे दिन में कई लोगों को यही बात कहनी है।

लेकिन कार्य करने का अर्थ ही यह है कि हम वृहत्तर मनुष्य समाज से संबंधित हो रहे हैं, हम अनेक लोगों से संबंधित हो रहे हैं। और हम अनेक लोगों के प्रति प्रतिबार प्रेमपूर्ण हो सकें तो ही हमारे कार्य करने की कुशलता, कला और सफलता है।

तो जीवन जागृति केंद्र के मित्रों को मेरा ध्यान तो रखना ही है, लेकिन मुझसे भी ज्यादा ध्यान उन मित्रों का रखना है जो मुझसे मिलने आएंगे। अगर कभी रोकना भी पड़े तो उस रोकने में सदा उन पर ही छोड़ देना चाहिए। और अगर वे छोड़ने को राजी न हों तो मेरी फिकर छोड़ देनी चाहिए। मुझे थोड़ी तकलीफ होगी, उसकी चिंता नहीं लेनी चाहिए, लेकिन किसी आदमी को दुखी करके लौटाना एकदम गलत है। अगर उसे खुशी से लौटा सकते हों तो ठीक, नहीं तो मत लौटाइए। मेरी तकलीफ का उतना सवाल नहीं है, उसकी खुशी ज्यादा कीमती है। आखिर मैं जो श्रम भी कर रहा हूं वह इसीलिए कि कोई खुश हो सके। अगर उसकी खुशी ही खोती हो तो मेरे श्रम का कोई अर्थ नहीं रह जाता। एक भी आदमी अगर असंतुष्ट लौटता है मेरे पास से, तो उसका पाप मेरे ऊपर ही लगता है। यह मेरे मित्रों को ध्यान में ले लेना चाहिए।

उनकी तकलीफ मैं समझता हूं, उनकी अड़चन मैं समझता हूं। हर आदमी आकर प्रवेश करना चाहता है, बात करना चाहता है, घंटों समय लेना चाहता है। वे कहां से इतना समय लाएं, समय सीमित है। उनको दो मिनट में किसी को कहना पड़ता है कि अब आप जाइए, क्योंकि पचास लोग और मिलने बैठे हुए हैं, और समय तो सीमित है। दो मिनट में किसी को भी मिल कर जाने में कष्ट होता है। लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि दो मिनट में भी खुशी से कोई मिल कर जा सकता है। और उसकी पूरी की पूरी साइंस व्यवहार की कार्यकर्ता को सीख लेनी जरूरी है। तो इधर मैं सोच रहा हूं कि कार्यकर्ताओं का एक छोटा शिविर तीन-चार दिन के लिए लूं, जहां उनसे इस संबंध में सारी बात कर सकूं। एक छोटे से शब्द से सब कुछ फर्क पड़ जाता है। छोटे से व्यवहार से सब कुछ फर्क पड़ जाता है। एक हाथ के छोटे से स्पर्श से सब कुछ फर्क पड़ जाता है।

हमने कैसे... मेरे मित्र एक मेरे साथ थे किसी गांव में। उनके जाने पर पीछे कुछ मित्रों ने मुझे आकर शिकायत की कि वे हमारा हाथ पकड़ कर हमको ऐसा ले जाते हैं कि जैसे हमें निकाल रहे हों। किसी को हम इस ढंग से भी ले जा सकते हैं कि निकाल रहे हैं! और इस ढंग से तो चोट पहुंच जाएगी। हम इस ढंग से भी बोल सकते हैं...

अभी दो लोग बंबई से सिर्फ इसलिए गए, परसों जबलपुर पहुंचे मुझसे मिलने, सिर्फ शिकायत करने। पति और पत्नी जबलपुर पहुंचे बंबई से कि हमको मिलने नहीं दिया गया बंबई में, और हमें धक्के देकर कहा कि जाओ-जाओ, अभी नहीं मिल सकते हैं। तो हमें भारी सदमा पहुंचा कि हम मनुष्य नहीं हैं क्या कि हमें बिल्कुल जानवर की तरह धक्का दे दिया!

कठिन है यह बात। मैं जानता हूं कि कार्यकर्ता की कितनी तकलीफ है! वह दिन भर में घबड़ा जाता है सुबह से सांझ तक; वह भूल जाता है। लेकिन इस भूल जाने में फिर वह कार्यकर्ता नहीं रह जाता। उसे अत्यंत विनम्र होना पड़ेगा; अत्यंत प्रेमपूर्ण होना पड़ेगा।

और एक बात ध्यान में ले लेनी चाहिए, दूसरे को दुख देकर अगर मेरा सुख बचाया जा रहा हो तो उस सुख को नहीं बचाना है। उसकी फिकर छोड़ दें। उसकी बिल्कुल फिकर छोड़ दें। दूसरे के सुखी रहते हुए अगर मेरी सुविधा जुटाई जा सकती है तो ही जुटानी है; अन्यथा नहीं जुटानी है।

इसको ध्यान में रख लेंगे तो फर्क पड़ेगा। एक भी व्यक्ति... और एक-एक व्यक्ति की कितनी कीमत है, हमें कुछ पता नहीं है। एक-एक आदमी अनूठा है। एक अदना आदमी आता है, अपरिचित आदमी--वह क्या है, क्या हो सकता है, क्या कर सकता है, कुछ भी पता नहीं। उसके मन को चोट देकर लौटा देना एक बहुत पोटेंशियल फोर्स को लौटा देना है। तो गलती बात है, वह नहीं होना चाहिए।

पर कार्यकर्ता अभी विकसित भी नहीं हुए हैं। अभी तो कुछ मित्र आए हैं, वे अपना काम-धाम छोड़ कर थोड़ा मेरा काम कर देते हैं। वे तो तभी विकसित होंगे जब एक व्यापक संगठन खड़ा होगा और हम सारी चीजों के सारे मुद्दों पर धीरे-धीरे व्यवस्था कर सकेंगे। तो एक नया कार्यकर्ताओं का वर्ग निश्चित खड़ा करना है।

तीन बातें अंत में।

एक तो मैं यूथ फोर्स का संगठन चाहता हूं; एक युवक क्रांति दल चाहता हूं पूरे मुल्क में--"युक्रांद" के नाम से एक संगठन चाहता हूं युवकों का। जो एक सैन्य ढंग का संगठन हो। जो युवक रोज मिलते हों--युवक और युवतियां दोनों उसमें सम्मिलित हैं--खेलते हों। और मेरी अभी धारणा विकसित होती चली जाती है कि बूढ़ों का, वृद्धों का जो ध्यान है वह विश्राम का होगा, युवकों का जो ध्यान है वह सक्रिय होगा, मेडिटेशन इन एक्शन होगा; खेलते हुए, परेड करते हुए ध्यान। तो युवकों के संगठन गांव-गांव में खड़े करने हैं जो खेलेंगे भी और खेल के साथ ध्यान का प्रयोग करेंगे; जो कवायद करेंगे, परेड करेंगे और उसके साथ ध्यान का प्रयोग करेंगे। और इन युवकों की शक्ति के आधार पर फिर जीवन की जिन-जिन चीजों को हमें बदलना है उनकी हम हवा और खबर और गांव-गांव तक वातावरण पैदा करें। एक तो युवकों का एक संगठन खड़ा करना है।

एक, सैकड़ों संन्यासी-संन्यासिनियां--हिंदू, जैन, मुसलमान--मुझे निरंतर मिलते हैं और वे चाहते हैं कि एक नये संन्यासियों का वर्ग भी मुल्क में खड़ा हो, जो न किसी धर्म का है, न किसी संप्रदाय का है, जो सिर्फ धर्म का है। अब तक दुनिया में ऐसा हुआ नहीं। कोई संन्यासी जैन है, कोई संन्यासी हिंदू है, कोई मुसलमान है। तो एक दूसरा संन्यासियों का एक आर्डर भी मैं खड़ा करना चाहता हूं। और करीब दो सौ संन्यासी और संन्यासिनियां मुझसे इस बात के लिए राजी हुए हैं कि मैं जिस दिन उन्हें आवाज दूं वे अपने-अपने पंथ छोड़ कर आ सकेंगे और एक नये संन्यासियों का एक वर्ग, जो किसी धर्म का नहीं है, जो सिर्फ धर्म का है, वह गांव-गांव जाए और जीवन को बदलने की सारी खबरें वहां तक पहुंचाए।

तो एक दूसरा संगठन संन्यासियों और संन्यासिनियों का। और वह भी, जब भी कोई चाहे कि संन्यासी से ऊब गया है तो तत्क्षण वह गृहस्थ हो जाए। और यह अपमानजनक नहीं होगा। इसकी कोई पाबंदी और बंदिश नहीं होनी चाहिए। तब कोई भी युवक युनिवर्सिटी से निकले और दो वर्ष संन्यासी रहना चाहे तो संन्यासी रहे। दो वर्ष संन्यास का जीवन देखे, पहचाने। वापस लौट आए। उसे कोई बाधा नहीं है। तो एक संन्यासियों का एक वर्ग।

और तीसरा, जगह-जगह छात्रावास खड़े करने की मेरी योजना है जहां विद्यार्थी रहें, पढ़ें वे कहीं भी, लेकिन उनकी जीवनचर्या को बदलने के लिए छात्रावास खड़े किए जाएं जहां उनकी जीवनचर्या बदली जा सके।

इन तीनों कामों को करने के लिए जीवन जागृति केंद्र का विराट संगठन, गांव-गांव में उसकी शाखा, जगह-जगह उसके केंद्र, तब वह इन तीन कामों को जीवन जागृति केंद्र कर सके।

तो इस दिशा में आप सोचें। और ध्यान रखें कि मैं इसे कोई धार्मिक संगठन नहीं बता रहा हूं। और ध्यान रखें कि यह संगठन सामाजिक क्रांति का संगठन है और इसे हम किस तरह से बनाएं, किस तरह से विकसित करें कि दस या पंद्रह वर्ष में इस देश की सामाजिक चेतना में एक स्थायी परिवर्तन खड़ा किया जा सके, एक छाप

जीवन में छोड़ी जा सके और जीवन को बदलने की दिशा में कुछ द्वार, कुछ खिड़कियां खोली जा सकें। ये खोली जा सकती हैं।

इस संबंध में जल्दी ही मैं चाहूंगा कि कार्यकर्ताओं का तीन दिन का एक शिविर, ताकि मैं प्रत्येक पहलू पर अपनी बात आपसे कह सकूं और आपकी बात सुन सकूं और फिर हम उसके बाबत व्यापक काम में जुट सकें।

कुछ और तो नहीं है बात? कुछ पूछने को हो तो पूछ लें आप।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अभी तक जो भी साहित्य का काम हुआ है वह ऐसा है कि नहीं होने से अच्छा है। वह कुछ ऐसा नहीं है कि जैसा होना चाहिए वैसा हो गया है। हो भी नहीं सकता था। जिन मित्रों को प्रेम पैदा हुआ उन्होंने कुछ करना शुरू किया। उनमें न तो साहित्यकार थे, न लेखक थे, जो भी आए प्रेम में उन्होंने कुछ अनुवाद भी किया। वह अनुवाद भी उनके प्रेम का ही प्रतीक था, उनकी कोई योग्यता थी, ऐसा नहीं था। लेकिन वे न करते तो होता भी नहीं। उन्होंने किया इसलिए आज ख्याल भी पैदा होता है कि उससे अच्छा कुछ होना चाहिए।

यह बिल्कुल ठीक है, उससे अच्छा होना चाहिए। और उस दिशा में हर केंद्र काम करे। क्योंकि मैं तो इतना बोल रहा हूं कि बंबई के केंद्र की सामर्थ्य के बाहर है कि वह छाप सके। मैं महीने भर में जितना बोलता हूं--जितने विषयों पर, जितनी विभिन्न बातों पर--उसको कोई एक केंद्र नहीं सम्हाल सकता। बंबई का केंद्र तो सम्हाल रहा है, सामर्थ्य से ज्यादा सम्हाल रहा है। और केंद्र क्या है, दो-चार मित्र हैं। केंद्र के नाम पर क्या है? बंबई देख कर बड़ा भारी नाम मालूम पड़ता है। दो-चार मित्र हैं वे सम्हाल रहे हैं। और इसलिए उनकी, वे जो भी कर रहे हैं, उनकी गलतियों की मैं बात ही नहीं करता हूं। क्योंकि वे इतना कर रहे हैं और इतनी मुश्किल में कर रहे हैं कि उनकी गलतियों की बात करना अन्याय हो जाता। वह मैं बात ही नहीं करता। क्योंकि एक-दो मित्र खींच रहे हैं सारा समय लगा कर, सारी शक्ति लगा कर।

यह बिल्कुल ही ठीक है, गलतियां अनुवाद में बहुत हैं। फिकर करें जगह-जगह। हर केंद्र पर फिकर करें। जहां से भी प्रकाशन की व्यवस्था जुटा सकें वहां प्रकाशन करें। गुजरात में गुजराती का प्रकाशन हो, यह अच्छा है। महाराष्ट्र में मराठी का हो, यह अच्छा है। हिंदी का प्रकाशन हिंदी के क्षेत्र से हो तो ज्यादा अच्छा होगा। इसमें कोई बाधा नहीं है। जो भी मित्र अपनी तरफ से, निजी भी कुछ व्यक्तिगत करना चाहे, वह भी करे।

अभी तो मेरा ख्याल यह है कि पांच वर्ष जिससे जो बन सके वह करे। पांच साल के बाद हम हिसाब लगाएंगे कि क्या ठीक हुआ, क्या गलत हुआ। उसके बाद फिर कैसे ठीक हो, उसका विचार करेंगे। अभी तो जिससे जो बने वह करता चला जाए। अभी तो मैं यह मानता हूं कि जो गलत कर रहा है वह भी ठीक कर रहा है। कर तो रहा है! और उसके करने से कम से कम चार लोगों को ख्याल पैदा होगा कि यह गलत हुआ, तो कुछ ठीक किया जा सकता है। इसलिए मैं रोकता ही नहीं किसी को। जो मुझसे कहता है कि यह करना है, मैं कहता हूं करो। यह भी जानते हुए कि यह बेचारा क्या अनुवाद करेगा!

एक मित्र ने अंग्रेजी में अनुवाद किया। उनका अनुवाद ठीक नहीं हो सकता था। मुझसे दूसरे लोगों ने भी कहा कि यह अनुवाद तो ठीक नहीं है। मैंने कहा, लेकिन कोई ठीक करने वाला कहता नहीं मुझसे कि करूं। ये कहते हैं, इसलिए इनको करने देता हूं। जब कोई ठीक करने वाला आकर मुझसे कहेगा कि करेंगे, तो उनको कहूंगा। अभी तो जो आया है उसको मैं करने देता हूं। इस बेचारे की हिम्मत तो देखो कि वह ज्यादा अंग्रेजी नहीं जानता, फिर भी अनुवाद कर रहा है! उसने अनुवाद किया। अनुवाद छप गया तो बहुत से लोगों ने कहा कि बड़ा गलत अनुवाद है। मैंने उनको पूछा कि सही तुम करो। फिर उन्होंने नहीं किया कुछ। वह अभी तक एक ने भी नहीं किया सही अनुवाद।

हमारी कठिनाई जो है वह यह है कि हो जाए कुछ काम...

एक मुझे ख्याल आता है, एक पेंटर था फ्रांस में। उसने एक चित्र बनाया और उसने एक चौरस्ते पर अपनी पेंटिंग लगा दी और गांव भर के लोगों से सलाह ली कि इसमें क्या-क्या गलतियां हैं। किताब रख दी, उसमें सारे लोग लिख गए आ-आ कर कि इसमें यह गलती है, इसमें यह गलती है, इसमें यह गलती है। सारी किताब भर गई! उसकी समझ के बाहर हो गया कि इतनी गलतियां एक पेंटिंग में करना भी बड़ी मुश्किल बात है! एक पेंटिंग छोटी सी, उसमें इतनी गलतियां करनी, एक बड़ी प्रतिभा की जरूरत है, तब हो सकती हैं। उसने अपने गुरु से कहा।

गुरु ने कहा, अब तू एक काम कर, इस पेंटिंग को टांग दे और नीचे लिख दे कि इसमें जहां गलती हो उसको सुधार दिया जाए।

उसको कोई सुधारने नहीं आया। उस गांव में एक आदमी ने भी ब्रश उठाकर उसकी पेंटिंग में कोई सुधार नहीं किया।

हमारा जो माइंड है, हमारा जो काम करने का ढंग है, वह हमेशा गलत क्या है वह हमें दिखाई पड़ जाता है। लेकिन ठीक क्या करना है वह हमारे ख्याल में नहीं आता।

तो वह तो मैं कहता हूं बच्चू भाई, यह अच्छा है, आप वहां बड़ौदा में कुछ करें, कुछ अहमदाबाद में मित्र करें--जो आपको ठीक लगे वह करें। और मेरी तो वृत्ति यह है कि जो भी आप करेंगे, मैं कहूंगा अच्छा है। क्योंकि अभी मेरा मानना यह है कि कुछ हो, फिर पीछे सब हिसाब-किताब लगा लेंगे कि क्या ठीक हुआ और क्या गलत हुआ। एक दफा हो तो!

तो हर केंद्र पर जो भी काम बन सके, वह शुरू करें। और बंबई कोई अभी केंद्र नहीं है, बंबई क्या केंद्र है अभी! दो-चार मित्र हैं! लेकिन सारे मुल्क में ऐसा ख्याल पैदा हो गया है कि बंबई कोई केंद्र है, उसके पास कोई धन है। न कोई धन है, न कोई पैसा है। वे निरंतर उधारी में और निरंतर परेशानी में हैं, कमाई-वमाई का सवाल नहीं है। वे हर बार गंवाते हैं। मेरे साथ दोस्ती गंवाने की हो सकती है, कमाने की हो भी नहीं सकती।

तो मुझे भी बड़ी परेशानी होती है। और वे भी बेचारे, उनका धीरज देख कर भी मैं हैरान होता हूं, कि जब वे ये बातें सुन लेते हैं कि कमा रहे हैं, फलां कर रहे हैं, तो मुझे भी हैरानी होती है। वह कमाने-वमाने का कहां सवाल है! अभी बंबई में उन्होंने कुर्सियां रखीं तो लोगों से कहा था कि चार-चार आने डाल जाओ। वह चार-चार आने भी लोग पूरे नहीं डाल गए। वह कुर्सियां भी उनको, पैसे खुद ही चुकाने पड़े। झोली लेकर खड़े हुए तो मेरे पास न मालूम कितनी चिट्ठियां पहुंचीं कि यह तो बात बहुत गलत है कि झोली लेकर खड़े हुए। लेकिन किसी ने यह नहीं पूछा कि झोली में मिला कितना? मिला कुछ भी नहीं, लेकिन चिट्ठियां मेरे पास इतनी पहुंचीं जिन्होंने लिखा कि झोली लेकर खड़ा होना बिल्कुल गलत है। जिन्होंने लिखा वे एक रुपया भी नहीं डाल गए होंगे उस झोली में। झोली लेकर खड़ा होना गलत है, कुर्सी के वे पैसे चुका नहीं सकते हैं। काम अच्छा होना चाहिए, वह कहां से होगा?

तो मेरी अपनी दृष्टि है कि अगर काम करना है केंद्र को तो पांच साल आलोचना और क्रिटिसिज्म की बात ही नहीं करनी चाहिए; काम करो। पांच साल बाद फिर इकट्ठा हिसाब लगाएंगे कि क्या-क्या गलती हुई है, उसको ठीक कर लेंगे। एक दफा काम! और मेरी अपनी समझ यह है कि काम खुद गलतियां सुधारता चला जाता है। जैसे-जैसे काम आगे बढ़ता है, ज्यादा होशियार लोग आएंगे, ज्यादा समझदार लोग आएंगे, वे काम को ठीक करते चले जाएंगे। एक बार काम जरूरी है। और हर केंद्र करे। बंबई के केंद्र का कोई ठेका नहीं है। वे जितना कर रहे हैं, कर रहे हैं। मैं तो चाहता हूं कि दूसरे केंद्र करने लगें तो उनका भार थोड़ा कम हो जाए। तो वह तो आप सम्हाल लें, बनाएं जगह-जगह केंद्र और जगह-जगह काम को अपने हाथ में ले लें और बांटें काम को। तो ही काम हो सकता है।

प्रश्नः केंद्र के बारे में आप कुछ बताएं।

बंबई के केंद्र ने कुछ नियम बनाए हुए हैं, वह तो उनका विधान है, वह आपको मिल जाएगा। लेकिन आप अपने गांव का जो केंद्र बनाएं, आप अपने नियम बना सकते हैं। मेरी दृष्टि यह है कि अभी एक-एक केंद्र अपने-अपने नियम बना ले, अपने हिसाब से काम शुरू कर दे। पीछे जब सब केंद्र काम करने लगेंगे तो उनको इकट्ठा कर लेंगे--पीछे, बाद में। पहले से एक केंद्र सबके ऊपर थोपे और आर्डर दे और काम करवाए, वह गलत है। एक-एक यूनिट काम करना शुरू कर दे, आपकी अपनी सुविधा है।

अब बंबई केंद्र बनाए तो वह ढाई सौ रुपया सदस्य की फी रख ले, तो बंबई में ढाई सौ रुपया कुछ भी नहीं है। अब एक छोटे से गांव में ढाई सौ रुपया फी रख लो तो एक भी सदस्य नहीं बनेगा। वे चार आना फी रखते हैं। अब बंबई के कांस्टिट्यूशंस से अगर गाडरवारा में कोई बनाने लगे केंद्र तो मुश्किल का मामला है। अभी गाडरवारा में मैं था, उन्होंने केंद्र बनाया। तो उन्होंने कहा, बंबई के हिसाब से हम बनाएं? मैंने कहा, बनाने की झंझट में पड़ना ही मत। वे हजार रुपये का पैट्रन रखे हैं, हजार रुपये का पैट्रन ढूंढने में ही तुम्हारी जिंदगी खत्म हो जाएगी। वह तुम्हें यहां मिलेगा ही नहीं। तुम तो अगर पंद्रह रुपये का पैट्रन खोजोगे तो मिल सकता है। तो तुम अपनी फिकर कर लो, अपने गांव का...

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पहले सारे मुल्क में छोटे-छोटे यूनिट बन जाएं। वे अपना काम शुरू कर दें--अपनी व्यवस्था, अपनी सुविधा, अपनी जगह देख कर। फिर पीछे हम उनको कभी भी इकट्ठा कर ले सकते हैं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है।

तो जीवन जागृति केंद्र की शाखाएं नहीं हैं जो जगह-जगह बन रही हैं, वे सब जीवन जागृति केंद्र हैं। वे ब्रांचेज नहीं हैं उसकी, वे सब इंडिपेन्डेंट यूनिट हैं। और उनके ऊपर कोई मालिक नहीं है ऊपर से आज्ञा देने को उनको। मैं मानता भी नहीं कि इस तरह की बात होनी चाहिए कि कोई ऊपर से आज्ञा दे कि ऐसा करो, वैसा करो। फिर वे पद खड़े होते हैं, फिर सारा चक्कर शुरू होता है। एक-एक यूनिट स्वतंत्र है; वह अपना बना ले, अपना काम शुरू करे। बंबई का यूनिट बहुत दिन से काम कर रहा है। उससे कोई सलाह मांगनी है, सलाह मांग ले; मार्ग-निर्देश चाहिए, मार्ग-निर्देश ले ले। लेकिन अपना काम शुरू करे अपने ढंग से। पीछे जब मुल्क में दो सौ यूनिट काम करने लगें तब हम इकट्ठे होकर उनको इकट्ठा कर लेंगे। उसमें कितनी देर लगती है? उसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभी किसी की तरफ मत देखें, अपना आप काम शुरू करें। उनके पास जो कांस्टिट्यूशन है वह आप ले लें और देख लें। उससे कुछ फायदा मिलता हो तो उसको समझ लें।

सातवां प्रवचन

ध्यान-केंद्र के बहुआयाम

वह जगह तो किसी भी कीमत पर छोड़ने जैसी नहीं है। हम तो अगर पचास लाख रुपया भी खर्च करें, तो वैसी जगह नहीं बना सकेंगे। दस एकड़ का कंपाउंड है। उसकी जो दीवाल है बनी हुई नौ फीट ऊंची, अपन बनाएं तो पांच लाख रुपये की तो सिर्फ उसकी कंपाउंड वॉल बनेगी। नौ फीट ऊंची पत्थर की दीवाल है। और वह करीब-करीब पंद्रह लाख में मिले तो बिल्कुल मुफ्त है। लेकिन यह सब तो उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना महत्वपूर्ण यह है कि वह बंबई में होते हुए उसके भीतर जाते से ही आपको लगे नहीं कि बंबई में हैं--माथेरान में हैं। इतने बड़े दरख्त हैं, और इतनी शांत जगह है।

तो मुझे तो वह देख कर उसी वक्त जम गई कि यह तो एक वर्ल्ड सेंटर बन सकता है। और बंबई में ही बन सकता है वर्ल्ड सेंटर बनाना हो तो।

और अब मुल्क भर में इतने लोग उत्सुक हुए हैं जो मेरे पास आकर रहना चाहते हैं--महीने, दो महीने, तीन महीने रुकना चाहते हैं। उनके लिए कोई न कोई इंतजाम करना जरूरी हो गया है। तो वह हमारी सारी गतिविधि का केंद्र बन सकता है। और एक दस साल ठीक मेहनत की जाए, तो सारी दुनिया से साधक उस केंद्र पर आ सकेंगे। तो साधना का केंद्र बन सकता है और सामाजिक क्रांति के लिए विचार फैलाने के लिए केंद्र बन सकता है।

तो मुझे तो वह उसी दिन ठीक पड़ गया कि यह जगह किसी भी हालत में उपलब्ध हो सके। तो आज तो लगता है कि पंद्रह लाख बहुत है, लेकिन वह जगह को देख कर पंद्रह लाख बिल्कुल ही कोई मतलब का नहीं है।

तो उधर मेरा ख्याल है कि एक तो वहां कोई दो सौ विद्यार्थियों के लिए हॉस्टल का इंतजाम कर देना है। दो हॉस्टल तैयार हैं। हॉस्टल ही हैं वे तैयार पूरे। बैचलर्स के लिए, बैचलर ऑफिसर्स के लिए बनाए होंगे। इतने बढ़िया हैं कि कोई भी विद्यार्थी दो सौ या तीन सौ रुपया महीना देकर भी वहां रहे तो भी सस्ता मालूम पड़े उसे। तो एक तो हॉस्टल वहां कर देना है। तो जो दो सौ विद्यार्थी वहां रहें, मैं चाहूंगा कि अपने मित्रों के बच्चे वहां रहें, ताकि मैं जैसा व्यक्तित्व निर्माण करना चाहता हूं, उनके बचपन से उनके व्यक्तित्व को वह दिशा दी जा सके। अब पूरे मुल्क में मुझे, घरों में जहां-जहां ठहरता हूं वहीं मेरे मित्र कहते हैं कि हमारे बच्चे को ले जाएं, हमारी लड़की को ले जाएं, वह आपके पास रहे। लेकिन मैं तो खुद ही घूमता रहता हूं, तो उसको रखने का क्या उपाय हो सकता है! मेरे पास क्या उपाय है किसी को रखने का!

तो वहां मित्रों के दो सौ बच्चों के लिए मैं इंतजाम करना चाहूंगा। वे पढ़ेंगे कहीं भी बस्ती में आकर, रहेंगे मेरे पास, ताकि उनके पूरे व्यक्तित्व को रूपांतरित करने के लिए बचपन से ही प्रयोग किया जा सके। और वह हमारा प्रयोग अगर सफल हो, तो मुझे जगह-जगह प्रॉमिस है मित्रों की कि फिर वैसे हॉस्टल मुल्क के बड़े-बड़े नगरों में, दस-पांच नगरों में हम डाल सकते हैं। बड़े पैमाने पर भी डाल सकते हैं। अभी दो सौ का इंतजाम करते हैं, कल हमको ठीक लगे तो वहां हम दो हजार के हॉस्टल का इंतजाम कर सकते हैं। इतनी जमीन खाली पड़ी है कि उसमें कुछ भी, कितने ही हॉस्टल बनाए जा सकते हैं।

तो एक तो बच्चों पर, उनकी पूरी जीवनचर्या पर प्रयोग हो सके। फिर जो साधक कैंप में आते हैं, मुझे सैकड़ों चिट्ठियां पहुंचती हैं कि तीन दिन में हमारी प्यास जगती है और वहां से तो विदा होने का वक्त आ जाता है। अब उनमें से अनेक लोग चाहते हैं कि कितना ही खर्च पड़े, हम महीने भर आपके पास आकर रहना चाहते हैं, दो महीने रहना चाहते हैं। मैं भी जानता हूं कि अगर दो महीने वे रह जाएं तो उनकी जिंदगी में क्रांति हो जाए। तो वहां इस तरह के साधकों के लिए व्यवस्था हो सकती है। वहां सारा पब्लिकेशन का इंतजाम पूरा हो सकता है। और मेरी दृष्टि हर चीज पर है। यानी मेरी दृष्टि तो जीवन के छोटे-छोटे मसलों पर है।

अब जैसे यह किताब छपती है, इसको मैं कोई छपाई नहीं मानता। वह तो हमारा वहां प्रेस हो, हमारी व्यवस्था हो, तो प्रिंटिंग भी एक आर्ट है। अभी कोई जापानी किताब देखें ध्यान की, तो किताब देख कर ध्यान की हालत हो जाए। यानी किताब पढ़ेंगे जब दूसरी बात है, किताब को उलटाएं तो आपको ऐसा लगे कि मन शांत हो गया। उतनी कलात्मक, उतनी व्यवस्थित, उतने ढंग से किताबें होनी चाहिए। वे हाथ में पहुंचें तो आदमी को स्पर्श कर लें।

फिर मेरी इस दिशा में कई दृष्टियां हैं जो वहां मैं प्रयोग करना चाहता हूं। जैसे मेरी दृष्टि है कि संगीत आत्मिक जीवन में प्रवेश के लिए बहुत कीमत का और उपयोगी हो सकता है। लेकिन सारी दुनिया में अभी संगीत का उपयोग सिर्फ वासना को उत्तेजित करने के लिए किया जा रहा है। जिस भांति संगीत वासना का उत्तेजक हो सकता है उसी भांति संगीत वासना को शांत करने वाला हो सकता है। तो वहां उस केंद्र पर मेरी दृष्टि है कि कुछ संगीतज्ञ आकर रुकते रहें और हम उस संगीत की दिशा में थोड़े प्रयोग कर सकें जो कि चित्त को शांति की तरफ ले जाता है। वैसे ही पेंटर वहां रुक सकें, पेंटिंग ऐसी बना सकें जो मनुष्य को आत्मिक जीवन की तरफ ले जाती है। कवि वहां रुक सकें, और उस तरह की काव्य की दिशा में मैं उनसे बात कर सकूं कि कविता उनके जीवन को धर्म की ओर ले जाने वाली बन जाए।

तो जीवन के सब पहलुओं को हम छू सकें वहां से, उसके लिए एक सेंटर की जरूरत है। और उस तरह के लोग सारे मुल्क में हैं जो आकर मेरे पास रहें तो उनसे बहुत काम लिया जा सकता है। अब न मालूम कितने चित्रकार मुझमें उत्सुक हैं, कवि उत्सुक हैं, संगीतज्ञ उत्सुक हैं, वे चाहते हैं कि मेरे पास रहें। लेकिन उसका कोई उपाय हमें इंतजाम करना पड़े।

तो आज हमें लगेगा कि यह पंद्रह लाख रुपया इंतजाम करने में थोड़ी तकलीफ मालूम हो सकती है। लेकिन एक दफे वह केंद्र बना और सारे मुल्क से, और धीरे-धीरे दुनिया से लोग आने शुरू हो गए...

अभी हरिकृष्णदास जी थे अमृतसर। तीस जर्मन वहां आए हुए थे, वह भारत-यात्रा के लिए। तो वे मुझसे मिलने आए। वे इतने आतुर होकर गए हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। दो घंटे उन्होंने बात की और उन्होंने जो पूछा वह इतना ऑथेंटिक और जिन्यून था, और इतनी...

और मजा यह है कि जो संन्यासी उनको लेकर आए थे वे संन्यासी जर्मनी में हैं कुछ वर्षों से। जर्मनी में उनके साठ हजार शिष्य हैं। जर्मन गवर्नमेंट ने उनको ब्लैक फॉरेस्ट में कोई बहुत बड़ी जमीन दी है आश्रम बनाने के लिए। आश्रम बनाया हुआ है। और वे तीस जिनको लेकर आए थे, मैं उनसे पूछा कि सिखाया क्या है उन्होंने? कर क्या रहे हैं?

तो हरे राम, जय-जय राम, यह सिखाया हुआ है! तो वे बेचारे जर्मन जो हैं वे कहीं भी नाटक करने को खड़े हो जाते हैं; हरे राम, जय-जय राम, वह करके बता देते हैं। यह सिखाया है, इससे बड़ी शांति मिलती है।

तो जब मैंने उनसे बात की कि यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो, यह तो कोई... पर वे इतने को ही, इतने ही उत्सुकता से यह सीख लिया है इसलिए कोई बड़ी बात सीख ली, वे बेचारे हिंदुस्तान घूमने आए। तो उनके गुरु तो परेशान हो गए। वे मुझसे मिलने जबलपुर आने को उत्सुक थे। जबलपुर वे लोग आए। तो मैं उनको तारीख छह दिया था, वे पांच को पहुंच गए उनके गुरु लेकर। और पांच की ही शाम उनको लेकर वहां से विदा भी हो गए। तो वे वहां खबर छोड़ कर आए कि हम तो रुकना चाहते हैं, लेकिन स्वामी जी आपसे नहीं मिलने देना चाहते हैं, इसलिए हमको मजबूरी से वे यहां से ले जा रहे हैं, वे हमको नहीं रुकने देते।

तो बंबई मुझे... मित्र पूना चाहते हैं, पूना स्वास्थ्य के लिहाज से अच्छा है, और भी लिहाज से अच्छा है। लेकिन मैं सोचता हूं कि काम के लिहाज से बंबई ही अच्छा होगा। सारे मुल्क से लोग रोज आ रहे हैं जो मुझसे मिल सकेंगे। मुल्क के बाहर से लोग आ रहे हैं जो मुझसे मिल सकेंगे। और शीघ्रता से हम पूरी दुनिया तक कुछ खबर पहुंचा सकें, तो उसके लिए एक व्यवस्थित केंद्र बन सकेगा।

तो वे अगर उठा लेते हैं थोड़ी हिम्मत से, तो आज थोड़ी हिम्मत लगेगी, कल ऐसा लगेगा कि हमसे चूक हो जाती अगर वह छूट जाता तो। और मजे की बात यह है कि हम अगर बनाने जाएं आज, तो करीब-करीब असंभव है। बनाना तो मुश्किल ही है मामला। और बीस साल लग जाएं उतना बनाने में, तब तक सब समय खराब हो। वह इतना तैयार है कि मुझे देख कर ऐसा लगा कि जैसे वह ठीक हमारे लिए ही सारी व्यवस्था है। दस हजार लोग बैठ सकें ऐसा कंपाउंड। तीन-तीन, चार-चार मीटिंग इकट्ठी हो सकें, अलग-अलग और डिस्टर्ब न करें एक-दूसरे को, इतनी व्यवस्था। और इतने बड़े दरख्त कि उनके नीचे छाया में दो-चार सौ लोग बैठ कर बात कर सकें, तो आसानी से बात हो सके।

तो मुझे तो बिल्कुल ही ठीक पड़ गया है कि उसको किसी भी हालत में उसको उठा लेना चाहिए। एक महिला वहां उत्सुक थीं, उन्हीं के लिए देखने गया था, वे तैयार थीं उसको लेने के लिए। लेकिन उनकी प्रवृत्ति कुछ उसको व्यक्तिगत नाम के साथ जोड़ने की है। तो मैं चाहता हूं कि वह ठीक नहीं है। वह फिर वही सिलसिला शुरू होता है। तो वह ठीक नहीं है। तो उसको हम संस्था के लिए ही ले सकें तो अच्छा है।

व्यक्तिगत रूप से तो कोई भी उसको ले सकता है। वह तो कोई ऐसे ही व्यावसायिक दृष्टि से ले ले तो फायदे का है। पंद्रह लाख में वैसे ही कोई ले ले तो उससे पचास लाख रुपया बना ले वह, उसमें तो कोई कठिनाई है नहीं।

तो इसलिए मैंने सोचा कि मित्र आ जाएं तो उसके लिए थोड़ा सोच लें और थोड़ी हिम्मत जुटा लें तो वह कोई कठिन बात नहीं है। ... पीछे सोचना पड़े, पीछे सोचना पड़े कि कुछ वैसा भी हो सके।

यह काम इतना बड़ा है कि अगर कुछ लोग परमानेंट...

हां, उसमें ऐसा है मामला; हां, यह हो सकता है; लेकिन उसमें मामला यही है कि वहां अगर ज्यादा लोग परमानेंट रहने वाले आ जाएं, तो उनकी उत्सुकता ध्यान में होगी, उनकी उत्सुकता और दूसरे काम में होगी या वे सिर्फ रहेंगे, तो पीछे कठिनाई हो सकती है। आपके लिए कठिनाई का सवाल नहीं है। मतलब सिर्फ रहने के ख्याल से वहां एक वर्ग आ जाए, जिसको रहने भर का काम है, रहने से प्रयोजन हो गया, तो वह हमारे कैम्पस में...

(ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, वह जरा मुश्किल मामला हो जाएगा। तो वह हमारे लिए डिस्टर्बिंग फैक्टर हो जाएगा--कि वह सिर्फ रहने के ख्याल से वहां रहने लगे।

वह तो बहुत ही आएंगे फिर।

हां, वह तो इतनी अच्छी जगह है कि वह तो अपने पास भीड़-भाड़ हो जाएगी। लेकिन हां, जो लोग ध्यान के लिए रहना चाहें, ध्यान के लिए रहना चाहें उनके लिए तो अपन इंतजाम करेंगे।

वह ऐसा है कि महीना भर आकर आदमी रह जाए, हमारे जैसे लोग छह महीना आकर रह जाएं...

बिल्कुल रह सकते हैं। लेकिन परमानेंट वसीयत के लिए अपन ख्याल करेंगे तो झंझट में पड़ जाएंगे। क्योंकि फिर किसको रोकना? वह जो भी खर्च करके बना सकेगा, वह रह सकेगा। और फिर वह अपने लिए एक उपद्रव का कारण होगा। छह महीना नहीं, छह साल किसी को रहना है तो रहे, उसकी कोई तकलीफ नहीं। लेकिन परमानेंट रेसिडेंट अपने को बनाना नहीं चाहिए वहां। वह नहीं बनाना चाहिए। वह, चंदू भाई, पीछे दिक्कत का हो जाएगा। क्योंकि कोई भी इस तरह के लोग आकर बस गए, जिनको प्रयोजन दूसरी बात से नहीं है, तो वे अपने लिए कष्ट का कारण होंगे। और वहां मैं बहुत ही डिसिप्लिन्ड लाइफ बनवाना चाहता हूं। वहां जरा सी भी गड़बड़ नहीं चलेगी। जैसा शिविर में हो जाता है कि किसी को कुछ भी करना है, कर रहा है; वह वहां कैम्पस में नहीं हो सकेगा। वहां तो बिल्कुल ही सख्ती से जो ध्यान के लिए आए हैं उनके लिए ही।

यह तो समाज का जीवन सुधारने के लिए ही यह जगह है, ऐसा समझ कर ही पैसा देना चाहिए।

वह तो आपको बिल्कुल रहना है तो आप रहिए, उसका सवाल ही नहीं है। लेकिन अपन उसको रहने के लिए अलग अगर इंतजाम करवाते हैं तो कठिन हो जाएगा। और वहां तो इतने मकान हैं कि आप बिल्कुल रहिए तो कोई तकलीफ क्या है! वहां तो दो सौ लोग कभी भी रहे आएं पूरे तो कोई अड़चन नहीं है। छह बंगले हैं।

दो तो हॉस्टल में जाएंगे।

हां, दो हॉस्टल में जाएंगे। अगर दो हॉस्टल में जाएंगे तो चार बंगले होंगे अपने पास। चार बंगले में भी कभी भी पचास लोग रह सकते हैं आसानी से। बिल्कुल आसानी से। बहुत बड़े-बड़े मकान हैं, बड़े हॉल हैं। वह तो रहना है तो अपन वह पीछे सोच भी सकते हैं। वह पीछे सोच भी सकते हैं।

एक या दो एकड़ दूसरी बाजू का अलग निकाल दिया जाए और उसको रेसिडेंशियल क्वार्टर...

नहीं, वह मैं पसंद नहीं करूंगा। वह अभी से ही गड़बड़ शुरू हो जाएगी। उसको मैं पसंद नहीं करूंगा। उसको हम जैसे ही रेसिडेंशियल और प्रोफेशनल और सब बातें सोचने लगे कि हम इतना पैसा खर्च कर रहे हैं तो रहने का इंतजाम हो जाए, यह हो जाए। वह अभी से गड़बड़ शुरू हो जाएगी।

नहीं, इनका-उनका कोई ताल्लुक नहीं रहेगा।

नहीं, वह ताल्लुक तो हो ही गया न! ताल्लुक नहीं रखना है तो उनको रहने काहे के लिए देना है?

नहीं, समझो दस एकड़ में से दो एकड़ काट दिया...

आज दो एकड़ काटिएगा, कल दो एकड़ और काटिएगा। वह सब... नहीं, उसमें से एक इंच नहीं काटने का सवाल है। वह तो जिसको रहना है वह वहां आकर रहेगा इन मकानों में। या संस्था और मकान बनाएगी, जिनको रहना है, रहेगा। व्यक्तिगत वसीयत के लिए मकान वहां नहीं बनाने देना है।

व्यक्तिगत पॉलिसी नहीं होगी।

नहीं, व्यक्तिगत मालकियत का सवाल नहीं है। वह तो गड़बड़ हो जाएगी।

(ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इंतजाम रहने का हो सकता है, कितनी ही देर। वह तो दस एकड़ अभी बड़ी दिख रही है आपको। वह तो मैं वहां साल भर रह गया तो दस एकड़ आपको छोटी दिखने लगेगी, इतने लोग वहां आने लगेंगे। उसमें तो कोई कठिनाई नहीं है, वह तो बहुत छोटी हो जाएगी। छह मकान बहुत कम पड़ जाएंगे आपको। वह तो कोई कठिनाई की बात नहीं है।

आप लोग उसमें कोई व्यक्तिगत मालकियत की व्यवस्था मत करिए। आपको, मित्रों को भी हिम्मत बंधती है कि ठीक है हम पांच और कर लेंगे, जब पांच हो सके। जब पच्चीस मित्रों में पांच हो सकते हैं तो और सौ मित्रों को खोजेंगे। इसमें क्या तकलीफ की बात है!

(ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, इसमें कोई ऐसी तकलीफ की बात नहीं है। कोई तकलीफ की बात नहीं है। इनिशियल हमको ऐसा लगे कि हो सकता है, तो फिर उसमें कठिनाई नहीं है बहुत। बहुत कठिनाई नहीं है।

(ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह तो जरा सब तय हो जाए, सब मित्रों को ले जाकर दिखा भी दें, तो उनको ख्याल में आ जाए कि वह चीज बहुत अदभुत है। अदभुत ही है, साधारण नहीं है। बहुत अदभुत है, बहुत अदभुत है।

यह कोई बहुत विचार करने की और सौदा करने की बात नहीं है। इसमें तो जितना मुनासिब हो, लगा दो! सौदा और विचार तो मार्केट में करते ही हैं, वहां मार्केट में सौदा कर लेंगे। इसमें क्या बड़ी बात है!

ध्यान-केंद्र बनाना हो, तो उसमें जैसे ही हम प्राइवेट ओनरशिप और इस तरह की बातें सोचना शुरू करते हैं, वैसे ही गड़बड़ होती है। यानी पहली बार तो जो भी डोनेशंस करने हैं वह बिल्कुल स्वतंत्रता से कर दें। यह बिल्कुल पीछे की बात होगी, अपने खरीदने के बाद सोचने की।

वह बिल्डिंग, वह जमीन तो सब सोसाइटी की होगी। वह तो सब सोसाइटी की हो जाएगी...

न, न, न। यह अभी सोचने का मामला नहीं है। यह तो एक दफा आप उसे खरीद लेते हैं, फिर तो आप ही को तो सोचना है सब। सोचना किसको है? वह तो आपको ही सोचना है कि क्या करना, क्या नहीं करना। वह कोई दूसरा तो सोचने वाला नहीं आने वाला है। लेकिन अभी जैसे ही आप यह लगा देते हैं, वैसे ही देने में स्वार्थ संयुक्त हो गया। देना सीधा नहीं रहा, निस्वार्थ नहीं रहा। यानी मेरा मतलब आप नहीं समझे।

(ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, वही, वही स्वार्थ हो गया न। वही गड़बड़ हो गई।

(ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, यह बात नहीं, वह उसमें स्वार्थ शुरू हो गया। वह चिंतन ही स्वार्थ का हो गया शुरू। इसलिए उसको मत सोचिए, वह तो कल आपकी ही संस्था होगी, आपकी जमीन होगी, आपकी कमेटी होगी, आप सोचेंगे कि क्या करना है, वैसा कर लेना। लेकिन अभी देते वक्त उसको सोचने का मतलब इंतजाम करने का है वह पहले से कि भई हम इतना पैसा लगाते हैं तो अपना इतना इंतजाम वहां कर लेना। वह गलती बात है।

यह एक तरह से बेशर्त दान है हमारा।

हां, इस वक्त तो बेशर्त है, अनकंडीशनल है। पीछे तो आपकी कमेटी होगी, आप सोच कर कर लेना जैसा ठीक लगे। उसको अभी मत सोचिए। अभी तो अनकंडीशनल ही बात है। अभी वह मत सोचिए, वह तो पीछे आप कमेटी बना कर विचार करिए। उसमें क्या है!

आठवां प्रवचन

रस और आनंद से जीने की कला

मैं एक मैगजीन में आपके जीवन के बारे में, आपके जीवन-दर्शन के बारे में कुछ देना चाहती हूं।

तो जीवन का देगी कि जीवन-दर्शन का देना चाहिए।

दोनों साथ में!

जीवन का क्या मूल्य है? जीवन का कोई भी मूल्य नहीं है, दर्शन का ही मूल्य है।

आपने ही कल बताया कि जीवन से भागना नहीं चाहिए।

हां, तो क्या लिखना है, बोल, क्या बताना है?

मैं आपसे प्रश्न पूछ लेती हूं।

अच्छा पूछ, प्रश्न पूछ।

आपका जन्म कहां हुआ था और कब हुआ था?

उन्नीस सौ इकतीस, गाडरवारा, मध्यप्रदेश।

जबलपुर के पास है?

हां, जबलपुर के पास है।

आपके माता-पिता हैं अभी या...

हां, वे लोग हैं, अभी गांव में हैं।

वे जैनी थे?

वे जैनी थे।

वे पारंपरिक जैनी थे?

वे जैन हैं, लेकिन मैं जैन नहीं हूं। यह ख्याल रखना, नहीं तो फिर गलती हो जाए। क्योंकि जन्म से धर्म का कोई संबंध नहीं है।

अच्छा, माता-पिता में से किसका आप पर ज्यादा असर है, ऐसा आपको लगता है।

नहीं, किसी का भी नहीं।

किसी का भी नहीं?

असर किसी का भी नहीं है। और असर मैं मानता भी नहीं कि किसी का भी किसी पर होना चाहिए। मेरी समझ ही यह है कि हर आदमी को अपने जैसा होना चाहिए। न किसी से प्रभावित होना चाहिए, न किसी का असर लेना चाहिए और न किसी को असर में डालना चाहिए। नहीं डालना चाहिए।

शाला जीवन में कोई यादगार प्रसंग है क्या?

बहुत प्रसंग हैं यादगार के तो, बचपन से प्रसंग ही प्रसंग हैं।

एक-दो बताएंगे?

किस संबंध में तेरे को प्रसंग चाहिए? क्योंकि...

आपके यह विकास में कोई प्यारा वेग मिला हो, ऐसा कोई हो, या तो आपको ज्यादा, अभी तक याद रहे, ऐसा कोई प्रसंग हो। जैसा आपने कल बताया था वह कि रुपये छोड़ दिए तो तीस साल तक याद रहा।

हां, ऐसा कोई बताना पड़े। तो मैंने कुछ छोड़ा ही नहीं। बड़ा मुश्किल है।

तो पहली बात तो यही थी, परिवार की परंपरा, या समाज की शिक्षा, या गुरुजनों के उपदेश, किसी पर मुझे कभी कोई आस्था नहीं रही। अनास्था बिल्कुल प्रारंभ से ही है। अविश्वास और संदेह। जैसे मुझे मंदिर ले जाया गया तो मैंने कहा कि मुझे कोई भगवान दिखाई नहीं पड़ते; मुझे तो सिर्फ पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। आपको भगवान दिखाई पड़ते हैं तो आप सिर झुकाएं, मैं झुकाने को तब तक राजी नहीं जब तक मुझे दिखाई न पड़ जाएं। और फिर तब से मैं मंदिर नहीं गया।

वह कब हुआ था? कितनी उमर थी?

बहुत समय की बात हो गई, कोई आठ-नौ साल का था।

और किसी भी चीज में तर्कयुक्तता हो तो ही मुझे उसमें अर्थ मालूम पड़ता था।

हमारे स्कूल में, कंचन भाई, टोपी लगाना लाजिमी था। मैं टोपी लगा कर नहीं गया स्कूल। हाई स्कूल जब गया तो बिना टोपी लगाए गया। वे जो हेड मास्टर थे वे बहुत सख्त थे टोपी के लिए। यह संभव ही नहीं था कि बिना टोपी लगाए कोई स्कूल में प्रविष्ट हो जाए। तो उन्होंने मुझे बुलाया, तो मैंने उनको कहा कि मैं टोपी जरूर लगाऊंगा, एक नहीं दस टोपी इकट्ठी लगाऊंगा, लेकिन वजह मुझे समझा दी जाए कि टोपी लगाने से क्या हित होगा। और नहीं वजह समझाई जाए, तो फिर मुझसे कहना भी नहीं चाहिए आपको यह बात। नहीं तो आप सोच लें और मुझे समझा दें। और जिस दिन भी आप समझाने को राजी हो जाएंगे कि टोपी लगाने के ये फायदे और हित हैं शरीर को, मन को, आत्मा को, किसी को भी, तो मैं लगाने को राजी हूं, नहीं तो मैं लगाने को राजी नहीं। सिर्फ आपका नियम है इसलिए नहीं लगाऊंगा।

तो नहीं लगाई। और उसके लिए मुझे दो महीने बाहर खड़ा रखा उन्होंने--कि तो फिर बाहर खड़े रहो। तो मैं बाहर... पूरे तीन साल पढ़ना है स्कूल तो मैं बाहर खिड़की के खड़े होकर पढ़ लूंगा, लेकिन ऐसी बात के लिए नहीं झुकूंगा जिसके लिए आपके पास कोई तर्क नहीं है।

दो महीने बाद उनको दया आ गई; उन्होंने कहा, मैं हाथ जोड़ता हूं, माफी मांगता हूं, तुम भीतर बैठो और पढ़ो; लगाना हो लगाओ, मत लगाना हो मत लगाओ।

तो एक तो किसी भी चीज के बाबत जब तक मेरी पूरी बुद्धि तृप्त न हो, तब तक मानने का मेरा कोई मन नहीं है, किसी भी बात को।

शाला जीवन में कोई शिक्षक के बारे में आपको कोई ज्यादा दिलचस्पी हो या तो कोई जिस पर सम्मान हो...

नहीं दिखाई पड़ता, नहीं दिखाई पड़ता न, नहीं दिखाई पड़ता।

अच्छा, कालेज जीवन में कुछ घटना...

घटनाएं तो बहुत घटी हैं। अब तेरे मतलब की क्या हैं, यह सवाल है। मुझे तो कालेज से पहले तो इंटरमीडिएट में मुझे रेस्टिकेट कर दिया गया। इंटरमीडिएट में मुझे निकाल दिया गया कालेज से।

कालेज से निकाल दिया गया?

कालेज से निकाल दिया गया। क्योंकि मेरे जो तर्क के प्रोफेसर थे उनकी बर्दाश्त के बाहर हो गई मेरी मौजूदगी भी। वह तर्क का ही विषय था न। तो मुझसे निर्णय पर उनसे तर्क हो जाते। आठ महीने के बाद उन्होंने लिख कर दे दिया कि या तो मैं रहूंगा कालेज में या यह विद्यार्थी रहे, हम दोनों साथ नहीं रह सकते।

क्लास में राजी नहीं आपको रखने के लिए?

नहीं। तो प्रिंसिपल ने मुझे कहा कि भई हम उनको तो छोड़ नहीं सकते, हमारे बीस साल पुराने प्रोफेसर हैं। और प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, अखिल भारतीय ख्याति के आदमी हैं। उनको तो हम छोड़ नहीं सकते। तो मैंने कहा कि मैं जाने को राजी हूं, लेकिन मुझे यह कह दिया जाए कि मेरी गलती क्या है? और जिन चीजों पर मैंने विवाद भी किया, उन चीजों पर भी अगर वे कह दें कि मैं गलत था, तो भी मैं छोड़ने को राजी हूं। लेकिन

जबरदस्ती आप मुझे निकालते हों तो आप पछताएंगे इस बात के लिए कभी न कभी, दुखी होंगे। लेकिन वे घर ही बैठ गए, तीन दिन नहीं आए प्रोफेसर। फिर मुझे उस कालेज से निकाल दिया गया।

मुझे दूसरे कालेज में जगह दी गई तो इस शर्त पर, मुझसे लिखवा लिया गया कि मैं किसी कक्षा में किसी प्रोफेसर से कोई प्रश्न नहीं पूछ सकूंगा।

प्रश्न नहीं पूछूंगा?

तो मेरे जिस दूसरे कालेज में मुझे जगह दी प्रिंसिपल ने उसमें एक शर्त लिखवा कर ली, क्योंकि वह तो सारे नगर में चर्चा हो गई कि निकाल दिए गए हैं और इस वजह से निकाले गए हैं कि तर्कपूर्ण हैं। तो मैंने उनको कहा कि फिर मैं भी एक शर्त पर नाम लिखवा लेता हूं आपके कालेज में कि मैं क्लास में नहीं आऊंगा। क्योंकि अगर मैं पूछ नहीं सकता हूं तो मेरे मौजूद होने की कोई जरूरत भी नहीं है। तो आप मुझे अटेंडेंस देते रहें। तो उन्होंने कहा, यह हो जाएगा। तो मैं दो साल गया नहीं फिर कालेज। क्योंकि जब मैं पूछ ही नहीं सकता तो सुनने की भी कोई जरूरत नहीं है। और जब मैं सुनूंगा तो पूछना बहुत जरूरी हो जाएगा। तो वह उन्होंने दो साल मुझे अटेंडेंस दी, मैं कालेज गया नहीं, अटेंडेंस दी।

और तो बहुत घटनाएं हैं, वह तो सब लंबा सिलसिला था--तर्क का, विवाद का। क्योंकि वह मुझे कोई चीज नहीं ठीक लगती है तो फिर उसको मानना तो बहुत कठिन मामला हो जाता है।

प्रोफेसर बोलते हैं इसलिए मानना...

उस लिए तो मानने का, राजी होने का सवाल ही नहीं उठता।

आपको किसी का जीवन अच्छा लगा हो कालेज में, कोई अध्यापक के साथ जो मानता है कि नहीं आपकी तर्कशक्ति अच्छी है...

हां-हां, मिले न कुछ लोग, कुछ वहां प्रोफेसर थे। एम.ए. में मुझे अच्छे लोग मिले। क्योंकि मैंने जबलपुर छोड़ दिया फिर; क्योंकि जबलपुर में एम.ए. में मुझे फिर जगह नहीं मिल सकती थी। तो उसके लिए मैं सागर यूनिवर्सिटी में एम.ए. किया। वहां चार प्रोफेसर थे मेरे, चारों ही बड़े अदभुत लोग थे, अच्छे लोग थे। वे ही मुझे ले गए।

सागर?

हां। मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में एक अखिल भारतीय काम्पिटीशन में बोलने गया एक विवाद में। वहां मेरे एक जज थे प्रोफेसर। उन्होंने मुझे सौ में से निन्यानबे मार्क दिए। वे सागर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर थे। और उन्होंने मुझे कहा कि तुम सागर आ जाओ। तो मैं सागर गया, उनकी वजह से। सागर में मेरे जो वाइस चांसलर थे, सागर यूनिवर्सिटी के, वे प्रोफेसर मुझे वाइस चांसलर से मिलाने ले गए। और उन्होंने लिख कर दिया वाइस चांसलर को कि ऐसा विद्यार्थी यूनिवर्सिटी में न पहले आया है और न आना संभव है जल्दी, इसलिए आपका मिलना जरूरी है। तो वे मुझे मिलाने ले गए। और उनकी इच्छा थी कि मुझे कोई स्कॉलरशिप और यह सारी व्यवस्था हो जाए। तो उन दिनों मैं खड़ाऊं पहनता था। तो खड़ाऊं देख कर वाइस चांसलर ने मुझसे कहा कि आप खड़ाऊं पहनते हैं? और एम.ए. में पढ़ते हैं और यह लुंगी लगाते हैं?

तो वे जो प्रोफेसर मुझे ले गए थे, उन्होंने कहा, इनका कुछ प्राकृतिक जीवन पर आग्रह है। तो कुछ प्राकृतिक जीवन पर उनसे कुछ विवाद हो गया। वे वाइस चांसलर कुछ विरोधी थे प्राकृतिक जीवन वगैरह की बातों के। कुछ साइंटिफिक माइंड के आदमी के लिए यह सब... । तो वह विवाद इतना हो गया कि वे जो प्रोफेसर मुझे लेकर गए थे वे डरे कि स्कॉलरशिप वगैरह तो दूर हो गई, यह तो मामला बिगड़ जाएगा। तो वे मेरा कपड़ा नीचे से खींचने लगे। तो मैंने उनको वाइस चांसलर को कहा कि ये जो प्रोफेसर मुझे लेकर आए हैं, वे मेरा कपड़ा खींचते हैं नीचे से, वे यह इशारा कर रहे हैं कि अगर मैंने आपसे विवाद किया तो यह स्कॉलरशिप मुझे नहीं मिल सकेगी। लेकिन इतना बुरा आदमी मैं आपको नहीं समझ सकता हूं।

उन्होंने फिर बात ही नहीं की। वह स्कॉलरशिप मुझे लिख कर दी और कहा कि...

वे प्रोफेसर तो बेचारे पसीना-पसीना हो गए। और बाहर आकर बोले कि तुमने मुझे ऐसी मुसीबत में डाल दिया कि जिसका कोई हिसाब नहीं। वे क्या सोचते होंगे!

मैंने कहा, मेरा कह देना जरूरी था। क्योंकि आप कपड़ा खींचे ही जाते हैं, वे विवाद किए ही जाते हैं, अब मैं उसमें बड़ी मुश्किल में पड़ गया कि मैं उनको क्या कहूं।

पर दो वर्ष उन्होंने मुझे जितनी सुविधाएं हो सकती थीं, वाइस चांसलर ने दीं। उन्होंने कहा कि मैं इससे बहुत खुश हुआ कि जब तुम अपने काम से आए हुए थे तब भी तुम विवाद कर सके और जरा भी तुमने विवाद में उदारता नहीं दिखाई कि तुम जरा भी समझौते के लिए राजी हुए होओ। जब कि तुम्हारा काम था, जब कि तुम्हें मेरी खुशामद करनी चाहिए थी। वह तुमने इतनी खुशामद तो बात दूर रही, तुम मुझसे विवाद करने को तैयार हो गए। और तुमने मेरी बातों को ऐसी उससे खंडन किया कि मैं हैरान रह गया! अब मैं तुम्हें सारी व्यवस्था, जब तक मैं हूं यहां... । सारी सुविधा मुझे दी, बहुत सुविधा मुझे दी।

तो ये जो प्रोफेसर मुझे ले गए थे, वे बड़े प्यारे आदमी हैं, बड़े प्यारे आदमी हैं। अभी वे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। अभी मैं गया तो...

उनका नाम?

प्रोफेसर राय, एस.एस.राय। फिलासफी के रीडर हैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में।

और फिर मुझे एक डाक्टर सक्सेना मिले। वे अब हवाई में, अमेरिका में, वहां प्रोफेसर हैं। उन्होंने भी मेरी बड़ी फिकर ली, बड़ी फिकर ली। यहां तक कि परीक्षा का उन्हें विश्वास नहीं रहा कभी कि मैं परीक्षा दूंगा कि नहीं दूंगा। तो यूनिवर्सिटी की परीक्षा हो तो वे मेरे हॉस्टल के बाहर सुबह गाड़ी लेकर खड़े हो जाएंगे सात बजे--साढ़े सात बजे तुम्हें हॉल में छोड़ आऊं, एग्जामिनेशन हॉल में, फिर मैं निश्चिंत हो जाऊं। तो मुझे रोज नियमित, जब परीक्षा हो तो मुझे वे हॉल में छोड़ आएं, तब वे निश्चिंत हों। उनको कहा भी कि आप इतने क्यों घबड़ाते हो? उन्होंने कहा, तुम्हारा कोई भरोसा नहीं। तुम पढ़ रहे हो, यही हैरानी की बात है। तुम परीक्षा दोगे, यह भी मुश्किल की बात है।

तो वे मुझे, दो वर्षों में उन्होंने इतनी फिकर ली मेरी, जिसका कोई हिसाब नहीं।

अच्छा, आप भी अभी आश्रम बनाने के लिए तत्पर हो गए हैं, तो उसका हेतु तो यही है कि मनुष्य को मनुष्य बनाना चाहिए। तो फिर कालेज के अध्यापन में भी वही काम था, तो वह आपने क्यों छोड़ दिया?

इसलिए नहीं छोड़ा कि वह काम बुरा था, इसलिए छोड़ा कि बहुत छोटा काम था, और बड़ा काम मैं कर सकता हूं, तो उसको छोड़ना पड़ा। यानी उसको इसलिए नहीं छोड़ा कि वह बुरा था। मेरी उतनी ही शक्ति से

बहुत बड़ा काम हो सकता है, तो उस शक्ति को छोटे से दस-पंद्रह विद्यार्थियों पर व्यय करना उचित नहीं था। और उन विद्यार्थियों को तो अब भी मैं समय दे ही रहा हूं। मैं इस शर्त पर ही छोड़ा कालेज। उन लड़कों ने मुझसे शर्त ली जो मेरे विद्यार्थी थे--कि जब भी आप जबलपुर होंगे, तो हम जब भी समय चाहेंगे, हमको समय देना ही पड़ेगा। उतना समय मैं उनको पहले भी नहीं दे पाता था जितना अब वे मेरा ले लेते हैं। तो उनकी तो शर्त पर ही छोड़ा। और सवाल तो यह हो गया था कि मैं... अब फिलासफी में कभी दो विद्यार्थी होते हैं, कभी तीन विद्यार्थी होते हैं... तीन विद्यार्थियों के लिए मैं दो साल व्यय करूं, तो यह तो क्रिमिनल वेस्ट हो जाएगा। यह जान कर छोड़ा। वह गलत था इसलिए नहीं छोड़ा। वह काम गलत नहीं था।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बहुत क्रिमिनल वेस्ट हो रहा था न। और मुझे सारे मुल्क में मित्र पीछे पड़ गए थे कि आप क्या कर रहे हो? इस मजबूरी में! यानी वह मुझे बुरा था इसलिए नहीं छोड़ा है।

अच्छा, और अब आश्रम जो बनाना चाहते हैं, तो मुझे लगता है कि--जैसा आप भी बोलते हैं, ऐसे भारत में आश्रम तो बहुत ही हैं--उसमें एक ज्यादा हो जाएगा, ऐसा तो नहीं हो जाएगा न!

नहीं, ऐसा आश्रम है ही नहीं।

वह तो सब ऐसा ही पहले बोलते हैं कि हमारा आश्रम अलग है।

न-न, मेरी विचार-दृष्टि को समझोगी...

आपकी विचार-दृष्टि समझती हूं। मगर इसके लिए ही यह प्रश्न पूछ रही हूं कि जरा मुझे ऐसा लगता है कि जो आप सिखाते हैं कि आश्रम नहीं होना चाहिए। ऐसा भी आप लेक्चर से मनुष्य को मनुष्य बना सकते हैं। तो फिर आश्रम की क्या जरूरत है?

न-न। आश्रम का मतलब ही क्या होता है? आश्रम का मतलब ही क्या होता है? पहली तो बात यह है कि आश्रम का मतलब केवल, मेरी दृष्टि में, इतना ही है कि एक केंद्र हो जहां लोग मेरे निकट ज्यादा देर तक रह सकें। लेक्चर में तुम मेरे पास घंटे भर होती हो, और तब भी मेरा व्यक्तिगत तुम से कोई संपर्क नहीं हो पाता। अगर तुम्हें मेरी बात ठीक लगती है, प्रीतिकर लगती है और तुम ज्यादा सान्निध्य और ज्यादा निकटता चाहती हो, तो कहीं तो कोई जगह होनी चाहिए जहां बैठ कर मैं तुम्हें ज्यादा निकटता दे सकूं।

अब मुल्क भर से सैकड़ों पत्र पहुंचते हैं कि हम आपके पास महीना भर रहना चाहते हैं, हम दो महीना रहना चाहते हैं, हम तीन महीना रहना चाहते हैं, ताकि हम पूरी चीज को पूरी तरह से जीवन में उतार सकें। अब मेरे पास कोई सुविधा नहीं है कि मैं उनको कहां तीन महीने रखूं।

तो आश्रम का मेरे लिए कोई और मतलब नहीं है। आश्रम का जैसा अर्थ है इस मुल्क में, वैसा कोई अर्थ नहीं है। मेरे लिए तो वह एक शिक्षण केंद्र होगा, जहां कुछ लोग मेरे पास आकर रह सकेंगे, जा सकेंगे। और

परिपूर्णता से रह सकेंगे। और उनकी चौबीस घंटे की चर्या के बाबत मैं उनसे विचार कर सकूं और उनको सलाह दे सकूं, उनकी भूल-चूक को सुधार सकूं। इस सारी दृष्टि से।

फिर, जैसे और आश्रम हैं वैसा यह आश्रम होता तो मैं खुद भी राजी नहीं होता कि यह संख्या बढ़ाने से कोई भी फायदा नहीं है। यह बहुत ही भिन्न होगा! शायद उन आश्रमों के बिल्कुल विपरीत ही होगी इसकी पूरी चर्या और पूरी जीवन-दृष्टि। और यहां से निर्मित जो व्यक्ति होगा वह जीवन-विरोधी नहीं होगा। वे सभी आश्रम जीवन-विरोधी दृष्टि निर्मित करते हैं। यहां से तो हम जीवन को कितने रस से और कितने आनंद से जी सकें, इसकी कला सिखाने की मेरी दृष्टि है। और उन सारे आश्रमों की दृष्टि यह है कि जीवन असार है, यह समझाया जा सके। वे जीवन विरोधी हैं। तो लाइफ निगेटिव है उनकी एप्रोच। और अभी इस मुल्क में तो, या इस मुल्क के बाहर भी, जीवन को कैसे परिपूर्णता और आनंद से जीया जा सके, इस बाबत कोई केंद्र नहीं है। यानी मुझे न तो सौंदर्य से विरोध है, न स्त्री से विरोध है, न प्रेम से विरोध है, न संसार से विरोध है, न गृहस्थी से विरोध है। तो अब तक जीवन के समर्थन में कोई भी आश्रम नहीं है पृथ्वी पर, सब जीवन के विरोध में हैं। तो जो जीवन से निराश और दीन-हीन लोग हैं और मृत्यु के करीब पहुंच गए, उनका आयोजन है वहां। और मैं तो युवकों के लिए सारी व्यवस्था करना चाहता हूं कि वे जीवन को जीने के बाबत सोच सकते हैं। इसलिए बात बिल्कुल भिन्न होने वाली है।

ठीक कहती हो तुम कि सभी यही कहते हैं कि बात भिन्न होने वाली है।

शांति निकेतन जैसा होगा?

शांति निकेतन और तरह की बात थी। शांति निकेतन की दृष्टि और ही थी। शांति निकेतन की दृष्टि एक पूरे जीवन को परिवर्तित करने की नहीं थी, बल्कि शिक्षा के मार्ग को ही पूरा परिवर्तित करने की थी। मेरा पूरे ही जीवन को परिवर्तित करने का विचार है। उसमें शिक्षा एक हिस्सा होगी। रवींद्रनाथ की नजर में शिक्षा ही सब कुछ थी वहां। तो इतना बहुत बड़ा फर्क है। और शिक्षा सब कुछ थी इसलिए मामला बिगड़ा। क्योंकि आज नई शिक्षा गवर्नमेंट के हाथ में चली गई। और जब यूनिवर्सिटी बड़ी हो गई तो वह सेंट्रल यूनिवर्सिटी हो गई।

यह शिक्षा ही नहीं है सिर्फ--इसमें खाना, पीना, कपड़ा, शरीर, सारे बाबत, पूरे जीवन के बाबत। शिक्षा उसमें एक बहुत छोटा सा हिस्सा है। यानी मेरी दृष्टि में शिक्षा इतनी महत्वपूर्ण ही नहीं है कि वह पूरे के पूरे जीवन को घेर ले। बल्कि मुझे तो यही लगता है कि एक आदमी अशिक्षित रह जाए तो हर्जा नहीं है। अगर उसका और सब तरह से जीवन समृद्ध हो जाए, तो अशिक्षित होने से कोई बड़ा फर्क नहीं पड़ता। तो मैं कोई उसके बहुत पक्ष में नहीं हूं। सिर्फ इंटलेक्चुअल ट्रेनिंग की मेरी कोई दृष्टि नहीं है। वह तो, इसीलिए तो जब वह पूरा साफ होगा, जब मैं बनाना शुरू करूं तो पूरी बात साफ हो सके कि वहां क्या हो सकता है और वह कितना भिन्न है। और भिन्नता तो तुम्हें तब पता चलेगी जब सारे आश्रम उस आश्रम के विरोध में खड़े दिखाई पड़ेंगे। तब तुम्हें समझ में आ जाएगा कि यह उनमें से एक नहीं है। यह उनसे बिल्कुल ही भिन्न मामला है। अभी मुझे भी लोग सोचते हैं कि मैं भी और साधुओं में से एक साधु हूं। लेकिन जब मेरे खिलाफ साधु खड़े होते जा रहे हैं तो पता चलने लगेगा कि मैं उनमें से एक नहीं हूं।

वह बात बराबर है, मगर आश्रम से मुझे ऐसा लगता है कि...

ठीक बात है। सोचना ठीक है। ख्याल में आता है।

... आप खड़े हैं तब अच्छा है, मगर बाद में भी वही बात हो जाएगी तो?

बाद के लिए चिंता नहीं करनी चाहिए। इसलिए क्योंकि मेरा ख्याल यह है कि मेरे साथ ही सब चीजें तोड़ देनी हैं। तोड़ देनी हैं, उनको नहीं आगे ले जाना चाहिए। मेरा ख्याल है कि आदमी मरते हैं, उसी तरह संस्थाओं को भी मरना चाहिए। नहीं तो संस्थाएं बोझ हो जाती हैं।

और आपके निकट जो रहता है उस पर आपका असर तो होगा ही। आप बोलते हैं कि किसी का किसी पर असर नहीं होना चाहिए। तो आपके पास रहने का क्या उपयोग है? क्यों रहे?

हां, अगर इस बात को, मेरे पास रहने से अगर यह बात सीखने में आ जाए उसे--कि किसी के भी असर से मुक्त होने की कला क्या है, विद्या क्या है, ताकि उसके भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो सके--तो उपयोग हो गया। और यह मेरा असर नहीं हुआ। यह मेरा असर नहीं हुआ। मेरे जैसा बन जाए वह, मैं जैसा रहता हूं वैसा रहने लगे, मैं जो कहता हूं वैसा कहने लगे, तो मानना एक झूठा आदमी पैदा हो गया। नहीं लेकिन, जो उसके भीतर छिपा है, वह उसे प्रकट करने के लिए जितनी हिंडरेंसेस हो रही हैं उन सबको अलग कर दे, उसमें एक हिंडरेंस मैं भी हो सकता हूं, वह उसको भी अलग कर दे, तो उसके भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो सके।

तो वहां आश्रम की ज्यादा से ज्यादा फिकर पाजिटिव कम और निगेटिव ज्यादा होगी कि हम जितनी बाधाएं हैं जीवन की, उनको अलग कर दें, ताकि भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो जाए। एक रास्ता यह होता है कि बाहर कोई है उसको हम कापी कर लें--हम गांधी बन जाएं या फलां बन जाएं, वैसे बन जाएं। वह मेरी दृष्टि नहीं है। इसलिए मुझे कई मित्र कहते हैं कि मेरे साथ जो हैं वे मेरे जैसे होने चाहिए। मैंने कहा, यह तो सवाल ही नहीं है। वे अपने जैसे होने चाहिए। मेरी नकल में खड़े होने का कोई सवाल नहीं है।

वह बुद्धि से माना जाता है, मगर मुझे लगता है कि आपके पास आएंगे तो उनके ऊपर असर पूरी होगी। नहीं होगी, ऐसा कैसे हो सकता है?

न हो, इसके मेरे प्रयास होंगे। इसके मेरे प्रयास होंगे कि न हो। और होगी, तो यह उनकी भूल होगी। अब इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह उन्होंने कुछ लिखा है कृष्णमूर्ति और मेरी तुलना में। तो एक तो यही बात गलत है कि तुलना की जाए और फिर उन्होंने जो कुछ मतलब निकाल लिया मेरी बातों का आखिर में, वह भी बड़ा फिजूल और अजीब सा निकाल लिया है। और कहीं के अप्रासंगिक वचन चुन कर और उनमें से कुछ भी गोल-मोल किया है। इसको थोड़ा देख जाना। इसको थोड़ा देख जाओ और तुम्हें लगे कि इसका कोई उत्तर लिखना जरूरी है, तो इसका उत्तर लिखो। तो ये अभी कृष्णमूर्ति इधर आते हैं, तो उस वक्त ये दोनों पब्लिश करके उनके वर्गों में बांट देने का है। ताकि उनके जो तीन हजार लोग हैं वे थोड़ा मुझसे परिचित हो सकें और थोड़ा संपर्क उनसे पैदा हो सके। तो उस ख्याल से, यह एक जाएगा, यह भी जाना जरूरी है, तो यह भी एक जाएगा और उसके साथ ही तेरा एक लिखा हुआ लेख हो, ये दोनों इकट्ठे पब्लिश करके बांट देने हैं। सिर्फ इस ख्याल से कि वे जो कृष्णमूर्ति को प्रेम करने वाले लोग हैं वे मुझसे थोड़ा परिचित हो सकें। क्योंकि बात बहुत जोर से उनके भीतर चलनी शुरू हुई है और उसका यह फल हुआ है। तो उसका यह फल हुआ है कि ये लोग डर गए मालूम होता है कुछ। और उसके बचाव के लिए यह सारा मामला कर रहे हैं। तो इसको जरा देख लेना। और तुम्हें लगे तो एक इसका आंसर

लिखो और इसके साथ दोनों को छाप कर बांट देने का है। और प्रयोजन कुल इतना है कि उसमें जो उनका बड़ा वर्ग है उनके मित्रों का, उस तक मेरा नाम तो पहुंचता है, लेकिन उससे कुछ परिचय नहीं बन रहा है। परिचित होना उस वर्ग का जरूरी है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, कुछ लोग तो आए हैं। जो लोग आए हैं वे तो परिचित होना शुरू हुए हैं। लेकिन जो नहीं आ पाए हैं अभी, उन तक खबर भी पहुंचे सिर्फ, इसलिए इसमें दो काम करने हैं...

अननेसेसरी विरोध होता है।

अननेसेसरी है यह, अननेसेसरी है।

उसमें क्या है कि एक ही पब्लिश होता है तो अननेसेसरी विरोध होता है। अगर दोनों पब्लिश होते हैं देन वी आर आल मूविंग इन दि सेम चैनल।

वह छापने के लिए बच्चू भाई को दिया, लेकिन बच्चू भाई फिर मुझसे परिचित हैं। तो बच्चू भाई ने कहा कि यह तो छापने का काम उनको नहीं लगता। वह फिर अपने किशन सिंह चावला को दिखाया होगा। तो उन्होंने कहा, यह बेवकूफी है, इसको छापना मत। तो उन्होंने इधर इनको दे दिया। तो मैंने कहा, इसको देख कर और इसका अगर उत्तर बनता हो, तो दोनों इकट्ठे छापो। और दोनों इकट्ठे, उनकी मीटिंग बैठती है, उसमें बांट दो। और उसमें दूसरा काम यह कि उसके पीछे सारे साहित्य की एक लिस्ट...

लेकिन किशन सिंह वुड बी मोर एप्रोप्रिएट परसन फॉर इट।

कौन? कौन?

किशन सिंह जी।

न, तू देख। नाम सवाल नहीं है। वह तू देख, तुझे लिखने का ख्याल में बने तो एक लिख डाल। उसका कोई सवाल नहीं है; नाम किसका जाता है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। समझे न?

वे कह रहे थे आपके साथ इन्होंने काफी समय गुजारा, किशन सिंह जी ने, वह अहमदाबाद में।

हां-हां अहमदाबाद में। फिर अभी तीन दिन मैं उनके घर ही था बड़ौदा में।

अच्छा, कल मुझे एक बात नहीं जंची।

क्या, बोल!

भूला जी भाई ने जो कहा है कि जो लोग कुछ खास रकम देंगे उनका नाम सिल पर लिखा जाएगा, उनके नाम की बोर्ड लगने वाली है। तो मेरे ख्याल में, जहां पर अहंकार का उन्मूलन ही सिखाना है उसकी नींव में ही यह अहंकार को दृढ़ करने की बात क्यों? क्योंकि नींव में वह डाली जाती है, मेरे ख्याल से। आपने कल जैसे कहा कि आप पैसे देंगे तो मैं धन्यवाद नहीं मानूंगा। उसी तरह उनको भी कहना चाहिए कि जो कोई कोई भी रकम देगा उसका नाम तो कहीं जाएगा ही नहीं, क्योंकि यह नाम के लिए नहीं देना है। क्योंकि नाम देना एक रूप से अहंकार को चलाना ही है। इसलिए अपने नाम की...

लेकिन मेरा बल है न यह तो। उनका बल इतना नहीं है। मेरे और मेरे साथ काम करने वाले लोगों के बल में फर्क है। तो उनका बल धीरे-धीरे बढ़ाना है। जरा ख्याल उनको देंगे, जरा ख्याल उनको देंगे।

क्योंकि एक सच्ची बात से ही शुरू करनी है, तो बिल्कुल बेस से ही, कि उसमें कोई गलत बात न आ जाए।

सही बात है।

आप तो अभी जबलपुर जाने वाले हैं?

हां, आज जबलपुर जाता हूं।

तो तू देख ले उसको, पहली बात। फिर तेरे को लिखने जैसा लगे तो लिख डाल। हां, उसे लिख डाल। और फिर वह परिचय के ख्याल से कि ताकि उनके मित्र भी परिचित हो सकें और मुझसे संपर्क साध सकें।

साहित्य के बारे में दो बातें की हैं। एक तो संकलन करके एक प्रेस के लिए निकालें। और दूसरा, आपकी जो फिलासफी है, आपका जो चिंतन है, उसकी एक पुस्तक हो। और कुछ ट्रांसलेशंस शायद बाकी हों तो...

हां, कुछ ट्रांसलेशंस बाकी हैं।

ये तो तीनों उपयोगी हैं, कि एक तो पूरी फिलासफी पर एक इकट्ठा संकलन हो। एक ही किताब पढ़ने से पूरी दृष्टि ख्याल में आ जाए। और ये मधु प्रेस के लिए भी निकाल लेगी। और साथ ही सारी किताबों के लिए पूरे मुल्क में बड़ी मांग है, तो वह अंग्रेजी में भी पहुंच सके कुछ अनुवाद। तीनों ही तरह से उपयोगी होगा।

अभी एक मित्र ने एक अनुवाद किया था, लेकिन वह मुझे पसंद नहीं पड़ा। साधना-पथ का एक अनुवाद किया था एक मित्र ने, वह अच्छा नहीं हुआ है। एक तो वह कुछ, जैसा ओरिएंटल जो स्कॉलर्स होते हैं, उस ढंग का उन्होंने कर दिया, जैसे पुरानी किताबों का अनुवाद करते हैं--पुराण का और पुरानी किताबों का, तो वह थोड़ी पुराने ढंग की अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया। वह ठीक नहीं मालूम हुआ। फिर कुछ उसमें बड़ी बुनियादी भूलें कर दीं उन्होंने, कई जगह वह उलटा ही मतलब हो गया। तो वह अनुवाद रोक ही दिया, फिर उसको बिकने नहीं दिया। लेकिन फिर भी वह कुछ जगह तो पहुंच ही गई वह किताब।

वह आपको पहले दिखाई नहीं गई?

मुझे इतनी मुश्किल हो गई है देखने की, इतनी फुर्सत नहीं मुझे मिल पाती है। क्योंकि मैं दिन-रात सफर में हूं।

फिर भी वह प्रिंट में जाने के पहले यह जरूरी है कि आप एक नजर देख लें।

हां, थोड़ा सा एक हिस्सा उन्होंने भेजा था, कोई आठ-दस पन्ने भेजे थे। वह हुआ क्या कि आठ-दस पन्ने उन्होंने मुझे भेजे थे शुरू के, वे ठीक थे। और वह मैं देख कर उनको भेज दिया था। फिर पीछे क्या हुआ कि जिन्होंने आठ-दस पन्ने किए थे वह सज्जन ने काम नहीं किया आगे, तो उन्होंने किसी दूसरे से करवा लिया। तो वह सब गड़बड़ हो गया। लेकिन अब वह... तो आप कोई देखें थोड़ा सा, उसको करें, तो बड़ा अच्छा होगा।

कोशिश करूंगा मैं।

हां-हां, जरूर करें।

एक-दो किताबें और मेरे पास हैं, मेरी खुद की हैं, वे अभी चल रही हैं। प्रिंट में हैं अभी। थोड़ा सा मैनेजमेंट करना है। उसके बाद इसको मैं जरूर करूंगा।

हां। आप जरा देखेंगे। सब साहित्य आपको पहुंचा देंगे। एक नजर डाल लें।

सेट भी देख लेंगे और जो ट्रांसलेशन हुआ है वह भी देख लेंगे।

तो एक नजर डाल लें, बाकी वह आपको आनंदपूर्ण मालूम पड़े तभी अनुवाद करने में भी मजा हो सकता है।

मैं यह सोचता हूं कि अनुवाद ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह अनुवाद जैसा लगे।

नहीं होना चाहिए। बिल्कुल ठीक है। नहीं तो मजा ही चला गया पूरी बात का।

तात्पर्य जो है वह बराबर आ जाए, और जैसे आप इंग्लिश में बोलें तो जैसी भाषा हो, वैसा अनुवाद होना चाहिए।

बस-बस, वही है। वही ठीक है।

ट्रांसलेशन अगर ऐसा हो कि वह ट्रांसलेशन जैसा लगे, तो पढ़ने वाले को कोई मजा नहीं आता।

नहीं आता।

इसलिए अच्छा होगा कि अनुवाद करने वाले आपका साहित्य पढ़ें, आपको सुनें...

हां, यहां बहुत टेप हैं, कुछ टेप आप सुनें...

एक तो फिलासाफिकल एक्सपोजीशन के ढंग से, यानी आप क्या कहना चाहते हैं, और उसके लिए क्या तर्क हैं, उस ढंग से अगर कोई कर सके, तो फॉरेन कंट्रीज में भी बहुत प्रभावी हो सकती है, क्योंकि वे विश्लेषण ज्यादा पसंद करते हैं।

वह आप जरा देख जाएं एक बार और फिर इन दोनों-तीनों तरह से सोचें कि कैसा हो सकता है। पर बड़ी जरूरत हो गई है।

डिमांड बहुत हो गई है और अंग्रेजी में अभी एक ही पुस्तक है। तो हमारी प्रॉब्लम यह हो जाती है कि यह किताब देते हैं तो फिर वे आगे और मांगते हैं। तो डिमांड को किस प्रकार फुलफिल कर सकते हैं, इस दृष्टिकोण से काम जरूरी है।

आप भी कुछ करिए!

हां, जरूर। आपने जो बोला, हम लोगों को सबको बहुत अच्छा लगा। और उसी से जो किताब भी लिखी है, उसमें जो सुंदर-सुंदर वाक्य कहते हैं कि जो पढ़ने वाले औरतें, बच्चे, सबको अच्छी लगी वह किताब। पढ़े तो फिर उसको पूरी पढ़ कर ही छोड़े, कि इसको पूरी करनी ही चाहिए। बहुत अच्छी लगी किताब। सब स्टूडेंट पढ़ रहे हैं। कोई छोड़ता ही नहीं है। अभी कालेज में जाकर आई हूं।

अच्छी बात है। तो आप भी थोड़ी कुछ फिकर करिए, हिंदी में कुछ लिखिए। अब जैसे कल महिलाओं के बीच जो मैं बोला हूं, उस पर आप कुछ लेख लिखिए, तो वह उपयोगी होगा हिंदी में। वह यहां की किसी अच्छी मैगजीन में भेजिए। और पुस्तक के रूप में भी छप सकता है। गुजराती में तो ये कर रहे हैं, हिंदी में आप थोड़ी फिकर करिए।

हां, बोलो।

अंतिम ध्येय तक पहुंचने के लिए क्या ध्यान से शुरू करना जरूरी है?

बस, ध्यान से शुरू करना जरूरी है।

तो ध्यान कैसे करना?

वह तो तुम जब किसी शिविर में आ जाओ तीन दिन के लिए जहां मैं ध्यान ही सिखाता हूं तीन दिन तक।

वह किधर शिविर होगा?

अभी आजोल में एक शिविर है, अहमदाबाद के पास। तीन दिन के लिए आजोल आ जाओ या इंदौर में शिविर है इसके बाद, वहां आ जाओ। तो तीन दिन मैं तुम्हें... फिर पूरी प्रक्रिया मेरे साथ करोगे तो ख्याल में आ जाए। बिल्कुल आ जाए, बिल्कुल आ जाए।

(टाइम्स के रिपोर्टर के साथ बातचीत)

आपका जन्म कहां हुआ?

मेरा जन्म गाडरवारा, मध्यप्रदेश में हुआ।

किस वर्ष में?

उन्नीस सौ इकतीस।

आप कितने भाई हैं?

छह भाई।

क्या आप सबसे बड़े हैं?

सबसे बड़ा हूं।

बहनें?

चार बहनें।

आपके पिता क्या करते थे?

वे कपड़े के व्यापारी हैं।

आपकी शिक्षा-दीक्षा?

एम.ए.।

किस यूनिवर्सिटी से?

सागर यूनिवर्सिटी।

आपने किस विषय में एम.ए.किया?

फिलासफी।

अध्यात्म की अंतःप्रेरणा आपको कब अनुभव हुई? किस उम्र में?

यह हमेशा से मेरे अंदर थी। मुझे याद नहीं पड़ता कि कब पहली बार मुझे यह अनुभव हुई हो। यह हमेशा से मेरे साथ थी।

तो एम.ए. करने तक आप अपने परिवार वगैरह के साथ रहे और फिर आपने संसार छोड़ने का निर्णय लिया।

नहीं, मैंने संसार नहीं छोड़ा है। मैं कुछ भी छोड़ने के पक्ष में नहीं हूं।

जैसे विनोबा भावे को लें। उन्होंने संसार छोड़ दिया। उनके पास कुछ भी नहीं है, एक कौड़ी भी नहीं। जैसे गांधीजी। वे कोई संन्यासी नहीं हैं।

मैं संसार छोड़ने में भरोसा नहीं करता। और मेरा दृष्टिकोण लाइफ अफर्मेटिव है, जीवन विधायक है।

लाइफ अफर्मेटिव, जीवन विधायक दृष्टिकोण से आपका क्या मतलब है?

जैसा धर्म आज तक रहा है जीवन-निषेध का रहा है--जीवन का त्याग, जीवन की निंदा, जीवन असार है और जीवन के पार के लक्ष्य की खोज।

क्या जीवन के पार कोई लक्ष्य है?

नहीं! जीवन स्वयं लक्ष्य है। उसके पार कुछ भी नहीं है। तो जीवन को उसकी संपूर्णता और परिपूर्णता में जीना ही, मेरे देखे, धार्मिक होना है। जीवन ही प्रभु है। और जीवन के रहस्यों को जान लेना ही उपलब्धि का मार्ग है।
कैसी उपलब्धि? जब जीवन के पार कुछ है ही नहीं, तो आप क्या उपलब्ध करते हैं?

हम जीवन उपलब्ध करते हैं--उसकी संपूर्णता में, उसकी अखंडता में।

हम जब मरते हैं तो क्या होता है?

कोई मरता नहीं।

मृत्यु नहीं है?

मृत्यु नहीं है! मृत्यु एक झूठ है, एक भ्रांति।

लेकिन आदमी मरता तो है। कि नहीं मरता?

जीवन रूप बदलता है।

क्या आप विश्वास करते हैं कि जीवन में हर चीज अपने अंत पर पहुंचती है?

न कहीं कोई शुरुआत है, न कहीं कोई अंत। हर चीज है। लेकिन जीवन रूप बदलता है, नये रूपों में प्रकट होता है। यह बदलाहट ही मृत्यु का भ्रम निर्मित करती है।

चाहे यह भ्रम हो या न हो, हम जीवन में एक दिन अंत पर पहुंचते ही हैं। एक वृक्ष कुछ समय बाद मर जाता है। पशु मरते हैं; पक्षी मरते हैं। उसी प्रकार एक मनुष्य भी मरता है। शरीर के तल पर हम सब समाप्त होते हैं।

एक वृक्ष मरता है, लेकिन यह वृक्ष की भीतर से प्रतीति नहीं है।

लेकिन वृक्ष में भी जीवन है।

वृक्ष में जीवन है। हर चीज में जीवन है। दूसरों को यह मृत्यु जैसी लगती है। तुमने दूसरों को मरते देखा है, स्वयं को कभी मरते नहीं देखा। किसी ने मृत्यु को स्वयं में घटते नहीं देखा है। हमेशा दूसरा मरता है। जीवन रूप बदलता है। दूसरों को ऐसा लगता है कि कुछ मर गया। कुछ मर सकता नहीं। सब कुछ है।

क्या आप दूसरे शब्दों में यह कहना चाहते हैं कि केवल शरीर मरता है, जो भीतर है वह नहीं मरता?

रूप बदलता है।

लेकिन शरीर मरता है--मानव शरीर! क्या आप इसे स्वीकार करते हैं?

केवल रूप बदलता है।

आप उसे क्या कहते हैं? हम उसे आत्मा कहते हैं।

तुम उसे आत्मा कह सकते हो।

एक बार इस शरीर के मर जाने के बाद क्या आत्मा के साथ पुनः संयुक्त होने की कोई संभावना है?

कोई संभावना नहीं है। क्योंकि कुछ भी दोहरता नहीं। सब कुछ हमेशा नया और ताजा है।

आपने इस पैम्फलेट में कहा है कि अध्यात्म या धर्म में नये प्राण फूंकने की जरूरत है। तो नये प्राण फूंकने से आपका क्या मतलब है? क्या भारत में धर्म में कुछ गलत है?

सब कुछ गलत है।

लेकिन भारत में इतने धर्म हैं! अगर आप कहते हैं धर्म, तो मेरा अलग धर्म है, किसी और का कोई और...

धर्म, जो हम समझते हैं।

तो सब कुछ गलत है...

धर्म की जो धारणा रही है वह पूरी गलत है।

भारत में?

सब जगह!

नहीं, हम विदेश के बाबत तो कुछ नहीं कह सकते।

देशी-विदेशी का सवाल नहीं है। जैसा धर्म अभी तक सारी दुनिया में अस्तित्व में है। बुद्धिज्म, हिंदूइज्म, क्रिश्चिएनिटी और इस्लाम का सवाल नहीं है, धर्म जैसा आज तक रहा है--एक संगठन की तरह, एक चर्च की तरह, एक क्रियाकांड की तरह--वह गलत है। क्योंकि, मेरे देखे, धर्म नितांत वैयक्तिक है। धर्म का कोई संगठन नहीं हो सकता है।

तो दुनिया में कोई संगठित धर्म नहीं हो सकता?

संगठित धर्म नहीं हो सकता। जैसे ही संगठित होता है, गलत हो जाता है। गलत होने से मेरा वही मतलब है। वह राजनीति हो जाती है। तो ये नाम--इस्लाम, हिंदू, क्रिश्चिएनिटी, जैन, बौद्ध--ये नाम, ये मत धार्मिक नहीं हैं, ये सब राजनैतिक हैं। धर्म बहुत नहीं हो सकते, जैसे साइंस बहुत नहीं हो सकती।

केवल एक?

केवल एक! क्योंकि सत्य एक है और यूनिवर्सल है।

दूसरे शब्दों में--हर धर्म में सत्य तो एक है, सत्य की उपलब्धि के ढंग या मार्ग भिन्न हैं। मेरी समझ से धर्म मार्ग हैं।

नहीं! सत्य की उपलब्धि भिन्न-भिन्न मार्गों से नहीं होती। उसका एक ही मार्ग है, और वह है ध्यान--जो कि निर्विचार और सजगता को उपलब्ध करना है।

लेकिन ऐसा तो नहीं है कि धर्म ध्यान नहीं सिखाता। उसमें ध्यान आता है, उपवास आता है, आत्मत्याग आता है। धर्म और अध्यात्म एक ही बात है। आत्मदमन के बिना, गलत कर्मों की शुद्धि के बिना यह कैसे संभव है?

गलत कर्मों को तुम पोंछ नहीं सकते।

लेकिन मनुष्य गलत कर्म करता है।

मनुष्य गलत कर्म करता है।

और उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि उसे परमात्मा ने बनाया है। क्या परमात्मा ने हमें बनाया है या कोई परमात्मा नहीं है?

बनाने वाला बनाए जाने वाले से पृथक नहीं है।

यह मैं जानता हूं। अगर दोनों में कोई अंतर नहीं है, तो हम बनाने वाले के साथ एक हैं, जिसने हमें बनाया है।

नहीं-नहीं। कोई बनाने वाला नहीं है।

हमें किसी ने नहीं बनाया?

हमें किसी ने नहीं बनाया। सृष्टि से पृथक और पार कोई स्रष्टा नहीं है।

मैं इसी बिंदु पर आ रहा हूं। यह असली बात है। मैं पूछता हूंः क्या हमें बनाने वाला कोई है? क्या ईश्वर है?

नहीं! नहीं!

कोई ईश्वर नहीं है?

नहीं! स्रष्टा की तरह कोई ईश्वर नहीं है।

और तो कोई स्रष्टा नहीं हो सकता!

यह पूरी सृजन की ऊर्जा--मेरी दृष्टि में परमात्मा का अर्थ है समग्र सृजनात्मकता।

मैं सृजनात्मकता की बात नहीं कर रहा, मैं सृष्टि की बात कर रहा हूं।

न कोई सृष्टि है, न कोई स्रष्टा है, केवल सृजनात्मकता है, सृजन की ऊर्जा है।

बहुत-बहुत धन्यवाद!

नौवां प्रवचन

धर्म की एक सामूहिक दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन्!

इस देश के दुर्भाग्य की कथा बहुत लंबी है। समाज का जीवन, समाज की चेतना इतनी कुरूप, इतनी विकृत और विक्षिप्त हो गई है जिसका कोई हिसाब बताना भी कठिन है। और ऐसा भी मालूम पड़ता है कि हमारी संवेदनशीलता भी कम हो गई है, यह कुरूपता हमें दिखाई भी नहीं पड़ती। जीवन की यह विकृति भी हमें अनुभव नहीं होती। और आदमी रोज-रोज आदमियत खोता चला जाता है, उसका भी हमें कोई दर्शन नहीं होता।

ऐसा हो जाता है। लंबे समय तक किसी चीज से परिचित रहने पर मन उसके अनुभव करने की क्षमता, सेंसिटिविटी खो देता है। बल्कि उलटा भी हो जाता है; यह भी हो जाता है कि जिस चीज के हम आदी हो जाते हैं वह तो हमें दिखाई नहीं पड़ती, ठीक चीज हमें दिखाई पड़े तो वह भी हमें दिखाई पड़नी मुश्किल हो जाती है।

एक मछली बेचने वाला आदमी एक सुगंधियों के बाजार से गुजरता था। उसे मछलियों की बास की आदत थी, सुगंध का कोई अनुभव न था। जैसे ही उसको सुगंध आनी शुरू हुई, उसने कपड़े से अपनी नाक बंद कर ली; सोचा कि बड़ी तकलीफ है, यहां कैसी दुर्गंध चली आती है! वह बाजार तो सुगंध का था। वह तो उस देश की सबसे कीमती से कीमती सुगंध, परफ्यूम वहां बिकती थीं। जैसे-जैसे बाजार के भीतर चला, उसके प्राण छटपटाने लगे। फिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा। दुकानदार दौड़ कर आ गए। उन्होंने सोचा कि शायद थक गया है, गर्मी से पीड़ित है। तो उन्होंने अच्छी सुगंधियां लाकर उसे सुंघानी शुरू कीं कि शायद होश आ जाए। अब उन बेचारों को पता भी नहीं कि वह सुगंध से ही पीड़ित होकर बेहोश हो गया है। जैसे वे उसे सुगंध सुंघाने लगे, वह और हाथ-पैर छटपटाने लगा। वे और सुगंध सुंघाने लगे।

और तभी वहां से एक दूसरा मछुआ गुजरता था। उसने कहा, ठहर जाओ! उस आदमी के हाथ के झोले को देखते हो? उसकी टोकरी देखते हो? वह कोई मछुआ है, मैं भलीभांति जानता हूं। हटो, हटा लो अपनी सुगंधियों को!

उसने उसकी टोकरी पर, जिसमें वह मछलियां बेच कर लौट रहा था, थोड़ा सा पानी छिड़क दिया और टोकरी उसकी नाक के पास रख दी। उसने आंख खोली और कहा, दिस इ.ज रियल परफ्यूम! यह है सुगंध असली! पागल न मालूम क्या-क्या सुंघा रहे थे मुझे।

समाज की संवेदनशीलता भी इसी तरह मर जाती है।

इस देश में ऐसा हुआ। इस देश में कोई सैकड़ों वर्षों के चिंतन ने मनुष्य को सामूहिक चेतना, सोशल कांशसनेस से बिल्कुल ही तोड़ दिया। हिंदुस्तान की सारी शिक्षाएं व्यक्ति को निपट स्वार्थी बनाती हैं, उसे सामूहिक चेतना का अंग नहीं बनातीं। इस जमीन पर वह आदमी अपने लिए धन कमाता है, अपने लिए मकान बनाता है; परलोक में अपने मोक्ष को खोजता है, अपने स्वर्ग को खोजता है। दूसरे से कोई संबंध नहीं। अगर हिंदुस्तान के शिक्षकों ने यह भी समझाया है कि दूसरों पर दया करो, दूसरों को दुख मत दो, तो उसका भी कारण यह नहीं है कि दूसरों को दुख देना बुरा है। उसका कारण यह है कि दूसरों को तुम दुख दोगे तो नरक चले जाओगे। दूसरों को दुख न दोगे तो स्वर्ग चले जाओगे। बेसिक मोटिव, जो बुनियादी प्रेरणा है वह मैं स्वर्ग कैसे चला जाऊं, मैं मोक्ष कैसे पा लूं, यह है। दूसरे को दुख मत दो, इसमें कोई बुनियादी बुराई नहीं है, बुराई इसमें है कि कहीं मेरा मोक्ष न खो जाए।

हिंदुस्तान ने अहिंसा की इतनी बातें कीं, लेकिन हिंदुस्तान में प्रेम की कोई प्रक्रिया विकसित नहीं हो सकी। इस अहिंसा की शिक्षा में कोई बुनियादी भूल रही होगी। अहिंसा की शिक्षा कहती हैः हिंसा मत करो। क्योंकि हिंसा करने से स्वर्ग खोता है, मोक्ष खोता है; हिंसा करने से पाप लगता है; पाप बंधन में ले जाते हैं।

अहिंसा की शिक्षा यह नहीं कहती कि दूसरे को दुख पहुंचता है, इसका विचार करो; कि दूसरे के प्रति प्रेम करो कि उसको दुख न पहुंच सके। दूसरे का चिंतन नहीं है अहिंसा की शिक्षा में, अपना ही चिंतन है, मेरे ही अहंकार का, मेरे ही स्वार्थ का अंतिम चिंतन है। इसलिए हिंदुस्तान ने सबसे पहले दुनिया में अहिंसा की शिक्षा खोज ली, लेकिन हिंदुस्तान में प्रेम का कोई भी पता नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है! हम इतनी अहिंसा की बात करते हैं, हम से ज्यादा प्रेम-शून्य लोग पृथ्वी पर कहीं भी नहीं हैं। कुछ बात है।

हमारी अहिंसा की शिक्षा भी बुनियाद में मेरे हित पर खड़ी हुई है, दूसरे का कोई चिंतन उसमें नहीं है। अगर हमें पता चल जाए कि दूसरे को कष्ट देने से स्वर्ग जाने में कोई बाधा नहीं पड़ती, तो हम कष्ट देने में फिर कोई परेशानी अनुभव नहीं करेंगे। और अगर हमें यह पता चल जाए कि दूसरे को कष्ट देने से स्वर्ग जाने में सुविधा मिलती है, तो हम पूरी तरह से कष्ट देने को तैयार हो जाएंगे।

मेरा हित, हमारी सांसारिक शिक्षा का भी आधार है, हमारी धार्मिक शिक्षा का भी आधार है। और मेरी दृष्टि में वह व्यक्ति साधना के रास्ते पर आगे बढ़ता है जो "मेरे" के भाव को खोता है और "सब" के, "हम" के भाव को स्वीकार करता है। ईश्वर की तरफ जाने की विधि 'मैं' को छोड़ कर "हम" की तरफ जाने की विधि है।

हम कितने वृहत्तर जीवन के हित और सुख के लिए सोचते हैं... । और यह तो सहज ही घटित हो जाता है कि जो व्यक्ति जितने वृहत्तर जीवन के सुख और हित के लिए सोचता है, उसके अपने दुख तत्क्षण विलीन हो जाते हैं। क्योंकि दुखों की एक बुनियाद सेल्फ कांशसनेस है। दुखों की एक आधारशिला यह है कि मैं अपने प्रति कितना सचेत हूं।

एक सम्राट बीमार पड़ा था। कोई चिकित्सा नहीं हो सकी। मरने के करीब पहुंच गया। सब चिकित्सक हार गए। और तब किसी ने कहा कि दूर इस गांव के बाहर एक संन्यासी है, शायद वह कोई रास्ता बता दे।

उस संन्यासी को लिवा लाया गया। उस संन्यासी ने कहा कि नहीं, मैं रास्ता नहीं बता सकूंगा। रास्ता तो बड़ा सरल है, लेकिन मैं बता नहीं सकूंगा। मुझे क्षमा कर दें।

सम्राट कहने लगा, रास्ता जब सरल है तो बता क्यों नहीं सकेंगे?

उसने कहा, रास्ता तो मैं बता दूंगा, लेकिन... सरल भी है... पर आप कर नहीं पाएंगे, बहुत कठिनाई खड़ी हो जाएगी। लेकिन बच सकते हैं आप, मौत निश्चित नहीं है।

सम्राट ने पैर पकड़ लिए। कहा, रास्ता बता दें।

नहीं!

दरबारी, रानियां, सारी राजधानी हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई कि आप जाएं न, बता दें।

उसने कहा, नहीं आप मानते हैं तो मैं बताए देता हूं। दस हजार बच्चों की गर्दन कटवानी पड़ेंगी और उनके खून से स्नान कराना पड़ेगा, तो सम्राट बच जाएगा। मैं जाता हूं। मैं और कुछ ज्यादा नहीं कह सकता। सम्राट बच सकता है। लेकिन फलां तारीख तक दस हजार बच्चे इकट्ठे कर लें। फलां तारीख को फलां समय उनकी गर्दनें काट दें, ताजे खून से नहला दें, सम्राट बच जाएगा।

छह महीने थे उस तारीख को अभी। सम्राट ने कहा कि नहीं, मैं नहीं बचना चाहता हूं। दस हजार बच्चे काटने पड़ें! और फिर एक अजनबी फकीर, इसकी बात का भरोसा क्या? मैं बचूं या न बचूं, वे दस हजार बच्चे तो कट जाएंगे! फिर मैं बच भी जाऊंगा तो कितने दिन बचूंगा? आखिर मुझे मरना पड़ेगा। फिर मैं तो बूढ़ा हो गया, दस हजार बच्चे, अभी जीवन जिनका शेष है, उन्हें कैसे समाप्त कर दूं? लेकिन परिवार के लोग समझाने

लगे, दरबारी समझाने लगे, राजधानी के बुद्धिमान समझाने लगे कि तुम्हारा एक जीवन दस हजार बच्चों के जीवन से ज्यादा कीमती है। तुम हो तो दस हजार बच्चे नहीं, दस करोड़ बच्चे सुरक्षित हैं इस देश में। तुम जिस दिन नहीं हो उस दिन किसी का भी जीवन सुरक्षित नहीं है। वह इतना प्यारा राजा था, वह इतना बुद्धिमान, वह इतना दया से, करुणा से भरा कि सारे देश ने प्रार्थना की कि दस हजार बच्चों की हम फिकर नहीं करते हैं, हम तुम्हें बचाना चाहते हैं।

मजबूरी में राजा को राजी हो जाना पड़ा। बच्चे इकट्ठे किए जाने लगे। महल छोटे-छोटे खूबसूरत बच्चों से भरने लगा। राजा की नींद समाप्त हो गई। राजा दिन-रात सोचने लगा कि यह मैं क्या करवा रहा हूं? यह क्या होगा? रात-दिन बच्चे ही बच्चे दिखाई पड़ने लगे। दस हजार बच्चे गांव-गांव से आने लगे। और गांव-गांव में लोग भगवान से प्रार्थना करने लगे कि राजा पहले ही ठीक हो जाए, तो बच्चे बच जाएं। कोई गाली देने लगा कि यह राजा कैसा है! यह मर जाए उस तारीख के पहले ही, तो बच्चे बच जाएं। सारे देश में एक ही चिंता, और राजा के प्राणों में एक ही चिंता।

छह महीने पूरे हो गए, वह दिन आ गया। दस हजार बच्चे इकट्ठे हो गए। आज सुबह होते ही, भोर होते ही उनकी गर्दनें काट दी जाएंगी। वह महल के बाहर द्वार पर दस हजार बच्चे पंक्तिबद्ध खड़े कर दिए गए। नंगी तलवारें सूरज की रोशनी में चमकने लगीं। वह राजा नीचे आया। उसने उन बच्चों को एक कतार से देखा एक तरफ। वक्त आ गया, तलवारें उठ गईं और बच्चे काट दिए जाएंगे। तभी वह राजा चिल्लाया कि नहीं! कोई बच्चा नहीं काटा जाएगा! मैं मरने को तैयार हूं।

बच्चे रोक दिए गए। और राजा ठीक हो गया। बड़ी हैरानी हुई कि राजा ठीक कैसे हो गया? राजा की बीमारी खतम हो गई! उस फकीर को बुलवाया गया कि बीमारी कैसे ठीक हो गई? बच्चे तो रोक दिए गए।

उस फकीर ने कहा, कुल एक कारण है--छह महीने तक राजा अपनी बीमारी के संबंध में सोच ही नहीं सका। बच्चे मर जाएंगे, इतने बच्चे मर जाएंगे--एक ही चिंतन! अपने से बाहर चला गया चिंतन, सेल्फ से बाहर चला गया, मैं के बाहर चला गया। वह जो चिंतन मैं पर रुका हुआ था, वही पीड़ा थी, वही कष्ट था, वही दुख था।

एक आदमी सो नहीं पाता है, फिर उसकी बीमारी ठीक नहीं हो पाती। चिकित्सक कहते हैं, इसे नींद आ जाए तो ठीक हो जाए। नींद से बीमारी के ठीक होने का क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। सिर्फ एक संबंध है--नींद में भूल जाता है कि मैं बीमार हूं। और कोई भी संबंध नहीं है। नींद में डिसकंटिन्यूटी हो जाती है इस ख्याल की कि मैं बीमार हूं। मैं के बाहर नींद में आदमी चला जाता है। इसलिए नींद जरूरी है, नहीं तो आदमी पागल हो जाए। मैं तो पागलपन का केंद्र है, वह तो मैडनेस का सीक्रेट है। पागल होना हो तो मैं, और मैं, और मैं...

मैं के बाहर जाना जरूरी है, नहीं तो आदमी पागल हो जाएगा। इसलिए नींद जरूरी है। और जिस मुल्क में नींद कम हो जाएगी वहां शराब जरूरी हो जाएगी, क्योंकि उतनी देर के लिए आदमी भूल सकता है, और कोई रास्ता नहीं है। लेकिन शराब और नींद और बेहोशी वास्तविक चीजें नहीं हैं जिनसे कोई भूल सके, क्योंकि कंटिन्यूटी फिर शुरू हो जाती है। शराब कितनी देर रहेगी? फिर होश आ जाएगा, फिर शुरू हो जाएगा; नींद खुल जाएगी, फिर शुरू हो जाएगा।

लेकिन एक ऐसी आध्यात्मिक प्रक्रिया भी है, उसको प्रेम कहते हैं, उस प्रक्रिया को, कि प्रेम में जो आदमी प्रविष्ट हो जाता है वह मैं के सतत बाहर हो जाता है।

मैं क्यों यह बात कहना चाहता हूं?

यह मैं इसलिए कहना चाहता हूं कि साधक अकेला अगर साधक है, तो अहंकार के बाहर नहीं हो सकेगा, कभी नहीं हो सकेगा। क्योंकि सारी साधना का केंद्र भी उसका मैं है--कि मैं कैसे शांत हो जाऊं? मैं कैसे मुक्त हो जाऊं? मैं कैसे मोक्ष चला जाऊं?

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, मैं कैसे शांत हो जाऊं?

मैं उनसे कहता हूं, तुम्हें इतनी दुनिया अशांत है इसके बीच तुम्हें एक ही ख्याल आ रहा है कि मैं कैसे शांत हो जाऊं? और तुम्हें पूछते शर्म भी नहीं आती?

यह बंबई पूरी की पूरी बीमार पड़ी हो, लोग खाटों पर पड़े हों, एक आदमी स्वस्थ न हो और मैं कहूं कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं, तो मुझे आप क्या कहेंगे? पत्थर या आदमी! ये सारे लोग भूखे हों और मैं कहूं कि मुझे अच्छा भोजन कैसे मिल जाए, तो मुझे आप क्या कहेंगे?

इतने अशांत जीवन के तलों में, इतने रुग्ण समाज में जब एक आदमी पूछने लगता है--मैं कैसे शांत हो जाऊं? मैं कैसे सत्य को पा लूं? मैं कैसे मोक्ष चला जाऊं? निश्चित समझ लेना, न तो यह कभी सत्य पा सकेगा, न कभी शांत हो सकेगा, न इसके लिए कोई मोक्ष हो सकता है कहीं। और अगर ऐसे लोगों के लिए मोक्ष होता हो, तो महावीर, बुद्ध, और कृष्ण, और क्राइस्ट जैसे लोग उस मोक्ष में जाने से पहले ही इनकार कर चुके होंगे। वह उसके भीतर कदम नहीं रखा होगा उन्होंने। ऐसे आदमी जिस मोक्ष में जा सकते हों उस मोक्ष में भले आदमियों के लिए कोई जगह नहीं हो सकती।

एडमंड बर्क से किसी ने पूछा कि तुम तो ईश्वर को नहीं मानते हो, मंदिर में प्रार्थना नहीं करते हो, पूजा नहीं करते हो, तुम्हें कभी धर्मशास्त्र की बात करते नहीं सुना, क्या तुम स्वर्ग जा सकोगे?

एडमंड बर्क ने कहा कि अगर अच्छे लोगों को स्वर्ग में जगह मिलती होगी तो मुझे मिल जाएगी और अगर बुरे लोगों को स्वर्ग में जगह मिलती हो तो मैं वहां जाना भी नहीं चाहूंगा। और उस आदमी ने यह कहा कि मैं तो समझता यह हूं कि जहां दस अच्छे लोग इकट्ठे हो जाएंगे वहां नरक भी होगा तो बहुत दिन तक नरक नहीं रह सकता, वह स्वर्ग बन जाएगा। और जहां दस बुरे लोग इकट्ठे हो जाएंगे वह उसका नाम अगर स्वर्ग भी हो तो तख्ती भर स्वर्ग की रह जाएगी, दस दिन बाद वहां नरक खड़ा हो जाएगा। तो उसने कहा, मैं नहीं कहता कि मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं। मैं वहां जाना चाहता हूं जहां अच्छे लोग हैं, जहां प्रेम करने वाले लोग हैं, मैं वहां जाना चाहता हूं। वहां स्वर्ग होगा।

लेकिन प्रेम करने वाले लोग इस मुल्क में नहीं हैं, इसलिए हमने एक नरक बना लिया है।

मैं जो बातें कह रहा हूं वे साधना के नाम पर, मोक्ष के नाम पर, धर्म के नाम पर जो भी चलता रहा है, उस पूरे को तोड़ने और बदल देने की बातें हैं। एक बड़ी क्रांति लाने का विचार और ख्याल उनमें है--कि हम, मुल्क की चेतना अब तक जिन केंद्रों पर घूमती रही है, उन सारे केंद्रों को बदल दें। क्योंकि उन केंद्रों पर घूमने के कारण यह परिणाम हुआ है जो हमें दिखाई पड़ रहा है। यह परिणाम आकस्मिक नहीं है। एक-एक चीज जुड़ी हुई है।

हिंदुस्तान एक हजार साल तक गुलाम रहा, यह आकस्मिक नहीं है। हिंदुस्तान में सामूहिक चेतना ही नहीं है। गुलाम नहीं रहेगा तो क्या होगा! आजाद हो गया, यह मिरेकल है, यह चमत्कार है! यह आजादी बड़ी बेबूझ है। यह किसी की कृपा होगी, यह कोई अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों का कारण होगा। हमारी कोई पात्रता नहीं है, हमारे पास समूह का कोई भाव नहीं है।

सामूहिक आत्मा, हमारे पास ऐसी कोई चीज नहीं है। मैं मैं, आप आप, वह वह। मुझे अपने रास्ते जाना, आपको आपके रास्ते जाना, उसको उसके रास्ते जाना है। और हमें पता ही नहीं है कि हमारे रास्ते एक-दूसरे को काटते हैं। मैं अपने रास्ते जाता हूं तो आपको रोकता हूं, आप अपने रास्ते जाते हैं तो मुझे रोकते हैं।

हम यहां सारे लोग अभी निकलना शुरू कर दें इस दरवाजे से, हम सब निकलना चाहेंगे, और हम सबके निकलने की आकांक्षा सबको रोकने का कारण बन जाएगी। लेकिन नहीं, हम एक-एक होकर निकल जाते हैं, हम ठहरते हैं, रास्ता देते हैं दूसरे को, और हम सब निकल जाते हैं।

जब मैं किसी दूसरे को निकलने का रास्ता देता हूं, तो मैं अपना रास्ता भी निश्चित ही बना लेता हूं। लेकिन जब मैं अपना ही रास्ता खोजता हूं, तो मैं अपना रास्ता भी तोड़ता हूं, दूसरे का रास्ता भी तोड़ता हूं।

जीवन एक सामूहिक उपक्रम है।

तो भारत को धर्म की एक सामूहिक दृष्टि पैदा करनी है। साधना को समाज से जोड़ देना है। व्यक्ति को समूह-चेतना के विरोध में खड़ा नहीं करना है; उसे, व्यक्ति को समूह-चेतना के संयोग में, संयुक्तता में खड़ा करना है।

यह कौन करेगा? यह कैसे होगा? ये पांच हजार साल के केंद्र, गलत और भ्रांत, कैसे तोड़े जाएंगे? यह कोई मेरे बस की बात नहीं है। यह किसी एक आदमी के बस की बात नहीं हो सकती। यह कोई एक दिन का काम भी नहीं हो सकता। लेकिन कमजोर से कमजोर दस लोग भी संयुक्त हो जाएं और किसी दिशा में काम शुरू कर दें, तो आज जो छोटा सा बीज है वह कल बड़ा वृक्ष बन जाए तो बहुत आश्चर्य नहीं।

और यह तो हमें ख्याल नहीं करना चाहिए। मौसमी पौधे लगाए जाते हैं तो दो महीने के भीतर फूलों से लद जाते हैं। लेकिन दो महीने बाद जमीन साफ होती है; न वहां फूल होते हैं, न पौधे होते हैं। जिन्हें बड़े वृक्ष लगाने हैं जिनके नीचे हजारों लोग छाया ले सकें, उन्हें यह ख्याल छोड़ देना चाहिए कि वे वृक्ष मैं ही लगा लूंगा, मेरी ही जिंदगी में लगा लूंगा, मेरे ही सामने हजारों लोग छाया ले लेंगे, यह पागलपन की बात छोड़ देनी चाहिए। यह भी अहंकार का ही हिस्सा है। लेकिन उन्हें काम शुरू कर देना चाहिए, छोटा सा सही।

और स्मरण रखें, इस जगत में छोटी से छोटी चीज का मूल्य है। इतना मूल्य है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि अंतिम निर्णय में, वह जो अल्टीमेट कनक्लूजन होगा जिंदगी का, उसमें छोटी और बड़ी चीज में फर्क नहीं रह जाएगा। उसमें छोटी चीज ने अपने फर्ज अदा किए हैं। एक इतनी छोटी सी घटना का मूल्य होता है जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते हैं।

नेपोलियन छह महीने का था और एक बिस्तर पर लेटा हुआ है। एक जंगली बिल्ली आ गई और उसकी छाती पर चढ़ गई। आप सोच सकते हैं कि एक जंगली बिल्ली का दुनिया के इतिहास के बनाने में कोई हाथ हो सकता है? या एक छोटे से बच्चे की छाती पर एक बिल्ली का चढ़ जाना हिस्टॉरिकल इम्पॉरटेंस ले सकता है, कोई ऐतिहासिक मूल्य हो सकता है इस बात का? कोई भी मूल्य नहीं है। नौकर ने आकर बिल्ली को भगा दिया।

लेकिन छह महीने के नेपोलियन के मन में बिल्ली का भय हमेशा के लिए समा गया। फिर वह नंगी तलवार से जूझते आदमी से नहीं डरता था, शेर के सामने नहीं डरता था, लेकिन बिल्ली के सामने उसके प्राण कंप जाते! जिस लड़ाई में नेपोलियन हारा, नेल्सन, उसका दुश्मन सत्तर बिल्लियां अपनी फौज के सामने बांध कर ले गया था। बिल्लियों को नेपोलियन ने देखा और उसके प्राण कंप गए! और उसने अपने साथी से कहा, आज जीत बहुत मुश्किल है, बिल्लियां देखते से ही मैं बस में नहीं रह जाता!

वह पहली बार हारा! इतिहासज्ञ कहते हैं कि नेपोलियन को नेल्सन ने हरा दिया। मनोवैज्ञानिक कहते हैंः बिल्लियों ने हरा दिया। और मैं मनोवैज्ञानिकों से सहमत हूं, इतिहासज्ञ कुछ भी नहीं जानते हैं।

इतनी छोटी सी, फिजूल की घटना, मीनिंगलेस, इतना बड़ा परिणाम ला सकती है क्या? और नेपोलियन के हारने से क्या फिर हुआ, इसके लिए तो बहुत... । अगर नेपोलियन नहीं हारता तो क्या होता? दुनिया बिल्कुल दूसरी होती। अगर हिटलर नहीं हारता तो दुनिया दूसरी होती। नेपोलियन नहीं हारता, दुनिया दूसरी होती। नेपोलियन नहीं हारता अगर बिल्ली उसकी छाती पर न चढ़ती। एक बाहर बैठा हुआ नौकर बिल्ली को भगा सकता था, दुनिया का इतिहास दूसरा होता। कोई कभी सोचता नहीं कि एक नौकर के द्वारा एक बिल्ली का भगा दिया जाना इतना मूल्यवान हो सकता है।

जीवन के इस वृहत्तर संबंध में, यह जो इनर कॉरेस्पांडेंस ऑफ थिंग्स है, यह जो जीवन की सारी चीजों का अंतर्संबंध है, इसमें छोटी सी चीज का उतना ही मूल्य है जितना बड़ी से बड़ी चीज का। इसमें एक सूरज के और एक दीये के मूल्य में कोई फर्क नहीं है। कई बार दीया सूरज से ज्यादा मूल्यवान साबित हो सकता है और कई बार सूरज दीया से छोटा साबित हो सकता है। जिंदगी का गणित बहुत बेबूझ है। छोटे से काम के बड़े परिणाम हो सकते हैं। और काम अगर ठीक दिशाओं में चले...

इतने ही हम, इतना ही आश्वासन ले सकते हैं अपने मन में कि कोई ठीक दिशा में काम को हमें ले जाना है। अगर हिम्मत से कुछ थोड़े से मित्र इकट्ठे होकर किसी काम में लगते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं कि दस-पंद्रह वर्ष के भीतर सारे मुल्क की नैतिक-चेतना में एक आंदोलन उपस्थित किया जा सके। चेतना तैयार है आंदोलन के लिए। जैसे कोई घर बिल्कुल तैयार हो जल जाने के लिए, सिर्फ एक चिनगारी डालने की जरूरत हो। कोई भी यह चिनगारी डालेगा तो यह आग लग जाएगी। और अगर यह आग लग जाए तो मुल्क के प्राण नये हो सकते हैं, निखर सकते हैं।

गांव-गांव मैं घूम रहा हूं, लाखों लोगों से मिल रहा हूं। उनकी आंखों से, उनके प्राणों से, उनकी बातों से मुझे लगता है कि वे तैयार हैं--कोई पुकारे, कोई चिनगारी फेंके, कोई कहे। चीजें अपने आप मर जाती हैं, कभी धक्का देने भर की जरूरत होती है।

क्या बचा है? पुरानी परंपरा की कोई भी चीज जीवित नहीं है, सिर्फ मुर्दे खड़े हैं। कोई धक्का दे दे और वे गिर जाएंगे। वे मुर्दे इनकार भी करने की हैसियत में नहीं रह गए हैं कि वे यह कह दें कि हम नहीं गिरते हैं या हमको मत गिराओ। जो उनको पकड़े खड़े हैं वे भी सोचते हैं कि कोई गिरा दे तो हमारे पकड़ने की झंझट से छुटकारा हो जाए। लेकिन वे भी बल नहीं जुटा पा रहे हैं कि खुद छोड़ दें सहारा। प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कोई करे, कोई करे, कोई करे। और इस प्रतीक्षा में जीवन रोज नीचे से नीचे गिरता जाता है और सड़ता चला जाता है।

इस दिशा में थोड़ा सोचें। कोई बंधे हुए फार्मूले नहीं हैं जिनके आधार पर कोई काम करना है। कोई संप्रदाय नहीं, कोई संगठन नहीं, कोई पंथ नहीं। लेकिन कुछ सूत्र--कि मुल्क में विश्वास की जगह विचार पैदा करना है। कौन सा विचार, वह मैं नहीं कहता। कौन सा विचार तो संप्रदाय बनना शुरू होगा--कि जैनियों का विचार, कि हिंदुओं का, कि मुसलमानों का। नहीं, मैं कहता हूं--विश्वास की जगह विचार।

संप्रदाय का कोई सवाल नहीं है। संप्रदाय का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि संप्रदाय का तब सवाल होता है जब हम कहें कि यह विचार। नहीं, यह तो सवाल ही दूसरा है। यह सवाल है कि श्रद्धा नहीं, विचार पैदा करना है; अंधविश्वास नहीं, आंखें पैदा करनी हैं। अतीत की तरफ देखना नहीं है, वर्तमान के प्रति और भविष्य के प्रति उन्मुख होना है। यह कि व्यक्ति को अहंकार पर केंद्रित नहीं, बल्कि सर्व के प्रति समर्पित होना है। कि साधक को सिर्फ साधक नहीं, बल्कि समग्र की चेतना का भी ध्यान रखना है। क्योंकि अंततः मैं अकेला नहीं हूं, आप अकेले नहीं हैं, हम किसी वृहत्तर इकाई में जुड़े हैं। आपकी अशांति अंततः मेरी अशांति होगी और मेरी अशांति अंततः आपकी अशांति होगी।

यह सारी दृष्टि, पंथ नहीं, यह केवल विचार की तीव्र उत्तेजना, एक हवा, कि मुल्क में एक हवा बह जाए विचार की। फिर तो विचार करने वाले बच्चे रास्ता खोज लेंगे, बना लेंगे। यह नहीं कहना है कि तुम कहां जाओ। इतना ही अगर हम कर सकें कि कह सकें कि जहां तुम जाते रहे हो वहां तुम कहीं पहुंचे नहीं। रुक जाओ, एक क्षण खड़े होकर देख लो कि पांच हजार साल में जो यात्रा तय की है उसने तुम्हें कहां पहुंचाया है? बस इतना हम काम कर सकें कि रुक जाओ एक क्षण और देख लो! तो दिखाई उन्हें स्वयं पड़ने लगेगा। लेकिन रुक ही नहीं रहा है कोई, रोक नहीं रहा है कोई। तो मुल्क में एक आंदोलन!

आंदोलन दुनिया में चलते हैं, क्रांतियां चलती हैं, लेकिन बुनियादी क्रांति और बुनियादी आंदोलन नहीं चलते हैं। एक पंथ से कोई छुड़ाता है तो दूसरे पंथ में बांधने की कोशिश करता है। छुड़ाता इसीलिए है कि दूसरे

में बांध सके। लेकिन, मेरी दृष्टि में, हमें ऐसा मनुष्य पैदा करना है जो किसी पंथ से बंधने में असमर्थ हो जाए। ऐसी फ्रीडम, ऐसी स्वतंत्रता पैदा करनी है। यह सामर्थ्य अगर हम पैदा नहीं करेंगे तो स्वच्छंदता पैदा होगी ही।

स्वतंत्रता तो एक डिसिप्लिन है, एक अनुशासन है, चेतना का एक ढंग से विकास है। और स्वच्छंदता परतंत्रता के प्रति पागल विद्रोह है।

तो अगर हम स्वच्छंदता पैदा न करना चाहते हों, तो हमें स्वतंत्रता की दिशा में जीवन की चेतना को विकसित करना है। और अगर हम चुप बैठे रहे, तो स्वतंत्रता तो नहीं आएगी--परतंत्रता तो जाएगी--उसकी जगह आएगी स्वच्छंदता, और जीवन के सब सूत्र बिखर जाएंगे, सब गड़बड़ हो जाएगा। उसके पहले होश से भर जाना जरूरी है।

तो मैं तो इतना ही कर सकता हूं कि गांव-गांव जाकर लोगों को कहूं कि घर में आग लगी है, तुम जाग जाओ। लेकिन मैं कितनी दूर तक लोगों को चिल्ला कर खबर पहुंचा सकता हूं? यह तो बात ऐसी है कि एक-एक घर के छप्पर पर खड़े होकर पूरे गांव में कहने की है, पूरे मुल्क में कहने की है, पूरी दुनिया में कहने की है। तो उसके लिए, मित्रों के लिए आमंत्रण दिया जाना जरूरी है कि जिनको भी प्रीतिकर लगता हो, और जिस ढंग से प्रीतिकर लगता हो, कोई बंधा हुआ ढांचा नहीं है कि वह कैसे। जिस ढंग से उन्हें प्रीतिकर लगता हो, जिस दिशा में उन्हें लगता हो कि मैं कुछ कर सकता हूं, कोई चिनगारी पहुंचा सकता हूं, वे पहुंचाएं।

अगर उन्हें लगता हो कि जीवन जागृति केंद्र के साथ, तो साथ; अगर उन्हें लगता है कि अलग, तो अलग। अगर उन्हें लगता हो कि ये जो मित्र इकट्ठे हैं इनके साथ कुछ काम हो सकता है, तो इनके साथ। इनके साथ लगता हो कि नहीं हो सकता, और कोई दस मित्र अलग खड़े होते हों अलग, तो अलग। सवाल यह है ही नहीं कि कौन के साथ और कैसे। सवाल यह है कि काम। न कोई नाम का सवाल है, न कोई व्यवस्था का, न कोई एफिलिएशन का। जिनको जैसा लगता हो वैसा। अगर उन्हें लगता हो कि ये दस-पचास मित्र जीवन जागृति केंद्र के नाम से जो इकट्ठे हैं इनके साथ काम को गति दी जाए, तो दें। अगर उन्हें कल लगे कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, तो काम मूल्यवान है, क्रांति मूल्यवान है। न जीवन जागृति केंद्र का कोई मूल्य है, न मेरा कोई मूल्य है। अगर लगता हो कि मेरे साथ यह काम हो सकता है तो ठीक। लगता हो कि मैं खतरनाक हूं, काम को रोकूंगा, तो मुझे तत्क्षण छोड़ देना चाहिए। क्रांति मूल्यवान है; न व्यक्तियों का कोई मूल्य है, न पंथों का कोई मूल्य है, न संगठनों का कोई मूल्य है।

लेकिन एक क्रांति जरूर मुल्क में आनी चाहिए, इसकी प्यास अगर आपको लगती हो, प्रतीत होता हो कि आनी चाहिए, तो कुछ करें। वह किस रूप में आप करेंगे, वह आपको निर्णय कर लेने का है। और किसी भी रूप में आप करेंगे, अगर उससे मुल्क के मूल्य में, वैल्यूज में फर्क आता है, अगर बंधी हुई दृष्टियां खुलती हैं, अगर परतंत्र भाव स्वतंत्र होते हैं, तो वह काम चल पड़ा, वह क्रांति चल पड़ी, वह क्रांति ने कदम भरने शुरू कर दिए। इस दिशा में थोड़ा सोचें, मिलें, और क्या हो सकता है, क्या कर सकते हैं।

मैं तो बहुत अव्यावहारिक आदमी हूं, मुझे कुछ पता नहीं कि चीजें कैसे चलती हैं, मकान कैसे बनते हैं, दुकानें कैसे चलती हैं, आदमी कैसे कमाता है, क्या करता है, मुझे कुछ पता नहीं है। लेकिन मुझे कुछ और बात पता है कि आदमी आकाश की तरफ कैसे देखता है; सूरज की तरफ कैसे देखता है; सौंदर्य की तरफ कैसे देखता है। लेकिन अकेला आकाश की तरफ देखने वाला आदमी बहुत काम का नहीं होता, क्योंकि चलना जमीन पर पड़ता है। और मुझे जमीन का कोई भी ठीक-ठीक पता नहीं है। आपको पता होगा जमीन का। अगर आपके हाथ मेरे हाथ को मजबूत करते हैं, तो वैसी बात बन जाएगी जैसी एक गांव में एक बार बनी। वह मैं बता दूं और अपनी बात पूरी कर दूं।

एक सम्राट ने सारे देश के लोगों को भोजन पर निमंत्रण दिया। सारा देश चला जा रहा है भोजन के निमंत्रण के लिए। गांव-गांव से लोग टोलियां बांध कर चले जा रहे हैं, गांव खाली होते जा रहे हैं। एक सराय में एक अंधा और एक लंगड़ा, बहुत दुखी और परेशान बैठे हैं। वे कैसे जाएं? अंधे को दिखाई नहीं पड़ता, लंगड़ा चल नहीं सकता है।

और तब एक वृद्ध आदमी ने कहा कि पागलो, तुम दोनों साथ हो जाओ! अन्यथा तुम यहीं बैठे रह जाओगे, तुम राजा के भोज में सम्मिलित नहीं हो सकोगे।

उन्होंने कहा, हम कैसे साथ हो जाएं?

अंधा देख नहीं सकता, लेकिन चल सकता है। लंगड़ा चल नहीं सकता, लेकिन देख सकता है। बस, फिर वे दोनों साथ हो गए। वह अंधा चलने लगा और लंगड़ा उसके कंधों पर बैठ गया। और वे दोनों पहुंच गए और भोज में सम्मिलित हो गए।

लेकिन एक दूसरी सराय में एक और मुश्किल हो गई, उसका पता ही नहीं कि उसका कोई हल हुआ कि नहीं। वहां एक बहरा और एक गूंगा बैठे हुए थे। बहरा बोल सकता था, सुन नहीं सकता था। गूंगा सुन सकता था, बोल नहीं सकता था। गूंगे ने सुन लिया था कि निमंत्रण आया है राजा का और जाना चाहिए। लेकिन वह अपने मित्र को कह नहीं सकता था कि चलना है। बहरा बोल सकता था, वह कह सकता था कि चलना है राजमहल, लेकिन उसने सुना नहीं था कि निमंत्रण आया है। वे दोनों बैठे रहे, एक-दूसरे को खींचते रहे, एक-दूसरे को पकड़ते रहे। क्योंकि वह गूंगा खींचता था कि चलो! वह बहरा कहता था, कहां खींचता है? चुपचाप बैठ! कहां जाना है? वे दोनों राजमहल के भोज में सम्मिलित नहीं हो सके।

अब पता नहीं मेरे साथ क्या होगा! हम अंधे और लंगड़े की तरह साथी बनेंगे कि गूंगे और बहरे की तरह। कुछ पता नहीं। अभी तो गूंगे-बहरे वाला मामला चल रहा है। देखें यह कैसे चलता है! अगर यह अंधे और लंगड़े वाला मामला बन सकता है, तो यात्रा हो सकती है, यह क्रांति राजमहल तक पहुंच सकती है।

ज्यादा तो मुझे कुछ कहना नहीं, बाकी तो आपको सोचना है। बस, अभी तो इतना। सोचें, और यहां जो मित्र हैं उनसे मिलें। दुर्लभ जी भाई के हाथ थोड़े मजबूत करें। क्योंकि मैं देख सकता हूं, पैर मेरे पास बिल्कुल नहीं हैं। अगर मेरे देखने का कोई उपयोग करना है, तो आपको अपने पैर दे देने होंगे। अगर आप देते हैं, तो क्रांति राजमहल तक पहुंच सकती है, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है।

मुझे राजमहल तक दिखाई पड़ रहा है रास्ता, लेकिन पैर बिल्कुल नहीं हैं मेरे पास। वह आपको सोच लेना है कि आपके पैरों का कोई उपयोग हो सकता है क्या? हो सकता हो, तो मैं किसी भी पैर पर सवारी करने को तैयार हूं--उसमें कोई कमजोर का, स्त्री का, पुरुष का, गरीब का, अमीर का कोई सवाल नहीं; हिंदू-मुसलमान का कोई सवाल नहीं। वह किसी का पैर हो, पैर होना चाहिए, वह चल सकता हो--बस उतना काफी है।

इतना ही कहना है, और तो कुछ अभी कहना नहीं है।

दसवां प्रवचन

कार्यकर्ता का व्यक्तित्व

दो-तीन बातें कहनी हैं। एक तो इस संबंध में थोड़ा समझना और विचारना जरूरी है। काम बड़ा हो और कार्यकर्ता उसमें उत्सुक हो काम करें, तो उन कार्यकर्ताओं में कुछ होना चाहिए, तो काम को आगे ले जा सकते हैं, नहीं तो नहीं ले जा सकते। वह कोई सामान्य संस्था हो, कोई सेवा-प्रसारी हो, कोई और तरह की सामाजिक संस्था हो, तो एक बात है। जिस तरह की बात लोगों में पहुंचानी है, तो हमारे पास जो कार्यकर्ता हों, उनमें उस तरह की कोई लक्षणा और उस तरह के कुछ गुण होने चाहिए। तो ही काम ठीक से पहुंचे, नहीं तो नहीं पहुंच सकता।

जैसे कि हमारे पास, शिविर, अगर बीस कार्यकर्ता शिविर में काम कर रहे हैं, तो उन बीस के ध्यान में उनकी थोड़ी गति होनी चाहिए। और उनके व्यक्तित्व में भी थोड़ा परिवर्तन आना चाहिए। वे अलग से दिखाई पड़ने चाहिए। नहीं तो उनसे फिर यह काम बहुत मुश्किल है होना। इसलिए एक खास कार्यकर्ता यहां अलग से बैठें। और आगे यह भी मेरा ख्याल है कि कार्यकर्ताओं का एक शिविर अलग भी हो। क्योंकि उनको एक नुकसान पहुंचता है, वह पूरा उसमें से नहीं ले पाते। काम में उलझे हुए... ।

अगर वे बिल्कुल सामान्यजन जैसे हों, तो काम भला उनसे हो, लेकिन काम में जो परिणाम आने चाहिए वे नहीं आ सकते। अभी ख्याल में नहीं थी यह बात, लेकिन यह कुछ करनी पड़े कि कार्यकर्ताओं का एक अलग वर्ग खड़ा होना चाहिए। और उसके लिए मैं, जो भी मेहनत मुझे करनी है, वह मैं करने को तैयार हूं। आपको जो करनी है उसकी थोड़ी तैयारी होनी चाहिए। क्योंकि अगर कोई बहुत नया विचार लोगों तक पहुंचाना हो, तो हमें नये तरह का व्यक्तित्व भी खड़ा करना होगा। और दूसरों से इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। जो लोग इस काम को करने में और फैलाने में उत्सुक हैं, उनसे और ज्यादा अपेक्षा होनी चाहिए। हमारा व्यवहार भी भिन्न होना चाहिए।

अब मेरे मन में एक-एक छोटे से छोटे आदमी के प्रति आदर है। अगर इस काम करने वाले लोगों के मन में वैसा आदर न हो, तो बड़ी उलटी बात हो जाती है। यानी काम भला करना है, लेकिन वह काम कोई बहुत मूल्य लाने वाला नहीं। जिस दृष्टि से मैंने जाना, उस दृष्टि से नहीं होने वाला। अब मेरे मन में तो एक अदना से अदना आदमी का उतना ही आदर है जितना तीर्थंकर का, या भगवान का। समझो जो मेरे काम को बढ़ाने वाले हों, उनके मन में अगर ऐसा आदर न हो साधारणजन के प्रति, तो फिर वे मेरी बात पहुंचा नहीं सकते बहुत दूर तक।

यानी एक तो निर्जीव काम है, जो कोई भी पहुंचा सकता है--कि किताब छाप लेनी है, किताब बेच देनी है, वह निर्जीव काम है। एक बहुत सजीव क्रांति है, वह आपके जीवन में उतरे तो ही पहुंच सकती है, नहीं तो नहीं पहुंच सकती।

तो इस संबंध में जब भी शिविर हो, मीटिंग हो, तो हर जगह जो हमारे काम करने वाले मित्र हैं उनको तो अलग से बैठना चाहिए। उनके अपने मसले, उनकी अपनी समस्याएं होनी चाहिए, जिनको कि उनको मौका नहीं मिलता बात करने का भी उन सबके बाबत। और आज नहीं कल हमें कार्यकर्ताओं की छोटी शिविर, बीस-पच्चीस लोगों की छोटी शिविर तीन-चार दिन के लिए, जहां वे मेरे साथ तीन-चार दिन रह सकें ज्यादा सुगमता से, इतना बड़ा बोझ उनके ऊपर न हो, और वहां वे अपने मसले हल कर सकें। क्योंकि बहुत से मसले उनके सामने हैं जिनकी कि मुझसे बातचीत उन्हें करनी बहुत जरूरी है। और जैसे कि इस तरह के जो भी काम हैं, मुझ अकेले से वह होने वाला नहीं है। मैं अपनी सारी ताकत भी लगाऊं तो भी मुझ अकेले से क्या हो सकता है! बात

इतनी है कि उसे अगर ठीक से पहुंचाना हो, तो हमें बहुत से व्यक्तियों को निर्मित करना पड़े, जो इस बात को ले जाने वाले बनेंगे।

एक तो निर्जीव प्रोपेगेंडा होता है कि उसको वे किसी तरह भी पहुंचा दें ढोल पीट कर। तो वैसा कुछ करने का प्रयोजन नहीं है। वैसे पहुंचती है बात तो बीच में मर जाती है। दूसरा एक सजीव उनका व्यक्तित्व होना चाहिए कि उन्हें देख कर लगे कि यह आदमी भी इस बात में उत्सुक हुआ है, किसी भी व्यक्ति को उसे देख कर लगे कि मुझे भी उत्सुक होना चाहिए। लेकिन अगर यह हमारा काम करने वाला भी छोटी-छोटी बात में नाराज होता हो, रुष्ट होता हो, गुस्से से भर जाता हो, छोटी-छोटी बातों में लड़-झगड़ बैठता हो, तो यह जिस बात को ले जाने के लिए हम सोचते हैं कि यह वाहक बनेगा, वह बात कैसे पहुंचाई जा सकती है? ठीक दिशा, अभी तो कोई ऐसा काम नहीं है, लेकिन आज नहीं कल वह काम बड़ा हो सकता है। और अगर हमारे पास ठीक मित्रों का एक समूह है, तो मैं अपनी पूरी ताकत लगाऊं तो भी इतने परिणाम नहीं आ सकते, जब तक कि मित्रों का एक वर्ग न हो।

मुझे तो उतना ही श्रम पड़ता है, चाहे पांच सौ लोग यहां इकट्ठे हों, चाहे पांच हजार लोग इकट्ठे हों, उसमें मेरे श्रम में तो कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। ज्यादा से ज्यादा लोग उस चीज का फायदा उठा सकें, तो उसके लिए हमें एक मित्रों का वर्ग खड़ा करना पड़े। और वह ऐसे मित्रों का वर्ग खड़ा करना पड़े कि जिस तरह के भी व्यक्ति हमें उपलब्ध हो सकें, हर व्यक्ति से कुछ न कुछ काम लिया जा सकता है। इस जमीन पर ऐसा तो आदमी कोई भी नहीं है जिससे कि कोई भी काम न लिया जा सके। सैकड़ों लोग उत्सुक हैं और वे मुझे कहते हैं जगह-जगह कि हम काम करना चाहते हैं। तो मैं उनको क्या बता सकता हूं? या क्या काम उनके लिए कहूं?

तो आपका एक वर्ग होना चाहिए जो कि उनकी सेवाएं ले सके, उनका श्रम ले सके। वे जो भी सहायता पहुंचाना चाहते हैं, उस सहायता को पूरी तरह ले सके। लेकिन यह आप तभी ले सकते हैं--क्योंकि नया आदमी आता है, अगर वह आज तीन दिन में प्रभाव में आया है, कोई बात समझ में बैठी है और वह आपके पास आया है, और आप अगर बहुत उपेक्षा से उसकी बात सुनें या ऐसे कि हां, ठीक है, कुछ देखेंगे, तो आप एक व्यक्ति खोते हैं जो कि बहुत काम का हो सकता था। वह जब आया था कुछ उत्सुकता लेकर, तो आपके मन के द्वार तो बहुत प्रेमपूर्ण रूप से उसके लिए खुले होने चाहिए। और यह मौका था कि वह व्यक्ति आपके काम में सम्मिलित होता। लेकिन अगर आपने अपेक्षा की, ऐसे ही कहा कि हां, ठीक है, देखेंगे, तो वह आदमी गया। हो सकता था वह कितना काम लाता, हम नहीं कुछ कह सकते हैं। कई बार बहुत छोटे-छोटे लोगों ने भारी काम किए हैं। और बड़े आदमी कोई आकाश से तो पैदा होते नहीं, सब छोटे-छोटे लोग पैदा होते हैं। वह कभी कोई वक्त और काम उन्हें बड़ा बना देता है।

तो हमें प्रत्येक आदमी, जो भी जिस हैसियत से उत्सुक है--पत्थर भी उठाने के लिए और इधर-उधर रखने के लिए कोई उत्सुक है--तो उसका बहुत प्रेम से स्वागत करके उसका उपयोग करना है। और काम इतना बड़ा है कि अगर हम दस-पंद्रह वर्ष ठीक से मेहनत करें, तो इस पूरे मुल्क में एक पूरी क्रांति का वातावरण खड़ा किया जा सकता है। मुल्क तैयार है, मुल्क का मन तैयार है, अगर हम नहीं कर पाएं वह तो वह सिर्फ हमारी कमजोरी और हमारी नासमझी और हमारी असमर्थता होगी। नये युवक हैं, उनके साथ आज कोई उनके जीवन में कोई दिशा नहीं है, कोई मार्गदर्शन नहीं है। तो रुकेंगे थोड़े ही, वे तो चलेंगे ही, गैर-मार्गदर्शन के चलेंगे, गैर-दिशा के चलेंगे। जहां मुल्क जाएगा, जाएगा। अगर हम थोड़ी हिम्मत करें और मेहनत करें, तो उनको मार्ग, दिशा मिल सकती है। और ऐसी स्थिति हमारे मुल्क के युवक की ही नहीं, सारी दुनिया के युवक की है। अगर यहां हमारा प्रयोग सफल होता है, तो वह व्यापक पैमाने पर बाहर भी पहुंच सकता है।

तो एक तो हमारी उत्सुकता होती है इतने दूर तक, कि आप आए हैं, क्योंकि आपको अपने व्यक्तित्व में थोड़ी उत्सुकता है, आप थोड़ा शांत होना चाहते हैं। लेकिन मैं आपसे कहूं, बहुत ज्यादा अपने में ही निरंतर

उत्सुक होना एक तरह का रोग है। थोड़ी उत्सुकता स्वयं में होनी चाहिए, लेकिन यह अत्यधिक सेल्फ-सेंटर्ड आदमी जो है वह कभी शांत नहीं हो सकता, क्योंकि यह भी अशांति का एक केंद्र है उसका कि मैं, मैं, मैं--मैं ठीक हो जाऊं, मैं ऐसा हो जाऊं, मैं वैसा हो जाऊं--अगर यह अत्यधिक है उसके चित्त में, तो यही चीज उसको शांत नहीं होने देगी। अगर हमें कोई चीज सत्य मालूम पड़ती हो, कोई चीज ठीक मालूम पड़ती हो, तो हमें अपने मैं के दायरे के थोड़े बाहर आना चाहिए और हमें यह फिकर करनी चाहिए कि अगर यह बात ठीक है तो यह और लोगों तक पहुंच जाए।

और आप हैरान होंगे कि जिस दिन आप दूसरों में उत्सुक होंगे, उस दिन आप पाएंगे कि आपकी वह जो मैं की बीमारी थी जिसकी वजह से आप अशांत थे, वह पचास प्रतिशत विलीन हो गई है। सिर्फ इस वजह से कि आप औरों में भी उत्सुक हुए हैं।

तो यह धार्मिक आदमी जिसको हम कहते हैं उसमें एक जो बुनियादी बीमारी होती है वह यह कि वह अपने में उत्सुक होता है। और इसी तरह जो कौमें बहुत धार्मिक हो गई हैं उनमें हर व्यक्ति सेल्फिश हो गया। वह धर्म का हाथ है उसके पीछे। यानी उसमें वे यह सोचते ही नहीं कि बगल में कोई खड़ा है। और हम यह जानते नहीं कि जिंदगी इतनी सम्मिलित है, इतनी सम्मिलित है, कि यह वैसी ही नासमझी की बात है--मैंने सुना है कि एक नाव में तीन आदमी बैठे हुए थे। उनमें एक आदमी ने अपनी जगह बैठे-बैठे छेद करना शुरू किया। दूसरा आदमी चिल्लाया कि यह तुम क्या करते हो? उसने कहा, मैं अपनी जगह करता हूं, तुम्हारा क्या लेना-देना? तुम्हारी जगह तो छेद करता नहीं। वे दोनों चुप हो गए कि यह तो बात ठीक है, अपनी जगह छेद करता है, हमें क्या लेना-देना!

लेकिन कोई नाव में छेद करेगा तो अपनी और तुम्हारी जगह का सवाल नहीं है, यानी नाव कोई अलग-अलग नहीं है, यह नाव एक है। उसमें किया गया छेद सबको ले डूबने वाला है। आपका पड़ोसी अगर एक छेद कर रहा है, तो हम इकट्ठी नाव में सवार हैं। हमारा जीवन एक इकट्ठी नाव है। उसमें कोई भी छेद कर रहा है तो आप यह मत सोचिए कि वह छेद कर रहा है तो मुझे क्या लेना-देना! जिंदगी इतनी इंटररिलेशनशिप है, इतनी जुड़ी हुई है कि उसमें कहीं भी किया गया छेद आपकी ही नाव में किया गया छेद है। इससे उलटी बात भी सच है, किसी के भी नीचे का बंद किया गया छेद आपकी ही नाव का बंद किया गया छेद है।

तो एक तो इतनी उत्सुकता होती है हमारी कि हमें अपने तक मतलब है कि हमें थोड़ी शांति और हो। और एक उत्सुकता और व्यापक होती है, वह इस बात से संबंधित है कि एक शांतिपूर्ण वातावरण हो। वह शांतिपूर्ण वातावरण आपके लिए भी होगा, लेकिन आपकी दिशा, आपका चिंतन एक व्यापक पैमाने पर गति करता है। इस बात को ख्याल में रखेंगे, तो एक फर्क दिखाई पड़ेगा।

पूरब के जितने धर्म पैदा हुए सब व्यक्ति-केंद्रित थे, कोई धर्म समूह-केंद्रित नहीं था। क्रिश्चिएनिटी अकेला धर्म है जो समूह-केंद्रित है। तो क्रिश्चिएनिटी के समूह-केंद्रित चिंतन में और पूरब के व्यक्ति-केंद्रित धर्म में आज जो फर्क पड़ गए हैं, उनको विचार करने से हैरानी होती है कि वे कहां खड़े हो गए हैं दोनों। इन दोनों में थोड़ा अधूरापन है। क्योंकि क्रिश्चिएनिटी फिर बिल्कुल ही समूह-केंद्रित हो गई है, उसमें व्यक्ति का कोई केंद्र स्थान नहीं रहा। यहां के सारे धर्म बिल्कुल व्यक्ति-केंद्रित हो गए, उनमें समूह की कोई दृष्टि नहीं रही।

ठीक धार्मिक व्यक्ति अपनी शांति, अपने आनंद में उत्सुक होता है, इसीलिए सबकी शांति और सबके आनंद में उत्सुक हो जाता है। न वह व्यक्ति-केंद्रित होता, न समूह-केंद्रित। वह सिर्फ शांति और आनंद में उत्सुक हो जाता है। और इस बात को वह समझ लेता है कि मेरी शांति और आपकी शांति बहुत लंबे पैमाने में दो अलग चीजें नहीं हैं; क्योंकि बहुत लंबे पैमाने में एक ही नाव है।

तो कार्यकर्ता का मतलब है कि अब वह केवल एक व्यक्तिगत साधक नहीं रहा, बल्कि उसके मन में एक ख्याल आया है, एक बात उसे सूझ पड़ी है, वह फैल जाए व्यापक पैमाने में, इसको फैलाने की दृष्टि में कुछ सोच-

विचार करना जरूरी है। अभी तो बिना सोचे-विचारे, जो काम चलता है मित्रों का वह बिना सोचे-विचारे है। और वह जो भी काम है उसमें मेरा अब तक कोई हाथ नहीं है। वह मित्रों का ही काम है, उनको जैसा ठीक लगा उन्होंने किया है। जो किया वह बहुत है। लेकिन अब मुझे ऐसा लगता है कि मुझे उस काम में सम्मिलित होना पड़ेगा। तो ही शायद ठीक से व्यवस्था उसको दी जा सकती है, नहीं तो व्यवस्था नहीं दी जा सकती। तो आपके मन में इस दिशा में जो भी ख्याल आते हों, विचार आते हों, सोच-विचार आता हो, वह बैठक आप अलग लेकर अपनी उनको रख सकते हैं, उनकी बात करनी चाहिए। छोटे-छोटे मसले हैं, उन पर भी बात करनी चाहिए।

आपके मसले जरूर दूसरे ढंग के होंगे, इसलिए श्रोताओं के बीच चर्चा उनकी करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जितने लोग इस काम को दूर तक पहुंचाने के लिए उत्सुक हों, उनको सोच-विचार में थोड़ा लगना चाहिए-- इस दृष्टि से कि यह काम दूर तक जाए, उसके लिए मैं क्या तैयारी करूं? क्योंकि अकेले काम भेजने का सवाल नहीं है, आपकी तैयारी के द्वारा ही वह काम वहां जा सकता है। संगठन बनाने का सवाल नहीं है। कोई बहुत सेंट्रल आर्गनाइजेशन बनाने का सवाल नहीं है। एक कामचलाऊ केंद्र है, उसे कामचलाऊ ही समझना चाहिए। क्योंकि जब बहुत केंद्र संगठित हो जाए तो वह कई तरह से दीवालें खड़ी करना शुरू करता है।

तो हमें तो इतना फैलाना चाहिए कि काम इतना विस्तीर्ण हो जाना चाहिए कि उसमें कोई केंद्र का पता भी न चले कि कोई केंद्र है। हर जगह उसका केंद्र है और कहीं उसका केंद्र नहीं है। क्योंकि केंद्र बहुत गहरा मजबूत हो, तो वह गहरा और मजबूत, शाखाओं को, दूसरे केंद्रों को कम करके ही होता है।

दिल्ली की राजधानी बहुत मजबूत हो, तो प्रांतों की राजधानियों को कम करके ही होती है, नहीं तो बहुत मजबूत नहीं होती। तो वह जितनी मजबूत होती चली जाए, उतनी प्रांतों की राजधानी कमजोर होती चली जाएगी। तो फिर उसके खतरे हैं। वह आखिर में जाकर कुछ व्यक्तियों के, एक व्यक्ति के, दो-चार व्यक्तियों के हाथ में केंद्रित हो जाता है। वैसा कोई केंद्रीकरण करने का बहुत सवाल नहीं है। लेकिन कामचलाऊ केंद्र तो जरूरी है। पर यह जान कर कि वह कामचलाऊ है। और हमें जगह-जगह इतनी मेहनत करनी चाहिए कि वह जगह-जगह करीब-करीब स्वावलंबी केंद्र हो। वह अपनी फिकर करे, अपना चिंतन करे। उसको जितनी सहायता हम दे सकें केंद्र से, उतनी सहायता दें। और जितनी कम हम उससे सहायता ले सकें, उतनी कम सहायता लें। यह हमें दृष्टि में होना चाहिए। हम उससे जितनी कम सहायता ले सकें, और जितनी ज्यादा हम उसे दे सकें उतनी दें।

और जगह-जगह की अलग-अलग स्थितियां होंगी, अलग-अलग सोच-विचार के लोग होंगे। तो वहां जो भी योजना, जो भी काम वे करना चाहें, हमें ऐसा लगता हो कि बस वे हमारे केंद्रीय चिंतन के विरोध में नहीं हैं, तो उस काम को हमें करने का मौका देना चाहिए। वे जो भी काम करना चाहें उन्हें करने देना चाहिए। और पूरी तरह उन्हें स्वतंत्र और स्वावलंबी काम करने की, हमसे जितनी सहायता बन सके हमें पहुंचानी चाहिए।

बहुत लोग काम में उत्सुक होंगे, अन्य तरह के लोग उत्सुक होंगे। अगर हम यह चाहें कि ठीक हमारे तरह के ही लोग काम में आएं, हम गलती में हैं। बहुत तरह के लोग काम में आएंगे। हमें इतना ध्यान होना चाहिए कि हमारे काम और विचार के विरोधी प्रवृत्तियों के लोग तो वहां नहीं आ जाते हैं। बस इतना भर हमें ध्यान में होना चाहिए। और जो भी आता है उसके लिए द्वार खुले होने चाहिए कि सब लोग आ जाएं।

संगठित संस्थाओं में एक खतरा होना शुरू होता है। जिन लोगों के हाथ में संगठित संस्था होती है... आमतौर से जैसी संस्थाएं होती हैं दुनिया में, वैसी संस्था हमें नहीं बनानी... तो यह खतरा होना शुरू होता है कि अगर मेरे हाथ में या चार मित्रों के हाथ में एक संस्था है, तो वे निरंतर भयभीत रहने लगते हैं इस बात से कि कुछ लोग आकर उन्हें डिसप्लेस न कर दें, कुछ लोग आकर उन्हें हटा न दें। यह सारी संस्थाओं में यह प्रवृत्ति होनी शुरू होती है। और तब यह प्रवृत्ति दरवाजा रोकने वाली बन जाती है। और काम को नुकसान पहुंचेगा।

मेरा कहना है कि हमारे पास तो कोई पद और स्थान हैं ही नहीं। कोई पद और स्थान जैसी चीज बनानी नहीं है। इसलिए किसी को चिंतातुर होने का कोई कारण नहीं। और हमारा जो काम है वह तो ऐसा काम है कि

उसमें भी अगर पद का और प्रतिष्ठा का हमें ख्याल आया, तो हम जो क्रांति ले जाने वाले हैं वह कहां ले जाएंगे? क्योंकि वह सारी क्रांति पद और प्रतिष्ठा को तोड़ने के लिए है। तो हममें तो इतनी तैयारी होनी चाहिए कि जब भी कोई आदमी हमको स्थान से अलग करने को हो तो हम उत्सुकता से जगह खाली कर दें कि हमसे बेहतर आदमी आ गया, अब वह काम करेगा, मैं दूसरा काम लेता हूं। इतना स्वागत हमारे मन में हो काम का, तब तो काम बहुत बड़ा हो सकता है।

अब वे जो छोटी-छोटी बातें मेरे ख्याल में आती हैं, रोज कोई मुझे आकर कहता है, यह कोई मुझे आकर कहता है, वह... तो मुझे हैरानी भी होती है। क्योंकि वे इतनी छोटी-छोटी बातें हैं कि अगर उन पर हमारे बीच स्थितियां बनती हों, चिंतन खड़ा होता हो, विचार चिंता बनती हो, तो फिर बहुत हैरानी की बात है। उनसे फिर बड़ा काम होना बहुत कठिन हो जाएगा। तो इस सब पर खुले चिंतन की भी जरूरत है।

और अगर कार्यकर्ताओं के बीच में, मित्रों के बीच में अगर कोई भी वैमनस्य, कोई भी बात खड़ी होती हो, तो उसकी आपस में बिल्कुल चर्चा बंद कर देनी चाहिए, उसे तो जब भी हम इकट्ठे बैठें तब सब बात कर लेनी चाहिए। जब हम तीस जन इकट्ठे बैठें हों, किसी को, सी.एस. ने कुछ गड़बड़ की है, इनके बाबत कुछ कहना है, तो फिर उसे कह देना चाहिए सबके सामने। लेकिन यहां-वहां किसी को नहीं कहना चाहिए। क्योंकि यहां-वहां कहने से वह रोग पैदा करता है। हम सब इकट्ठे हैं, वहां हम कह सकते हैं कि अग्रवाल साहब ऐसा है, यह हमें पसंद नहीं पड़ता, यह गलत मालूम होता है। तो हम सब बैठ कर विचार कर लें, अग्रवाल साहब सही हों, तो हम सब तय करें कि वे ठीक कहते हैं, आप गलत चिंता में पड़ गए; और गलत हों तो उनसे कहें कि इससे तो नुकसान पहुंचेगा, इस बात को छोड़ देना चाहिए।

और हमारी इतनी तैयारी होनी चाहिए कि इसमें छोड़ने-पकड़ने में है क्या! और इन बातों को हम छोड़ने-पकड़ने में अगर भयभीत हो जाएं, तो मैं तो लोगों को जो बातें छोड़ने के लिए कह रहा हूं, वे बेचारे कैसे छोड़ पाएंगे? क्योंकि उनके तो मैं बिल्कुल प्राणों पर चोट कर रहा हूं। जो उनकी हजारों-हजारों वर्षों की पकड़ी धारणाएं हैं, उनको छोड़ने के लिए तैयार करना है, और हम छोटी-छोटी बातें पकड़ कर बैठेंगे तब तो बहुत कठिन होगा।

सिर्फ इसमें एक बात ध्यान रखनी जरूरी है कि अलग-अलग ये बातें नहीं की जानी चाहिए। उससे व्यर्थ की कटुता खड़ी होती है। वह हमेशा जब हम इकट्ठे हों, तब खुली बात करनी चाहिए सबको, काम को ध्यान में रख कर, कि यह बात बाधा बन सकती है, तो हमें इसकी बात करनी है।

और एक बात ध्यान में जरूर रखिए कि शायद अभी आपको अंदाज नहीं हो सकता, दो-चार-पांच वर्षों में अंदाज हो, कभी अंदाज नहीं होता किसी को कि कोई काम कितना बड़ा हो सकता है। काश, पहले से अंदाज हो, तो वह काम बहुत जल्दी बड़ा हो सकता है, कम बाधाओं में बड़ा हो सकता है। लेकिन कभी अंदाज नहीं होता। इतनी दूरदृष्टि मुश्किल से होती है लोगों के पास कि वे यह देख सकें कि दस साल बाद यह काम कैसा होगा।

उन्नीस सौ इक्कीस या बीस में गांधी जी संभवतः कलकत्ते में गोखले के यहां ठहरे। और गोखले को डर हुआ कि यह आदमी ऐसे कपड़े बांधे हुए है साधुओं जैसे, मैं इसके साथ मंच पर जाऊं कि नहीं? लोग तो हंसेंगे कि यह... क्योंकि उस समय तक तो कांग्रेस बहुत व्यवस्थित कपड़े पहनने वालों की, बड़े वकीलों की, इस तरह के लोगों की संस्था थी। यह आदमी तो ऐसा आदमी नहीं था जैसे लोगों की वह संस्था थी। तो इसके साथ जाना भी कि नहीं? तो यह सोच कर उन्होंने बहाना किया कि मेरे सिर में दर्द है और मैं आज नहीं जाता हूं। उनको पता नहीं था कि यह जो आदमी एक गांव के किसान के कपड़े पहन कर खड़ा हो रहा है, यह इसका इस भांति के कपड़े पहनना, इसका गरीब की हैसियत में खड़ा होना ही इस मुल्क में क्रांति लाने का कारण बन जाएगा। इसकी किसी को कल्पना ही नहीं थी। गोखले को कल्पना नहीं थी।

तो दुनिया में जो भी काम हुए हैं, वे कब बड़े हो सकते हैं, इसकी कोई कल्पना पहले से नहीं होती। पहले से कल्पना हो तो हम गांधी को कितनी मुसीबतों से बचा सकते थे, उसका कोई हिसाब नहीं था। और जो काम पच्चीस साल बाद हुआ वह पंद्रह साल में हो सकता था। लेकिन कोई अंदाज ही नहीं होता। कोई काम जब होता है तब हमें ख्याल आता है कि यह हो सकता है।

तो जिस ख्याल में आप उत्सुक हैं वह ख्याल बहुत दूरगामी क्रांति ला सकता है। इस बड़े ख्याल को ध्यान में रखें और अपने को ख्याल में न लें। और इस बड़े काम को किस भांति बिना बाधा के पहुंचाया जाए, उसको देखें। और यह भी आप समझ लें कि एक बड़ी जिम्मेवारी आपके ऊपर है। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, वह जब तक छोटे-छोटे ग्रुप्स में मैं कह रहा हूं तब तक वह उपद्रव नहीं ला रहा है, जिस दिन बड़ी भीड़ आनी शुरू होगी उस दिन उसके साथ उपद्रव भी आने शुरू होंगे। वह सुनिश्चित है। और जितना बड़ा बल बढ़ेगा उस विचार का, उतने ही खतरे और उपद्रव आने शुरू होंगे। तो उनकी भी तैयारी होनी चाहिए। जब कोई परिवर्तन की और क्रांति की बात करनी हो, तो बहुत तरह की तैयारी होनी चाहिए।

तो जिम्मेवारी बहुत बड़ी है आपके ऊपर। अभी मैं नहीं पाता कि उतनी तैयारी है। जिस दिन आपकी तैयारी हो, उतनी बड़ी जिम्मेवारी आपके लिए खड़ी हो जाएगी। और मैं तो कदम-कदम में मुझे रुकना पड़ता है, इस ख्याल से कि वह कौन झेलेगा उस सारी जिम्मेवारी को? अगर वह पूरी की पूरी आपके सिर पर आई तो कौन झेलेगा? तो इसकी तैयारी आप जितनी जल्दी करते हैं उतनी जल्दी ठीक-ठीक लोगों से वह बात कही जा सकती है। जिसको कि दो वर्ष बाद कहना पड़े, उसे आज कहा जा सकता है। गांव-गांव तक पहुंचा देने की बात है, एक-एक घर तक पहुंचा देने की बात है। तो वह कैसे पहुंचानी, क्या करना, वह सब आपको बैठ कर चिंतन करना चाहिए। क्योंकि एक या दो या तीन आदमी यह नहीं कर सकेंगे। क्योंकि जितने व्यापक व्यक्ति आएंगे उतना बड़ा काम हो सकेगा। और जितने विभिन्न पहलू वाले व्यक्ति आएंगे, जितने विभिन्न व्यक्तित्व के, उतना बड़ा काम हो सकेगा।

तो आपकी संस्था को तो यह ख्याल में लेकर काम करना चाहिए कि वह सिर्फ एक मिलन-स्थल है, इससे ज्यादा नहीं। उसमें जितने विभिन्न कोणों के, विभिन्न ढंग के, विभिन्न वर्गों के लोग आ सकें, उनको लाने भर का काम आपका है कि वे आ जाएं। उनसे कैसे काम लिया जाए वह आपके चिंतन का है, ख्याल का है कि उनसे कैसे काम लिया जाए। और अत्यंत प्रेमपूर्ण, स्वागतपूर्ण भाव से अगर हम बहुत लोगों को ला सकते हैं, तो इसमें कोई शक का कारण नहीं है।

और जो मैं कह रहा हूं, आज इसकी सारी की सारी दृष्टि धर्म से संबंधित है। आज नहीं कल समाज के और पहलुओं पर भी मुझे कहना पड़ेगा। समाज के आर्थिक पहलू हैं, राजनैतिक पहलू हैं। समाज की जिंदगी इकट्ठी जिंदगी है। अगर पूरे समाज के जीवन-दृष्टिकोण में कोई फर्क लाना हो, तो हमें उसके सारे पहलुओं पर बात करनी पड़ेगी। तो जब तक मैं धर्म पर बोल रहा हूं तब तक एक पहलू की बात है। और उतनी ही क्रांति की बात जीवन के हर पहलू पर जरूरी है। तो हम एक पूरी क्रांतिकारी योजना देश के मन के सामने उपस्थित कर सकते हैं।

तो कल अगर मैं राजनीति पर, अर्थ पर, समाज पर, शिक्षा पर, इन सब पर पूरी दृष्टि देना शुरू करूंगा, तो काम में और बहुत तरह के लोगों की जरूरत होगी जिनकी अभी हमें कल्पना भी नहीं है कि वे लोग इसके लिए जरूरी हो जाएंगे। आज उसमें से बहुत से लोग उत्सुक भी होते हैं, लेकिन अभी तो हमारे पास कोई काम भी नहीं कि उनको हम कहें। न मालूम कितने प्रोफेसर्स उत्सुक हुए हैं मुल्क में। अगर हमारी तैयारी हो, तो कल हम प्रोफेसर्स का अलग ही कैंप आयोजित करें। और उसमें मैं, शिक्षा के संबंध में ही जो कुछ हो सकता है, उसके बाबत बात करूं। युवक उत्सुक हुए हैं, कल हम कालेज के विद्यार्थियों का अलग ही कैंप आयोजित करें। उनसे

बात हो सके। ढेर राजनीतिज्ञ मुल्क में उत्सुक हुए हैं, आज नहीं कल अगर हम व्यापक काम करें, तो हम राजनीतिज्ञों के लिए एक अलग ही कैंप रखें। हम उनसे सीधी बात कर सकें, उनको कुछ कह सकें।

लेकिन यह तभी हो सकता है जब हम हर तरह के लोगों को भीतर आने दें। कल फिर उनके अलग-अलग वर्ग के लिए अलग-अलग चिंतन हो सकता है। अब अभी बहुत से प्रश्न होते हैं जिनको मैं छोड़ देता हूं, सिर्फ इसीलिए कि वह जिन लोगों के सामने बात की जानी चाहिए वे लोग तो नहीं हैं, तो उनकी क्या बात करें!

अब जैसे कि निरंतर ऐसा कोई दिन नहीं होता जिस दिन कि शिक्षा पर कोई प्रश्न न पूछ लेता हो। लेकिन शिक्षा पर बात करने से क्या प्रयोजन है, जब तक कि शिक्षाशास्त्री के सामने वह बात न की जाए। आप क्या करेंगे बहुत उसके लिए?

अब कल दो-एक प्रश्न हैं राजनीति पर, लेकिन क्या मतलब है उनकी बात करने से। जब तक कि हमारे पास एक राजनैतिक पूरी योजना, जहां से हम पूरी बात कह सकें पूरी दृष्टि को ध्यान में रख कर। और किनके सामने कहें?

मुल्क की, जीवन के बहुत पहलू हैं, सभी पहलुओं पर संयुक्त क्रांति का काम हो सकता है। पर इसके लिए हमारी तैयारी बढ़नी चाहिए। अब जैसे यही कैंप है--चार सौ लोग आए हैं; इस कैंप में दो हजार लोग हो सकते थे। हमें थोड़ी फिकर करनी पड़े। और आप हैरान होंगे कि चार सौ लोग, यही चार सौ लोगों को ज्यादा फायदा होता अगर दो हजार लोग यहां होते तो। क्योंकि जितनी बड़ी संख्या है उतना बड़ा वायुमंडल, उतना बड़ा एटमास्फियर खड़ा होता है।

और हमारा चूंकि जीवन हमेशा से विस्तार को अनुभव करता है, जितना विस्तीर्ण हो। आप ध्यान करने बैठे हैं, अगर आपके आस-पास दस हजार लोग ध्यान कर रहे हैं, आपके ध्यान में फर्क पड़ता है। और आप अकेले कर रहे हैं तो फर्क पड़ता है। क्योंकि आपको लगता है, कुछ समझ में आना शुरू हुआ, फिर एक साइकिक, एक मनो-वातावरण बनता है। इतने लोगों का चिंतन, इतने लोगों के मन की हवाएं, इतने लोगों के मन की तरंगें एक हवा बनाती हैं।

बुद्ध जिस गांव में भी जाते, दस हजार भिक्षु साथ जाते। हम कहेंगे, इतनी भीड़ लेकर चलने का क्या मतलब था? लेकिन पूरे गांव की हवा बदल देते। क्योंकि दस हजार भिक्षु एक खास ढंग से निर्मित, एक खास तरह के चित्त को लिए हुए, खास तरह की आंखें, खास तरह के पैर--चलने का ढंग, उठने का ढंग, बात करने का ढंग, दस हजार शांत लोग, जिस गांव में खड़े हो जाते दस हजार लोग शांत, वह गांव एकदम देखता रह जाता कि क्या!

एक गांव में ठहरे हैं, उस गांव का राजा मिलने गया। दस हजार लोग ठहरे हैं गांव के बाहर। तो उसने अपने मंत्रियों से कहा, कितनी दूर है?

उन्होंने कहा, बस ये जो वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं, उसके पास है।

उसने कहा, मुझे शक होता है। अपनी तलवार बाहर निकाल ली। तुम मुझे धोखा देना चाहते हो? तुम कहते हो दस हजार लोग ठहरे हैं, लेकिन यहां तो ऐसा पता नहीं चलता कि एक आदमी ठहरा हुआ है! इतना सन्नाटा, दस हजार लोग थोड़े ही फासले पर ठहरे हैं दरख्तों के पास, इतना सन्नाटा है रात में! मुझे शक होता है। उसने तलवार बाहर निकाल ली। कोई शड्यंत्र तो नहीं है!

वे मंत्री हंसे, उन्होंने कहा कि आप तलवार बाहर ही रखिए, कोई शड्यंत्र नहीं है, लेकिन आप चलिए, वे दस हजार लोग और ही तरह के लोग हैं।

वह गया, वह देख कर वहां दंग रह गया कि वृक्षों के नीचे दस हजार लोग बैठे हैं, चुपचाप! कोई एक बात नहीं कर रहा है।

अब यह एक साइकिक वातावरण में प्रवेश कर रहा है। जहां यह बोलना भी चाहे तो नहीं बोल सकता। दस हजार लोग मौजूद हैं चुपचाप। कोई बात नहीं कर रहे हैं, बैठे हैं चुप। तो यह आदमी इनमें रुकता है, यह आदमी बदल जाता है। यह इसने देखा ही नहीं है, इसकी कल्पना में नहीं है कि ऐसी भी एक हवा हो सकती है।

काम बहुत हो सकते हैं। मेरा वह भी ख्याल है कि गांवों पर मॉरल अटैक होने चाहिए। लेकिन हमारे पास लोग हों। मेरे मन में है यह कि दो हजार लोग एक गांव में तीन दिन के लिए ठहर जाएं। अभी हम कैंप लेते हैं। अगर हमारे पास दो हजार ऐसे लोग तैयार होते हैं जिनको हम समझते हैं कि इन्होंने ध्यान में थोड़ी गति की है, ये शांत हुए हैं, इनको विचार ख्याल में आया है; कल हम चलते हैं और एक गांव चलते हैं, बीस हजार का गांव, उसमें दो हजार लोग घरों में मेहमान हो जाते हैं तीन दिन के लिए हाथ जोड़ कर कि हम इस पूरे गांव पर एक नैतिक आक्रमण कर रहे हैं। जाकर दस हजार के गांव में दो हजार लोग पांच-पांच घर के बीच जाकर एक-एक आदमी जाकर मेहमान हो जाता है। वे तीन दिन उनके साथ रहेंगे दो हजार लोग, मोहल्ले में पांच घरों के लोगों से बात करेंगे, सांझ को हमारी बैठक होगी, उसमें पूरे गांव के बच्चे-पत्नियों को लेकर वे हमारे दो हजार लोग हाजिर होंगे। उन दो हजार लोगों का उठना, बैठना, बात करना, सोचना, उस सब की हवा हम उस गांव में खड़ी करेंगे। हम तीन दिन क्यों जंगल में कैंप लेंगे? जंगल में कैंप लेने की मजबूरी सिर्फ एक ही है कि हमारे पास आदमी नहीं हैं कि हम शहर में जाकर वातावरण खड़ा कर सकें। हमारे पास दो हजार आदमी होंगे तो हम एक गांव पर हमला करेंगे। वर्ष में हम बारह गांव पर हमला कर दिया करेंगे। और बारह गांव में हम एक जादू खड़ा कर सकते हैं पूरा का पूरा कि तीन दिन के लिए वह गांव चकित खड़ा रह जाए, और उस गांव की जिंदगी में एक फर्क पड़ जाए।

तो काम तो बहुत दिशाओं में बहुत रूप ले सकता है। पर वह रूप, जैसे-जैसे आपकी ताकत बढ़ती है, आप इकट्ठे होते हैं, सोचते हैं, उस रूप में बन सकेगा।

आज की बैठक इसी ख्याल से बुलाई कि अगली बार से हमेशा ही, मेरा ख्याल यह है कि कैंप तीन दिन का न होकर चार दिन का हुआ करे। पहले दिन सारे हमारे मित्र इकट्ठे हो जाया करें। एक दिन उनके साथ व्यतीत हो, दूसरे दिन से कैंप शुरू होगा। ताकि उनके लिए कुछ मैं कर सकूं और वे इस दिशा में कुछ सोच सकें, विचार कर सकें। और जिस गांव में भी हम मिलते हैं, बैठकें लेते हैं, वहां भी एक बैठक घंटे भर की वहां के उन मित्रों के लिए जो काम करने के लिए सक्रिय रूप से उत्सुक हुए हैं, उनके लिए एक बैठक होनी चाहिए। और हम कैसे बड़ा से बड़ा कर सकें, उसका हमें चिंतन करना चाहिए। और जो भी जो योजनाएं ला सके, वे योजनाएं लानी चाहिए और मित्रों को समझाना चाहिए कि इस योजना से काम यहां आगे जा सकता है।

इस पर आप चिंतन करें, ख्याल करें, इसलिए। और कुछ बात इस संबंध में पूछनी हो तो पूछ लें।

अभी उन लड़कों ने जबलपुर में अच्छा थोड़ा सा काम किया। अच्छा थोड़ा काम किया। और युवक उत्सुक हो जाएं तो--वह उत्सुक आपको करने हैं--अभी दस-पंद्रह-बीस लड़कों ने एक ग्रुप जबलपुर में बनाया, तो वे घर-घर साहित्य पहुंचा रहे हैं। बहुत अच्छा रिस्पांस मिला है। जिस घर में भी गए, बहुत अच्छा रिस्पांस मिला। बहुत अच्छा रिस्पांस मिला।

एक मित्र की योजना थी एक वीकली बुलेटिन की। तो वे लड़के तैयार करते हैं जनवरी से, जबलपुर से निकालने का एक वीकली बुलेटिन। एक छोटी सी पत्रिका छह पन्नों की, जिसमें कि सारी सूचनाएं पूरी की पूरी मिल सकें।

बहुत बड़ा काम है।

काम तो बहुत बड़ा हो सकता है। और आप जितना तैयार हों, मैं उसको उतनी बड़ी दिशा दे सकता हूं। मेरी कल्पना में है सारी बात कि क्या नहीं हो सकता है! बहुत हो सकता है। इतना हो सकता है कि हम एक पंद्रह-बीस साल में इस मुल्क में दूसरी हवा पैदा कर दें।

इसलिए आपने जो कहा है कि ध्यान का प्रयोग हम कार्यकर्ताओं को, ठीक ढंग से करना चाहिए...

तैयार करना पड़े हमें एक अलग वर्ग।

बहुत से लोगों का ऐसा ख्याल कार्यक्रमों में हो जाता है कभी-कभी कि आप कोई बात बोलते हैं, फिर थोड़े टाइम पर और कुछ बात बोलते हैं, तो समझ नहीं पाते हैं कि पहली बात सच्ची या दूसरी बात सच्ची। शायद आपका ध्यान बहुत लंबे तक होने के बाद कुछ फर्क होना होता हो। तो बहुत सा टाइम चर्चाओं में चला जाता है। इसका एक नमूना अब यह हो गया कि लोगों को यह ख्याल आ गया कि आपका फोटो रखा जाए या न रखा जाए। अब ये आप कोई और ढंग से सोच रहे होंगे। जो कार्यक्रम शुरू से ही चर्चा हो जाती है। तो मेरे ख्याल से कुछ बातें कार्यक्रम...

कार्यक्रम की बैठक हो, तो जो भी बात हो वह पूछ लेनी चाहिए।

तो एक लंबी दृष्टि से कोई विचार हो तो शायद कभी समझ में न आए, पर एक बनानी है बात तो उस वक्त पूरी एनर्जी दी जाए। और उसके बाद न कुछ घटने लगे तो आपको लौटा दे कि भई यह ठीक नहीं है। लेकिन करना है, उस टाइम तो फिर जोर से किया जाए।

पूरी ताकत से। क्योंकि जो भी करना है उसकी समझ... अब वह फोटो का ही मामला ऐसा हो गया कि मेरे पास हर महीने सैकड़ों चिट्ठियां पहुंचती हैं कि हमें फोटो भेज दीजिए। मैं उनको कहां से फोटो भेजूं? नहीं भेजता तो उनकी फिर चिट्ठी पहुंचती है कि आप एक चित्र भी हमको नहीं भेजते हैं! तो सिवाय इसके कोई उपाय नहीं है कि फोटो रख दी जाएं, जिसको लेना हो वह ले जाए। मैं उनको कहां से चित्र भेजूं? वहां लोग पहुंच जाते हैं घर पर भी कि आपका एक फोटो दे दीजिए। मैं कहां से फोटो लाकर उनके लिए रखूं? और कितने फोटो रखे जाएं?

तो उसके लिए तो स्टाल पर रख दिए; जिसको चाहिए, उठा कर ले जाए; नहीं चाहिए, बात खतम हो गई।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कोई भी मामला हो उस पर सोच लेना चाहिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मुझे वहां देने का इंतजाम करना पड़ता है। मैं किसी को मना क्या करूं! वह आया है कि चित्र चाहिए आपका एक। तो अब उसको क्या कहा जाए? और किसी की चिट्ठी आती है कि उसको चित्र चाहिए। अब उसको

चित्र की व्यवस्था करो, वह खर्च करो; फिर उसे भेजने के लिए डाक का खर्च करो। उससे मतलब क्या है? और न भेजो तो वह दुखी होता है कि हमें एक चित्र नहीं भेजा।

अच्छा यह सब क्लब जैसा कुछ बनाना चाहिए?

हां, वह मैंने कहा कि एक क्लब बनाएं, एक तीन-चार चित्रों को उसमें रख दें, खतम हुआ।
(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

लोग जो भी चाहते हों, उसमें जितने की व्यवस्था हम कर सकें, वह हमें कर देनी चाहिए।

कभी क्या ख्याल हो जाता है कार्यकर्ताओं का कि लोग चाहते हैं, उसकी व्यवस्था करनी कि नहीं करनी।

हां, वह सोचना चाहिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

होता क्या है कि हमारा चित्त जो है कभी भी, ठीक बिंदु जो है, उसको नहीं पकड़ता। या तो इधर या उधर। या तो हम चित्रों की पूजा करेंगे और या फिर हम चित्र से डरने लगेंगे कि कहीं चित्र देने से कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए। यह हमारा जो माइंड है। यानी या तो हम मूर्तियां बनाएंगे या मूर्तियां तोड़ेंगे, लेकिन मूर्तियों को सहज रूप से स्वीकार न करेंगे। मूर्ति मूर्ति है, न उसे पूजा की जरूरत है, न उसको फोड़ने की जरूरत है। एक चित्र चित्र है, न उसकी कोई पूजा करने की जरूरत है और न उससे बचने की।

मुसलमान इतने बचे, कि अगर आप मोहम्मद का चित्र बना दो तो मार-पीट हो जाए अभी, अभी दंगा हो जाए फौरन। मोहम्मद का चित्र भर आप टांग लो घर में, आपके घर में आग लगा देंगे। अब यह दूसरी बेवकूफी खड़ी हो गई न। और इसी से खड़ी हुई। खड़ी इससे हुई कि कहीं मूर्ति की पूजा न शुरू हो जाए। तो वह मूर्ति-पूजा के डर से, कहीं कोई चित्र न बना ले मोहम्मद का।

स्वामी सत्यभक्त ने एक मंदिर वहां वर्धा में बनाया। तो सभी धर्मों की मूर्तियां रखीं, उसमें उन्होंने मोहम्मद की मूर्ति बना ली। तो वह झगड़ा-फसाद हो गया। फिर आखिर वह मूर्ति हटानी पड़ी वहां से। क्योंकि वे मोहम्मद का चित्र नहीं बना सकते, मूर्ति बनाने की बात तो बहुत दूर। तो मोहम्मद का कोई आथेंटिक चित्र उपलब्ध नहीं है। अब यह दूसरी बेवकूफी हो गई न।

मैं कहता हूं, चीजों को सरलता से क्यों नहीं लेते? चित्र चित्र है, उसमें क्या है? न पूजा करने की जरूरत है और न उससे घबड़ाने और डरने की जरूरत है।

असल में कार्यकर्ताओं के दिल में इसका एक ख्याल बंधा हुआ है कि आप ऐसे होने चाहिए।

हां, वह भी बड़ा मुश्किल है, वह भी बड़ा मुश्किल है। वह भी हमें तोड़ना पड़े। वह हमें तोड़ना पड़े।

अब इतना सुन कर भी हमारे ख्याल में यह होता है कि आप किसी के लिए फोटो क्यों खिंचवा रहे हैं? आपको क्या जरूरत है फोटो की? आपको क्यों शौक है फोटो का?

हां, ये सारी बातें हमें समझ लेनी चाहिए। ये सारी बातें हमें समझ लेनी चाहिए। हमारी जरूर धारणा है कि कैसा मुझे होना चाहिए।

साधु कैसे होने चाहिए, वह भी हमारे ख्याल में है।

हां। तो जो-जो हम तय किए हैं हजारों साल से, मैं वैसा आदमी बिल्कुल भी नहीं हूं। तो वह तो आपकी धारणा जगह-जगह टूटेगी, उसे साफ ही कर लेना चाहिए कि मैं उस जैसा आदमी कहीं भी नहीं हूं। मैं उन दो व्यक्ति में कहीं भी खड़ा नहीं होता। तो न तो मुझे इसमें भय लगता है कि कोई फोटो ले जाए। इसमें कौन से भय का कारण है?

अगर कोई फोटो फाड़ दे तो?

तो फाड़ दे, उसमें कोई भय नहीं है। उस पर थूक दे, उसको जूते में डाल दे, तो क्या बनता-बिगड़ता है!

उसकी पूजा करे तो?

कोई पूजा करे तो... असल में पूजा करने वाला जो मन है उसके विरोध में मैं लड़ रहा हूं। और अगर कोई पूजा करे तो हम क्या कर सकते हैं? इसमें क्या है, ठीक है, उसकी मर्जी है। पूजा करने वाले मन के विरोध में हमारी लड़ाई चल रही है कि पूजा करने की वृत्ति नासमझी से भरी है। फिर भी कोई पागल है तो वह पागल है, पूजा करे तो करे, इससे क्या लेना-देना! और मेरे फोटो की नहीं करेगा तो किसी और के फोटो की करेगा। उससे बनता क्या है? यानी वह पूजा करने वाला मन है तो वह करेगा पूजा। और यह जो विरोध करता है, जो कहता है कि कहीं पूजा का डर है, यह पूजा ही करने वाला मन है, यह कोई दूसरा मन नहीं है। यानी जो पूजा करने वाली बुद्धि है जिसकी...

अब वे जगह-जगह मुझे आकर कहते हैं कि कहीं आपकी बात का संप्रदाय न बन जाए। तो मैंने कहा, यह सांप्रदायिक मन है, यह जो भय की बात कर रहा है। यानी बड़ा मजा यह है कि यह आदमी किसी संप्रदाय में खड़ा हुआ है और कहता यह है कि कहीं संप्रदाय न बन जाए। यह आदमी संप्रदाय तोड़ कर यह बात विचार करे तो ही समझने वाली बात है कि ठीक है, यह ठीक बात कह रहा है। यह संप्रदाय में खड़ा हुआ है भलीभांति। और इसको जो भय होता है वह भय इसका नहीं है कि सांप्रदायिक स्थितियां और न बनें। भय इसको हमेशा यह है कि इसके संप्रदाय का एक काम्पिटीशन और खड़ा होता है। इसको भय सिर्फ यह है बुनियाद में कि यह एक संप्रदाय और खड़ा होता है, तो मेरे संप्रदाय के वैसे ही तो काम्पिटीटर पचास हैं, यह इक्यानबे हुआ। उसका डर... संप्रदाय से भयभीत नहीं है वह; संप्रदाय में तो वह खड़ा ही हुआ है। उसका डर है। उसका डर है।

तो हमें सारी बातें करनी चाहिए, साफ समझनी चाहिए।

इसलिए एक छोटा सा कैंप ले लिया जाए।

कैंप लेंगे। जरूर एक कैंप लिया जाए। वह अच्छा होगा। एक पच्चीस-तीस मित्रों के लिए। वह सारी बात साफ होनी चाहिए। मेरे संबंध में भी सारी बात साफ होनी चाहिए।

इससे, आप जो बात कहते हैं, वह भी ठीक चलेगी। जो आपका कंसेप्ट है वही हम तक, यानी हम तक आए, तब हम दूसरे तक पहुंचा सकते हैं।

वह तो ठीक ही है।

होता क्या है कि आप कुछ कहते हो और पहुंचाते कुछ और हैं हम। तो आपके संबंध में गलत धारणा हम ही बना रहे हैं।

हां, होता है, होता है।

ग्यारहवां प्रवचन

ध्यान-केंद्रः मनुष्य का मंगल

हमारा विचार है कि एक मेडिटेशन हॉल और एक गेस्ट हाउस बनाना है। तो मैं आपको यह पूछना चाहता हूं कि ऐसा हम लोग जो फंड इकट्ठा करने का सोच रहे हैं, जो पंद्रह लाख रुपये करीब का हमारा अंदाज है, वह करने का पक्का मकसद क्या है? और ऐसा करने से वह जीवन जागृति केंद्र, उस सब जगह से क्या फायदा है? उसके लिए कुछ समझाएं।

यह तो बड़ा कठिन सवाल पूछा।

आपने तो सभी कठिन सवालों के जवाब दिए हैं।

बहुत सी बातें हैं। एक तो, जैसी स्थिति में आज हम हैं ऐसी स्थिति में शायद दुबारा इस मुल्क का समाज कभी भी नहीं होगा। इतने संक्रमण की, ट्रांजिशन की हालत में हजारों-सैकड़ों वर्षों में एकाध बार समाज आता है--जब सारी चीजें बदल जाती हैं, जब सब पुराना नया हो जाता है। ये क्षण सौभाग्य भी बन सकते हैं और दुर्भाग्य भी। जरूरी नहीं है कि नया हर हालत में ठीक ही हो। पुराना तो हर हालत में गलत होता है, लेकिन नया हर हालत में ठीक नहीं होता। और जब पुराना टूटता है, तो हजार नये विकल्प, अल्टरनेटिव्स होते हैं। दुर्भाग्य बन सकता है, अगर गलत विकल्प चुन लिया।

तो इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। मैं पुराने के हर हालत में विरोध में हूं। लेकिन नये, हर नये के हर हालत में पक्ष में नहीं हूं। पुराना तो जाना चाहिए। उसे क्षण भर रुकने की कोई जरूरत नहीं है। असल में हम पुराना ही उसे कहते हैं जो अपने समय से ज्यादा रुक गया है। जिसे अब नहीं होना चाहिए था। लेकिन जब पुराने के टूटने का क्षण आता है, तो हमारे जैसी कौमें बहुत मुश्किल में पड़ जाती हैं, जिन्होंने पुराने को कभी तोड़ा ही नहीं है। तो हम पुराने की तोड़-फोड़ भी बहुत स्वस्थ चित्त से न कर सकेंगे। यानी पुराने को जब तोड़ेंगे तो हम फीवरिश हालत और बुखार की हालत में ही तोड़ पाएंगे।

लेकिन ध्यान रहे, बुखार की हालत में पुराना तो टूट सकता है, लेकिन नया निर्मित नहीं हो सकता। नये के निर्माण के लिए बड़ा शांत और स्वस्थ चित्त चाहिए।

तो इस समय सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण यह नहीं है कि हम क्या करें और क्या न करें। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि कुछ भी करने का निर्णय लेने के पहले मुल्क के पास एक शांत, स्वस्थ चित्त हो। यह तो दूसरी बात है कि हम फिर क्या करेंगे और किस रास्ते पर जाएंगे। यानी सवाल ऐसा नहीं है कि हम एक चौराहे पर खड़े हुए हैं अपनी जिंदगी की गाड़ी को लेकर, तो सवाल यह नहीं है कि हम किस रास्ते पर मुड़ें, सवाल यह है कि ड्राइवर होश में है या नहीं है। यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर ड्राइवर बेहोश है तो कोई भी रास्ता खतरे में ले जाने वाला है। और चुनाव कौन करेगा कि रास्ता कौन सा ठीक है?

सब तरफ--चाहे राजनीति हो, चाहे नीति हो, चाहे साहित्य हो, चाहे कला हो--जीवन की सब दिशाओं में पुराना टूटने के करीब है, टूट रहा है। हम कुछ न भी करेंगे तो भी टूट जाएगा। नये का चुनाव करना ही होगा। यानी अभी कुछ ऐसा नहीं है कि नये का चुनाव करने में हमें कोई चुनाव करना है, यह बिल्कुल मजबूरी की हालत खड़ी हो गई है कि नये को चुनना ही पड़ेगा। पुराने ने अपने होने का सारा कारण खो दिया है। अब उसका कोई आधार नहीं रह गया।

लेकिन दो तरह के लोग हैं मुल्क में। एक वे हैं जो डर के कारण पुराने को बचाए रखना चाहते हैं कि कम से कम परिचित है, पहचाना हुआ है। एक वे हैं जो किसी भी कीमत पर कुछ भी नया आए, पुराने को तोड़ देने को आतुर हैं कि कुछ भी नया आ जाए तो ठीक होगा।

मैं उन दोनों में से नहीं हूं। और इसलिए मेरी तकलीफ बहुत ज्यादा है। मुझे लगता है कि नया तो चुनना है, चुनना ही पड़ेगा, रोज चुनना चाहिए, लेकिन कौन चुनेगा? और इधर सैकड़ों वर्षों से यह भूल होती रही है।

जैसे कि हम उदाहरण के लिए लें--उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले कोई पचास साल पूरा मुल्क इस आशा में जीया कि आजादी आएगी और सब ठीक हो जाएगा। और जिनको हम बहुत बुद्धिमान लोग कहें, उन्होंने भी मुल्क को यही समझाया कि सारी परेशानी का कारण अंग्रेज है; अंग्रेज गया कि सब परेशानी गई।

सरासर झूठी यह बात थी। लेकिन उन्होंने शायद झूठ समझ कर न कही हो, उनकी बुद्धि को दिखाई नहीं पड़ रहा था। तो उन्नीस सौ सैंतालीस पर हमने सारी आशा टिका कर रखी कि आजादी आई कि सब आ जाएगा; अंग्रेज गया कि सब परेशानी गई, क्योंकि परेशानी का कारण वह है। गुलामी सब परेशानी का कारण है, वह हट गई तो सब ठीक हो जाएगा। इसलिए पंद्रह अगस्त की सुबह जब हम उठे तो हमने देखा कि सब ठीक हो गया कि नहीं हो गया। लेकिन वह कुछ भी ठीक नहीं हुआ था।

फिर बीस साल गुजर गए। अब हम जानते हैं कि अंग्रेज हमारी सारी मुसीबत का कारण न था। एकाध कारण रहा होगा। और वह एकाध कारण भी इसीलिए मौजूद था कि हमारे बाकी मुसीबत के कारण उसको मौजूद रखने में सहारा दे रहे थे। वे सबके सब कारण मौजूद हैं। लेकिन मुल्क के दिमाग में फिर कोई फर्क नहीं पड़ा।

अब जैसे मुल्क कह रहा है कि समाजवाद आ जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा। अब हम फिर वही पागलपन की बात कर रहे हैं। समाजवाद आकर भी फिर हम ऐसे ही चौंक कर खड़े रह जाएंगे--यह तो कुछ भी न हुआ! जैसे हमने पीछे यह समझा था कि अंग्रेज की गुलामी सारे उपद्रव का कारण है। जब कि यह बात बिल्कुल सच न थी। बहुत मुश्किल है यह बात कहनी कि अगर अंग्रेज की गुलामी न होती, तो हम इतनी भी अच्छी हालत में होते जितनी अच्छी हालत में वे हमें छोड़ कर गए हैं। क्योंकि अंग्रेजों ने जब इस मुल्क को अपने हाथ में लिया था तो हमारी हालत तो इतनी बदतर थी जिसकी हमें कोई कल्पना नहीं है। वे जब छोड़ गए हैं तो उससे बहुत बेहतर हालत में छोड़ गए हैं। अब हमें एक ख्याल लग रहा है कि पूंजीवाद किसी तरह नष्ट हो जाए। सारी बीमारी की जड़ वह है। उसे नष्ट करके हम फिर एक मुसीबत में पड़ेंगे। और हमको लगेगा कि पूंजीवाद तो नष्ट हो गया, लेकिन जो सपने हमने संवारे थे वे नहीं आए। वे नहीं आ सकते हैं। ऐसे नहीं आते हैं।

मुल्क के पास एक विचार करने वाला मस्तिष्क नहीं है, जो चीजों को उनकी गहराई में देखे, और खोजे, और समझे। और चीजें इतनी अन्यथा हैं जिसका हमें एकदम से पता नहीं चलता। अगर एक बड़ा मकान है और उस मकान के चारों तरफ छोटे-छोटे झोपड़े हैं, तो कोई भी आदमी चौगड्डे पर खड़े होकर यह कह सकता है कि झोपड़ों को छोटा कर-कर के यह मकान बड़ा हो गया है। और यह बात सबको ठीक मालूम पड़ेगी कि यह बात ठीक है।

लेकिन यह बात बिल्कुल ही गलत है। और उलटी बात सच है। ये दस छोटे झोपड़े जिंदा हैं सिर्फ इसलिए कि वह एक बड़ा मकान बीच में उठा है, नहीं तो ये जिंदा भी नहीं रह सकते थे, ये होते ही नहीं यहां। क्योंकि एक बड़ा मकान जब उठता है, तो एक राज बनाता है, एक इंजीनियर काम करता है, एक मजदूर मिट्टी ढोता है, कोई गड्ढा खोदता है, कोई लकड़ी काटता है। एक बड़ा मकान जब बनता है तो उसके आस-पास पचास छोटे मकान बड़े मकान को बनाने की वजह से बनते हैं।

लेकिन चौरस्ते पर समझाने वाला नेता कहेगा कि ये छोटे मकान इसलिए रह गए हैं कि यह मकान बड़ा बन गया है। अगर बड़ा मकान न बनता, तो तुम्हारे पास भी बड़े मकान होते। लेकिन आप ध्यान रखें, जिंदगी का तर्क बिल्कुल उलटा है। अगर बड़ा मकान न होता, तो ये झोपड़े ही नहीं होते यहां। बड़ा मकान तो होता ही नहीं, ये झोपड़े भी नहीं हो सकते थे।

बुद्ध के जमाने में मुल्क की आबादी दो करोड़ थी केवल। और अगर गांधीजी जैसे लोगों की बात मान ली जाए तो अब भी मुल्क की आबादी दो ही करोड़ हो सकती है, उससे ज्यादा नहीं हो सकती। आज हिंदुस्तान-पाकिस्तान मिल कर सत्तर करोड़ लोग हैं। ये सत्तर करोड़ लोग कैसे जिंदा हैं? पूंजीवाद ने संपत्ति पैदा की है। लेकिन इसे देखने के लिए कोई बुखार से भरा हुआ चित्त नहीं चाहिए। इसे देखने के लिए बहुत स्वस्थ, शांत चित्त चाहिए। और तब, मैं मानता हूं कि तब हम पूंजीवाद का उपयोग कर सकते हैं समाजवाद लाने के लिए। और अभी हम पूंजीवाद से लड़ेंगे समाजवाद लाने के लिए। और पूंजीवाद को तोड़ेंगे समाजवाद लाने के लिए। जब कि मेरी समझ ऐसी है कि पूंजीवाद जब पूरी तरह सफल होता है तो अनिवार्यरूपेण समाजवाद में परिणत होता है। समाजवाद जो है पूंजीवाद का अगला कदम है। लेकिन इसके लिए तो बड़ी समझ और बड़ा शांत चित्त चाहिए।

यह एक उदाहरण के लिए मैंने बात कही। ऐसा मुल्क की पूरी जिंदगी सब तरफ से उलझ गई है--चाहे राजनीति हो, चाहे धर्म हो, चाहे नीति हो, चाहे कुछ भी हो। फिर मेरा यह आग्रह नहीं है बहुत कि हम इसकी फिकर करें कि जो ठीक हमें लगता है वह मान लिया जाए। ज्यादा फिकर इस बात की करने की है कि ठीक को समझा जा सके, इस योग्य चित्त पैदा किया जाए। अगर वह चित्त यही ठीक समझे कि ऐसा करने से ठीक हो जाएगा, तो वैसा किया जाए। लेकिन ठीक और गलत का निर्णय करने वाला शांत मन मुल्क के पास नहीं है।

और जरूरी नहीं है कि पूरे मुल्क के पास शांत मन हो तब कुछ हो। जिंदगी बहुत थोड़े से लोग चलाते हैं; बहुत थोड़े से लोग जिंदगी को चलाते हैं। अगर हम मनुष्य-जाति में एक दो सौ नाम काट दें, तो मनुष्य-जाति वहीं होगी जहां कि दो लाख साल पहले आदमी था। वह अभी झाड़ से उतरना भी नहीं सीखा होगा आदमी ने। एक दो सौ आदमियों की प्रतिभा सारे जगत को गति दे जाती है।

तो इधर मेरे मन में यह निरंतर चलता है कि देश के सारे प्रमुख नगरों में ध्यान-केंद्र हों। जहां हम इसकी चिंता नहीं कर रहे हैं कि क्या ठीक है, जहां हम इसकी चिंता कर रहे हैं कि कुछ लोग क्लैरिटी को उपलब्ध हो रहे हैं, उनका मन शांत हो रहा है और चीजों को देखना शुरू कर रहा है कि चीजें कैसी हैं। न उनका पक्षपात काम कर रहा है, न उनके अपने कोई पूर्वाग्रह काम कर रहे हैं, उनके पास सिर्फ ठीक देखने वाली दूरदृष्टि है, उससे वे देखना शुरू कर रहे हैं।

अगर मुल्क के सारे बड़े नगरों में हम थोड़ी सी छोटी जमात भी चीजों को ठीक देखने वाली पैदा कर सकें, तो इस संक्रमण के काल में उसके बहुमूल्य उपयोग होंगे। और मैं मानता हूं शायद वह सर्वाधिक मूल्यवान बात सिद्ध हो।

तो इसलिए कि ठीक शांत चित्त के लिए हम हवा, भूमि और व्यवस्था दे सकें। अब उस व्यवस्था जुटाने में बहुत सी बातें होंगी। जैसे ध्यान-केंद्र के लिए कहा, मेडिटेशन हॉल के लिए कहा। एकदम जरूरी है कि सारे बड़े नगरों में ऐसे भवन हों, जो न हिंदू के हैं, न मुसलमान के हैं, न ईसाई के हैं। जो सभी मनुष्यों के लिए हैं। और जो भी वहां शांत होना चाहता है उसके लिए हैं। उन भवनों में शांति के लिए सब तरह की व्यवस्था की जा सकती है। छोटे बच्चों के लिए वहां अलग व्यवस्था की जा सकती है। उस तरह का साहित्य निर्मित किया जा सकता है जो छोटे बच्चों को ध्यान में ले जाने में सहयोगी हो सके। और हजार उपाय किए जा सकते हैं।

अब उपाय का मामला ऐसा है कि अगर आज कोई पश्चिम की पेंटिंग उठा कर देखे, तो उसे ऐसा लगेगा कि जरूर रुग्ण चित्त से पैदा हुई है।

अभी मैं पूना में जिस घर में मेहमान था, वहां दो पेंटिंग वे ले आए थे। वे काफी पैसे खर्च करके लाए थे। पेंटिंग अच्छी भी थी। उन्होंने मुझसे पूछा, आप क्या कहते हैं? तो मैंने कहा कि मैं कुछ नहीं कहूंगा, तुम इस पेंटिंग के पास आधा घंटे के लिए बैठ कर इसे देखते रहो। और आधा घंटे बाद तुम्हारा मन कैसा होता है वह मुझे बता दो।

तो आधा घंटा तो बहुत दूर है, वह जो पेंटिंग थी उसे पांच मिनट भी गौर से देखने में आपका सिर घूमने लगेगा और ऐसा लगेगा कि आप पागलखाने में हैं। उसका टोटल इफेक्ट पेंटिंग का जो है वह सूदिंग नहीं है।

अगर पिकासो की एक पेंटिंग देख कर कोई थोड़ी देर उस पर ध्यान करे, तो वह पागल हो सकता है, शांत नहीं। लेकिन एक बुद्ध की मूर्ति पर कोई पांच मिनट बैठ कर ध्यान करे, तो वह पागल भी हो तो भी भिन्न और शांत होकर लौटेगा। मूर्ति के माध्यम से या पेंटिंग के माध्यम से हमने शांति का इंतजाम किया। दरवेश फकीरों के नृत्य हैं। अब मैं चाहता हूं कि ऐसे हॉल होने चाहिए सारे मुल्क में। नाच तो हम रहे ही हैं, सारी दुनिया नाच रही है। और दुनिया को नाचने से नहीं रोका जा सकता। और जो कौम नाचने से रुकेगी, उसको भारी नुकसान होने शुरू हो जाएंगे। लेकिन नाच ऐसा भी हो सकता है कि नाचने वाला नाचने में शांत हो और ऐसा भी हो सकता है कि नाचने में अशांत हो। मूवमेंट और रिदम की बात है। ऐसा नाच हो सकता है कि कामुकता से भर दे। और ऐसा नाच हो सकता है कि कामुकता के बाहर कर दे। देखने वाला भी देखते-देखते कामुक हो जा सकता है।

अभी एक लड़की लंदन से लौटी और उसने मुझे कहा कि वह हिप्पी.ज के एक नाटक को देखने गई। तो वे नाच रहे हैं, और फिर नाचते-नाचते उन्होंने कपड़े फेंक दिए हैं और वे नग्न हो गए हैं। और उनसे मोहाविष्ट होकर हॉल में कम से कम बीस परसेंट लड़के और लड़कियों ने, युवक और युवतियों ने कपड़े फेंक दिए हैं और नग्न हो गए हैं--हॉल में अंदर, देखने वाले। तो वह कहने लगी, मैं बहुत हैरान हुई कि यह क्या हो रहा है! क्योंकि यहां तक भी ठीक है कि कोई नाच रहा है, नंगा हो गया है, ठीक है। लेकिन हॉल में देखने वाले को क्या हो रहा है!

नहीं, नाच आपके भीतर कुछ करेगा। जो भी आप देख रहे हैं वह आपके भीतर कुछ करेगा।

दरवेश फकीरों के नृत्य हैं, अगर उन्हें कोई आधा घंटे तक देखता रहे, तो वह पाएगा कि सारे मन की चिंता विलीन हो गई है। क्योंकि वह जो मूवमेंट है, वह जो गति है, वह इतने वैज्ञानिक हिसाब से निर्मित की गई है कि आपके मन को थपकी देती हो, शांत करती हो।

तो मेरे लिए मेडिटेशन हॉल बहुत और अर्थ रखता है। वहां हम उस तरह के चित्रों की व्यवस्था करें कि जिन्हें देख कर मन शांत होता हो, स्वच्छ होता हो। उस तरह के नृत्यों की व्यवस्था करें जिन्हें देख कर मन शांत होता हो, स्वस्थ होता हो। उस तरह के गीत की व्यवस्था करें, उस तरह के संगीत की व्यवस्था करें, उस तरह की वीणा वहां बजती हो, उस तरह का शिक्षक वहां पैदा हो, उस तरह का बच्चा भी वहां हो, बूढ़ा भी हो, पति भी हो, पत्नी भी हो। जीवन के सारे पहलुओं को हम वहां छूना शुरू करें।

पुरानी दुनिया ने भी बहुत से ध्यान-भवन पैदा किए थे, लेकिन वे सब पलायनवादी थे, एस्केपिस्ट थे। अगर कोई आदमी मंदिर में जाता है, तो वह जिंदगी से भागना शुरू हो जाएगा।

मैं ऐसे मंदिर चाहता हूं कि जो जिंदगी में और गहराई में ले जाते हों, जिंदगी से भगाते न हों। तो बड़े से बड़ा तो यह है कि ऐसा केंद्र जहां जीवन की सब दिशाओं को छूने के लिए और सब दिशाओं से काम करने के लिए, और मनुष्य को सब तरफ से शांति में डुबकी लगाने के लिए हम कोई व्यवस्था दे सकें। वह व्यवस्था दी जा सकती है। उसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। जिस तरकीब से हमने आदमी को अशांत किया है, वह भी व्यवस्था है। वह भी हमारा इंतजाम है जिसने यह पागलपन पैदा कर दिया है।

तो ध्यान-केंद्र चाहिए। पैसे की बात मैं नहीं जानता; वह ईश्वर बाबू खुद समझें और आप समझें। उससे मुझे मतलब नहीं है कि वह... । इतना मैं जानता हूं कि अगर इस तरह की कुछ व्यवस्था जुटा पाते हैं आप, तो आप आने वाली, इस मुल्क की आने वाली समस्त पीढ़ियों के लिए कुछ काम कर सकेंगे। अपने लिए भी, कुछ मूल्यवान, जिसका स्थायी परिणाम देश की चेतना पर हो सकता है।

ऐसा साहित्य चाहिए... धर्म के नाम पर हमारे पास जो साहित्य है, बिल्कुल कचरा है। यानी उस साहित्य की वजह से, जिनमें थोड़ी भी बुद्धि है, वे धार्मिक नहीं हो पाएंगे। यानी हमारा जो धार्मिक साहित्य जिसको हम कहते हैं, रिपल्सिव है, जिसके पास बुद्धि है उसके लिए। उस साहित्य को पढ़ने के लिए बुद्धिहीनता बहुत अनिवार्य आवश्यकता है। तो ऐसा साहित्य चाहिए जो मुल्क की प्रतिभा को छुए और स्पर्श करे। मुल्क की

प्रतिभा जिसमें पाए कि कुछ रस हो सकता है। उस साहित्य के लिए भी ऐसे केंद्र, प्रचार और विस्तार के लिए आधार बन सकते हैं।

अब हमारे पास बहुत नये साधन हैं जो कभी भी न थे, दुनिया में कभी भी न थे। आज हमारे पास हैं, लेकिन उन साधनों का प्रयोग अभी हम मनुष्य के मंगल के लिए नहीं कर पा रहे हैं। अब बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं था सिवाय इसके कि वे पैदल घूम-घूम कर चालीस साल तक... लेकिन चालीस साल पैदल बुद्ध घूमे तो भी बिहार के बाहर न जा सके, सिर्फ एक दफा बनारस तक गए। इतनी बड़ी दुनिया है। बुद्ध के पास उपाय नहीं था। अगर मेरे जैसे आदमी को भी बुद्ध जैसा ही भटकना पड़े, तो ढाई हजार साल बेकार गए। और जहां तक मामला ऐसा ही है कि बुद्ध जितना काम कर सके उससे ज्यादा काम मैं भी न कर सकूं। लेकिन ढाई हजार साल में जो सारी टेक्नोलॉजी विकसित हुई है, उसका क्या मतलब है? उसका मतलब यह है कि फिल्म ऐसी हो सकती है कि जिस गांव में मैं नहीं गया हूं वहां भी मेरी बात पहुंच जाए। फिल्म ऐसी हो सकती है कि जिस गांव में हम नृत्य की वह व्यवस्था न कर सकेंगे जो हमने बंबई में की है, तो फिल्म उस नृत्य की वहां पहुंच जाए। जरूरी नहीं है कि हम हर गांव में पेंटिंग्स पहुंचा सकें; लेकिन बंबई में जो पेंटिंग्स हमने लगाई हैं अपने ध्यान-कक्ष में, उनको पूरा मुल्क फिल्म के जरिए देख ले। कोई वजह नहीं है। पूरा मुल्क ही नहीं, पूरी दुनिया भी संबंधित हो जाए। रेडियो का माध्यम है, टेलीविजन का माध्यम है। अब हमारे पास ऐसे माध्यम हैं जिनका कि पुराना जगत उपयोग ही नहीं कर सकता था, उसके पास नहीं थे। हमारे पास हैं। हम भी उपयोग कर रहे हैं। लेकिन मंगल के लिए उपयोग नहीं हो रहा है, अमंगल के लिए उपयोग हो रहा है। तो एक बड़ी लड़ाई...

अभी मुझे मिलते हैं लोग, वे कहते हैं कि सिनेमा बंद करो! यह करो बंद!

बंद करने का सवाल नहीं है। जो माध्यम जगत में आ गया वह बंद नहीं होगा। इसलिए सवाल बंद करने का नहीं है, सवाल उसके उपयोग का है। उसका कैसा उपयोग हो। अब सिनेमा जैसी शक्तिशाली चीज का एकदम ही गलत उपयोग हुआ जा रहा है।

तो मैंने एक कहावत सुनी है, फ्रेंच एक कहावत है कि जब भी कोई आविष्कार होता है, तो शैतान सबसे पहले उस पर कब्जा कर लेता है। और वे जिनको हम अच्छे लोग कहें, वे खड़े देखते रहते हैं। और वे यही चिल्लाते रहते हैं कि बड़ा बुरा हुआ जा रहा है, बड़ा बुरा हुआ जा रहा है। लेकिन तुमको कौन रोक रहा है कि तुम उस पर कब्जा मत कर लो? नहीं, वे यही काम करते रहेंगे, वे साधु-सम्मेलन करके तय करते रहेंगे कि रद्दी पोस्टर नहीं लगने चाहिए। लेकिन अच्छा पोस्टर लगाने से तुमको कौन रोक रहा है? और तुम इतना अच्छा पोस्टर क्यों नहीं लगा पाते हो कि रद्दी पोस्टर अपने आप उखड़ जाए और फिंक जाए, उसे कोई देखने न आए। लेकिन वह नहीं; उनकी फिकर यह है कि रद्दी पोस्टर नहीं होने चाहिए। वे चिल्लाएंगे, रद्दी फिल्म नहीं होनी चाहिए। तुम्हें अच्छी फिल्म बनाने से कौन रोक रहा है?

लेकिन हमारी कल्पना में नहीं आता। हम सोच ही नहीं सकते कि बुद्ध जैसा आदमी अगर फिल्म में खड़ा किया जा सके, तो क्या परिणाम होंगे! हम कहेंगे, पहले तो बुद्ध खड़े ही नहीं होंगे उस फिल्म में। क्यों? आखिर बुद्ध बोल सकते हैं, चल सकते हैं, तो बुद्ध का बोलना और चलना फिल्म के द्वारा पूरा मुल्क क्यों नहीं देख सकता? वह सारा मुल्क देख सकता है। लेकिन बुरा आदमी सबसे पहले कब्जा कर लेता है और अच्छा आदमी सिर्फ चिल्लाता रहता है। अच्छा आदमी सदा से इंपोटेंट है, वह बिल्कुल नपुंसक है। वह कुछ नहीं करता, वह सिर्फ चिल्लाता रहता है। वह कहता रहता है, यह बुरा हो रहा है, यह बुरा हो रहा है, वह बुरा हो रहा है। वह करता कभी कुछ नहीं। बुरा आदमी आग लगाता है, अच्छा आदमी बाल्टी पानी लेकर भी नहीं आता। वह इतना ही कहता रहता है, बुरा हो रहा है। यह नहीं होना चाहिए।

मेरी समझ में, अच्छे आदमी को वीर्यशाली बनाने की जरूरत है। बुराई से जो लड़ाई है, वह बातचीत से नहीं हो सकती है। जिन-जिन माध्यम का बुराई उपयोग करती है, उन-उन माध्यम का भलाई को भी उपयोग करना चाहिए।

अब जैसे मैं हैरान हूं! मैं जाऊंगा एक-एक गांव, घूमूंगा, भटकूंगा एक-एक गांव में। अगर मैं किसी गांव में जाऊं और दस हजार लोग भी मुझे सुन लें, तो यह समुद्र में रंग डालने जैसा है, यह कभी रंगीन होने वाला नहीं है। इतना बड़ा समुद्र है! अगर मैं जिंदगी भर मेहनत भी करूं तो भी इस मुल्क के पचास करोड़ लोगों से आमने-सामने नहीं हो सकता हूं। लेकिन अब कोई वजह नहीं है कि आमने-सामने क्यों न हो सकूं! अब हो सकता हूं, जो कि पहले कभी संभव नहीं था। अब यह संभव हो सकता है। तो नवीनतम टेक्नोलॉजी का और साइंस का धर्म कैसे उपयोग करे, इस संबंध में न केवल चिंतन बल्कि व्यवस्था जुटाने की बात है। वह पंद्रह लाख तो बहुत छोटी बात है, उसको शुरू मान कर चलना चाहिए। लेकिन अगर इसका उपयोग हो सके, तो बड़ा क्रांतिकारी काम हो सकता है।

अब बच्चे हैं; बच्चे फिल्म देख रहे हैं, उनको आप मना कर रहे हैं। मैं नहीं मानता कि उनको मना करने की जरूरत है। उनको जरूर फिल्म दिखानी चाहिए। बच्चे फिल्म देखेंगे। लेकिन कोई कारण नहीं है कि ऐसी फिल्म बच्चे क्यों न देखें कि उनकी जिंदगी में रोशनी बन कर आए। आ सकती है। ऐसा गीत क्यों न गाएं, वह भी वे गा सकते हैं। उन्हें गीत चाहिए। अब बच्चे ट्विस्ट कर रहे हैं या नाच रहे हैं या कुछ और कर रहे हैं, जॉज, यह सब चलता है। मैं मानता हूं कि बच्चों को नृत्य होना ही चाहिए। क्योंकि जो बच्चा नाच नहीं सकता वह ब.ूढा हो गया। उसको नाचना ही चाहिए।

लेकिन हम चिल्लाएंगे कि नहीं-नहीं, यह नाच ठीक नहीं है।

लेकिन ठीक नाच कहां है? तो या तो नाच है ही नहीं या फिर गलत नाच है। मैं आपसे कहता हूं, इन दोनों में गलत नाच ही चुना जाएगा। कोई उपाय नहीं है। ठीक नाच कहां है? वह ठीक नाच सामने ले आइए, गलत नाच अपने आप विदा होने लगेगा। उसे फीका कर डालने की जरूरत है। यानी मेरा मानना यह है कि भलाई जो है अभी तक भी आकर्षक नहीं हो पाई है, बुराई अभी भी आकर्षक है। यह आश्चर्यजनक बात है कि बुराई इतनी आकर्षक है और भलाई में कोई आकर्षण नहीं है। आदमी जब मरने लगता है तब वह मंदिर की तरफ जाता है, बाकी वह नहीं जाता। हां, किसी फिल्म टाकी.ज का नाम मराठा मंदिर हो, वह बात अलग है। वहां जाता हो वह बात अलग है। नहीं तो मंदिर, मंदिर वह जब उम्र ढल जाती है और मरने के करीब होता है, तब जाता है। आकर्षक नहीं है, उसने पुकार नहीं दी है उसके प्राणों को। जब वह थकने लगता है और हारने लगता है, जब सब आकर्षण विदा होने लगते हैं, तब कहीं धर्म उसको आकर्षक मालूम पड़ता है। यानी अब तक का सारा धर्म मरे हुए आदमी को आकर्षित करता है, जिंदा आदमी को नहीं आकर्षित करता है। ताकत जिंदा आदमी के हाथ में है।

तो इन केंद्रों को तो मैं बिल्कुल न्यूक्लिअस बनाना चाहता हूं, ऐसे न्यूक्लिअस, ऐसे केंद्र, जहां से हम जीवन की सब विधाओं को, सब डायमेंशंस को स्पर्श करने लगें। तो हम दस-पचास वर्षों में एक बिल्कुल नये समाज के जन्म के लिए कुछ आधार रख सकते हैं। और यह काम... अब मुझे सब तरह के लोग, इधर दस वर्षों से निरंतर बोल रहा हूं, सब तरह के लोग मेरी नजर में हैं--कौन लोग क्या-क्या कर सकते हैं।

अभी मैं एक जंगल में ठहरा हुआ था, और एक मूर्तिकार, जो कभी बहुत प्रसिद्ध था, लेकिन दुनिया से परेशान होकर उस जंगल में जाकर रहने लगा। अब वह इस समय दुनिया में दस-पांच अच्छे मूर्तिकारों में एक है। लेकिन उसके पास मूर्ति बनाने के लिए पैसा नहीं है। फिर भी जो कुछ उसे कहीं से कोई दे देता है, कुछ कर देता है, वह बना कर खड़ी करता जाता है। अब उसके पास इतनी सामर्थ्य है, लेकिन सीमेंट ही नहीं है, कांक्रीट ही नहीं है जिससे वह मूर्ति बना ले। उसने मुझे कहा कि मैं जिस तालाब के पास हूं उसके चारों तरफ ऐसी

मूर्तियां बना देना चाहता हूं। उसके सारे उसने मुझे अपने नक्शे बताए, मॉडल्स बताए। वे इतने अदभुत हैं! लेकिन वह उसके पास पैसे नहीं हैं। मैंने उससे कहा कि मैं कोई केंद्र खड़ा करूं और तुम्हें कहूं, तुम वहां आ जाओ और उस केंद्र के चारों तरफ ऐसी मूर्तियां फैला दो। उसने कहा कि मैं सारी जिंदगी वहां लगा दूं। क्योंकि मुझे और कोई काम नहीं है। मुझे रोटी मिल गई, इसके बाद मुझे कोई काम नहीं है, मैं सारी जिंदगी मूर्तियां खोद डालूं।

मूर्तिकार हैं, संगीतज्ञ हैं। लेकिन वही संगीत बाजार में बिकेगा जो रद्दी होगा, क्योंकि रद्दी आदमी ही सिर्फ खरीदने वाला है। धीरे-धीरे वह संगीतज्ञ रद्दी से रद्दी बेचने लगेगा, क्योंकि बाजार में कमोडिटी उसकी ही है, वही उसका मूल्य है। एक हमारे पास ऐसी व्यवस्था चाहिए मुल्क के प्रत्येक बड़े नगर में, जहां हम श्रेष्ठतम को फ्लावर होने के लिए, खिलने के लिए मौका खोज सकें। और वहां हम श्रेष्ठतम को, जितनी छोटी मात्रा में सही, जन्म दे सकें।

और ध्यान जो है बहुत ही चीजों का इकट्ठा जोड़ है। ध्यान कोई ऐसी चीज नहीं है कि वह एक चीज है कि आदमी चौबीस घंटे कुछ भी रहे और बस एक दफा ध्यान में चला जाए। अब मेरी समझ है कि अगर किसी आदमी को ध्यान में जाना है तो उसके घर की दीवालों के रंग की बदलाहट होनी चाहिए। क्योंकि दीवालों का रंग ऐसा हो सकता है जो कभी ध्यान में जाने ही न दे। अगर आपने लाल और पीले और काले रंग से दीवालें पोत डाली हैं, तो उनके भीतर बैठ कर आप पांच मिनट में, आंख बंद किए हुए भी बेचैन हो जाएंगे। उसने कैसे कपड़े पहने हैं, अर्थपूर्ण है। क्योंकि हम जीते बहुत शरीर के तल पर हैं, आत्मा वगैरह की तो बात होती है, जीते तो शरीर के तल पर हैं।

ये जो केंद्र होंगे, ये जीवन की सब दिशाओं में खोज करें, अन्वेषण करें। कपड़े कैसे हों, मकान की दीवाल का रंग कैसा हो, मकान कैसा हो, मकान के पास दरख्त कैसे हों, सारी चीजों के संबंध में स्पर्श करने की जरूरत है। और जब उन सब पर स्पर्श हो, तो मैं मानता हूं, ध्यान इतनी सरल चीज है जितनी कोई और चीज सरल नहीं है। शायद उसे अलग से करने की जरूरत न रह जाए। अगर भोजन कैसा हो, कपड़े कैसे हों, मकान कैसा हो, बगीचा कैसा हो, उठते लोग कैसे हों, बैठते लोग कैसे हों, बात कैसे करते हों, अगर ये सारी बात के संबंध में एक बात स्मरण रख ली जाए कि कौन सी चीज शांति की तरफ ले जाने वाली होगी, तो जरूरी नहीं है कि उस आदमी को और अलग से ध्यान करने जाना पड़े। यह सब ही उसके भीतर ध्यान का सूत्र बन जाए।

तो मेरे लिए ध्यान का अर्थ भी बहुत और है। और अभी तो मैं जिनको ध्यान की बात कर रहा हूं, वे बिल्कुल ही गलत लोग हैं, क्योंकि वे जिस दुनिया और जिस हिसाब में रहते हैं उससे कोई संबंध नहीं है। लेकिन उनको सुझाव देने का भी सवाल है। वह भी तो नहीं है उनके पास, वे कर भी क्या सकते हैं!

एक पूरा दर्शन तो है मेरे दिमाग में, उसको अगर, जिनको भी ठीक लगता है वे थोड़ी ताकत लगाएं, तो वह पूरा हो जाए। अन्यथा मुझे कोई परेशानी नहीं है, जितना मैं कर सकता हूं, मैं करता चला जाता हूं, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

अब मेरे पास कुछ लोग हैं जिनको मैं कहीं बिठा सकता हूं, जो कि बड़े काम के हो सकते हैं। क्योंकि मैं तो कहीं बैठ नहीं सकता। मेरा कहीं बैठना तो महंगी बात है। मैं चलता ही रहूंगा। पर कुछ लोगों को कहीं बिठाया जा सकता है, जो कि बड़े काम के सिद्ध हो जाएं। पर उनके बिठाने के लिए भी कोई उपाय और व्यवस्था चाहिए।

तो वह आपको सोचना चाहिए। और एक बंबई से शुरुआत करें, एक बंबई में एक मॉडल की तरह खड़ा कर लें। फिर हम देश के और नगरों में उसकी चिंता लें। जो भी महत्वपूर्ण है वह बहुत धीरे-धीरे प्रभावी होता है, वक्त लेता है। मौसमी फूल हम बोते हैं, तो वे महीने भर बाद फूल भी देने लगते हैं और दो महीने बाद समाप्त भी हो जाते हैं। यह कोई प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है कि आज हो जाएगी। और इसलिए मुझे लगता है कि अक्सर

इसीलिए काम नहीं हो पाता। क्योंकि हमारी आकांक्षाएं बहुत मौसमी होती हैं, हम चाहते हैं कि अभी हो जाए। वह अभी नहीं हो पाती तो फिर हम थक कर लौट जाते हैं कि यह अभी नहीं होगी। पर यह तो लंबी यात्रा है। और ऐसी यात्रा है जो अंत कहीं भी नहीं होती है। हम उसे फिर धक्का दे जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं; फिर कोई और उसे धक्का दे जाता है और समाप्त हो जाता है; और यात्रा चलती रहती है। यात्रा अनंत है। पर एक ही ध्यान अगर आदमी की जिंदगी में रह जाए कि उसने मनुष्य के आनंद की तरफ और मनुष्य के मंगल की तरफ कुछ भी धक्का दे दिया था, तो भी वह मैं आदमी मानता हूं कि बड़ी शांति अनुभव करेगा, खुद भी कि मैंने मनुष्य को...

लेकिन अगर हमने यह नहीं किया, तो ध्यान रहे, यह नहीं हो सकता कि आप खाली रह जाएं, धक्के तो आप दे ही रहे हैं। तो आप अशांति की तरफ देंगे, अमंगल की तरफ देंगे। आप जी रहे हैं तो आपके धक्के तो जीवन को लगेंगे ही। अब सवाल इतना ही है कि वे धक्के किस तरफ ले जाते हैं, वे कहां ले जाते हैं--आदमी को मंगल की तरफ ले जाते हैं, शुभ की तरफ, आनंद की तरफ? इससे बड़ी कृतार्थता नहीं हो सकती कि एक आदमी अपने जीवन में कुछ भी सबके मंगल के लिए कुछ कर पाए।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि जब तुम ध्यान भी करो, तो कभी ऐसा मत सोचना कि ध्यान से जो शांति मिले वह मुझे मिल जाए। नहीं तो तुम कभी शांत ही न हो सकोगे। क्योंकि वह मुझे का भाव भी अशांति है। बुद्ध कहते थेः जब तुम्हें ध्यान से शांति मिले, तो तुम यह भी प्रार्थना करना कि सबको बंट जाए। यह मत सोच लेना कि मुझे मिल जाए। क्योंकि वह मुझे मिलने का जो ख्याल है, वह भी अशांति का बुनियादी आधार है। वह बंट जाए, वह सबको मिल जाए। तो बुद्ध कहतेः ध्यान करते वक्त, बैठते वक्त कहना कि जो शांति आए, वह सब में बंट जाए। वह सब तक, दूर-दूर तक फैल जाए। उसमें मेरे मैं को रखना ही मत बीच में। और जब ध्यान से उठो और शांति अनुभव हो, तो यही प्रार्थना करते उठना कि सबका मंगल हो, यह सब तक फैल जाए।

और बड़े मजे की बात है, जो अपने तक रोकना चाहता है, वह सब तक तो फैला नहीं पाता, अपने तक भी पहुंचा नहीं पाता। और जो सब तक फैलाना चाहता है, वह सब तक तो फैला देता है और अचानक पाता है कि सब तक फैलाने में उस तक तो बहुत फैल गई है। उस तक तो फैल ही गई है। वह तो सवाल ही नहीं है, वह तो आ ही गई है।

अच्छा और बुरा, जीवन और मरण, यह सब क्या है? क्यों है? किसलिए है? इसका उपाय क्या? इसको कैसे छोड़ सकते हैं? कैसे समझ सकते हैं? इसको कैसे पा सकते हैं?

असल में हमारे ऐसे जो सवाल होते हैं, सवाल ये नहीं हैं, इन सवालों में कुछ बातें हम मान कर चल पड़ते हैं। एक बात तो हम यह मान लेते हैं कि हर चीज का अर्थ होना चाहिए। यह हम मान कर चल पड़ते हैं कि जो भी चीज है उसका अर्थ होना चाहिए। एक फूल खिला है तो हम पूछते हैंः किसलिए खिले हो? एक सूरज जल रहा है और रोशनी फेंक रहा है, हम पूछते हैंः किसलिए? लेकिन न सूरज जवाब देगा, न फूल जवाब देगा। फूल खिलने में लगा रहेगा, सूरज बिखरने में लगा रहेगा। और हम सवाल पूछने में खराब होते रहेंगे।

यानी आदमी जो सवाल उठाता है, वे सवाल ऐसी नासमझी के हैं, उसमें उसने बुनियाद में ही कुछ नासमझी पकड़ रखी है। हमें पहले से ही मालूम है कि हर चीज में कोई मतलब होना चाहिए। लेकिन आपको ख्याल में नहीं, अगर हर चीज में मतलब हो, तो जिंदगी इतनी बदतर हो जिसका कोई हिसाब नहीं है। जिंदगी में जो भी थोड़ा सा सुंदर है, वह गैर-मतलब का है, परपजलेस है। जो भी थोड़ा सा सुंदर है।

मैं किसी को प्रेम करता हूं। और अगर मैं पूछने लगूंः मतलब क्या है प्रेम करने का? तो बात गई। हम जब पूछते हैं, तो हम सभी चीजों को मतलब की भाषा में पकड़ना चाहते हैं। अगर हम मतलब की भाषा में सब

चीजों को पकड़ेंगे, तो जिंदगी एकदम उदास और बेकार हो जाएगी। जिंदगी का जितना आनंद है वह उन्हीं सब चीजों में है जो गैर-मतलब हैं। अब एक आदमी नाच रहा है, क्या मतलब है? वह कहता है कि नाचना ही मतलब है। एक आदमी गीत गा रहा है, क्या मतलब है? वह कहता है, गीत गाना ही मतलब है। ये पक्षी सुबह गीत गा रहे हैं और आकाश में उड़ रहे हैं, क्या मतलब है? उड़ना आनंद है, मतलब कुछ भी नहीं है।

लेकिन मतलब होना ही क्यों चाहिए? क्या जरूरत है कि हर चीज में मतलब हो? मेरी समझ तो उलटी है। मेरी तो समझ यह है कि जितनी समझ बढ़ती है, जिन चीजों में हम मतलब समझते हैं वे भी गैर-मतलब हो जाती हैं। और आखिर में यह सारा जगत जस्ट ए प्ले, एक लीला रह जाती है; मतलब नहीं रह जाता, एक खेल रह जाता है। लेकिन हमारे दिमाग खेल को स्वीकार नहीं करते, काम को स्वीकार करते हैं। और काम और खेल में फर्क है। काम में मतलब होता है, खेल में मतलब नहीं होता। और मजा यह है कि काम से हम परेशान हैं और काम को ही हम स्वीकार करते हैं। और खेल भी खेल रहे हैं तो उसको भी काम बनाना चाहते हैं। अगर चार बच्चे खेल खेल रहे हैं, तो बड़े-बूढ़े उनसे यह पूछना चाहते हैंः क्या मतलब है? किसलिए खेल रहे हो? क्योंकि बड़े-बूढ़े खेलेंगे भी अगर तो तभी खेलेंगे जब दांव पर कुछ पैसा लगा लें। तो कुछ मतलब रहेगा उसमें--कि हम पचास जीते कि पचास हारे। नहीं तो बेकार क्यों सिर फोड़ना है! कोई फायदा नहीं है।

लेकिन बच्चे खेल रहे हैं और उनकी समझ के बाहर है कि आप मतलब क्यों पूछ रहे हैं! खेलना अपने में काफी है, पर्याप्त है। उसके आगे पूछने की बात कहां उठती है! उसके आगे पूछने की बात इसलिए उठती है कि आपको खेल भूल गया है। आपको खेल का पता ही नहीं है। बस आपको सिर्फ काम रह गया है। दुकान है तो मतलब है, मंदिर है तो मतलब है। आदमी मुझसे पूछते हैं कि किसलिए भगवान के मंदिर में जाएं? और क्या मिल जाएगा हमें वहां? असल में वे मंदिर में भी तभी जाएंगे जब मंदिर भी दुकान सिद्ध हो जाए। वहां कुछ मिले तो वे जा सकते हैं। और अगर यह आदमी इस तरह पूछता रहे, पूछता रहे, तो इसका क्या अंतिम परिणाम हो सकता है? आखिर में वह यही पूछेगा कि मेरे होने का क्या मतलब है? तब फिर आत्महत्या के सिवाय उपाय नहीं रह जाता। यह जो सवाल है न आपका, इसका आखिरी उत्तर आत्मघात है, यह जो सवाल है।

बारहवां प्रवचन

काम के नये आयाम

आप लोग सारी बात कर लें तो थोड़ा मेरे ख्याल में आ जाए, तो मैं थोड़ी बात कर लूं।

एक विचार यह है कि जो आर्थिक तकलीफ हमें होती है यहां पर, आप बाहर में जहां-जहां प्रवचन करके आए हैं, वहां सब मित्रों को निवेदन हम करें कि वे सब थोड़ा-थोड़ा, जितना हो सके, सहयोग करें बंबई के केंद्र को।

अभी जो बहनजी ने बताया उसके ऊपर मैं एक सजेशन देना चाहूंगा कि जितने भी हमारे मित्र हैं या हमारे जो शुभेच्छु हैं, मेंबरशिप टाइप में एक फिक्स्ड एमाउंट रख दिया जाए कि एनुअली इतना देना पड़ेगा सबको। मेरे ख्याल से यह बहुत कुछ हमको मदद दे सकेगा हमारी आर्थिक व्यवस्था को सुधारने में। अगर ग्यारह रुपये एनुअली भी रख दें हम तो कोई बड़ी चीज नहीं है देने की दृष्टि से। तो जो भी हमारे मेंबर्स हैं, हमारे शुभेच्छु हैं, जो समझते हैं कि कुछ अच्छे मार्ग में हम जा रहे हैं, कुछ अच्छे ध्येय के लिए कुछ कर रहे हैं, उनके लिए एनुअली कुछ बांध देना चाहिए कि वह कलेक्शन होता रहे और उससे मेन्टेनेन्स होता रहे।

एक बात ऐसी है कि अब तक अपना आर्गनाइजेशन जो चल रहा है, जो ट्रस्ट बना है और जो ट्रस्टी हैं, वे ट्रस्टी नॉमिनेट कर रहे हैं मैनेजिंग कमेटी को। और वह मैनेजिंग कमेटी काम कर रही है। लेकिन अभी तक इसमें कोई कांस्टिट्यूशन जैसा कुछ है नहीं। यानी कमेटी के जो भी कार्यकर्ता हैं, इनको किसको-किसको क्या-क्या करना है और वे कैसे अपना काम बांटें अंदर आपस में, वह कुछ तय नहीं किया गया है। तो मैं ऐसा सोच रहा हूं कि मैनेजिंग कमेटी का अभी तक का जो भी भंडार हो, वह भंडार एक कमेटी बना कर उसको सौंप दें और जो आजीवन सदस्य हैं अपने, उन आजीवन सदस्य को साथ में लेकर, और भी जो सहयोगी हैं उनको साथ में लेकर एक कांस्टिट्यूशन बनाएं और उसके मुताबिक कुछ काम आगे बढ़े। इलेक्शन का कुछ तत्व आना चाहिए इसमें, सिर्फ नॉमिनेशन से यह न चले। और थोड़े-बहुत जो आजीवन सदस्य हैं वे इलेक्ट करें कमेटी को और जिसको भी काम करना है वह आ जाए।

हमको हफ्ते में एक बार आपको मिलने का वक्त मिलना चाहिए। ऐसी कुछ व्यवस्था हो तो बहुत अच्छा होगा।

तीन-चार बातें हैं। एक तो यह बिल्कुल ठीक है कि मुझसे जो लोग मिलने आना चाहें उनकी कुछ व्यवस्था करनी चाहिए। इसमें दो तरह से हो सकता है। एक तो सरलतम यह है कि सप्ताह में एक दिन तय कर दें, उस दिन मैं दो घंटे बाहर ही बैठ जाऊंगा, जिनको भी आना हो वे आ जाएं। कोई परमीशन का सवाल ही न रहे। एक दिन तय कर लें, उस दिन जिसको भी आकर मिल जाना है, मिल जाए; बैठना है मेरे पास, बैठ जाए। उसके लिए कोई स्वीकृति किसी से लेने की जरूरत न हो।

दूसरा, आपको एक लिस्ट बना लेनी चाहिए। जिन लोगों से आप किसी तरह का भी काम या सहयोग लेते हैं, एक लिस्ट आपको यहां लक्ष्मी के पास छोड़ देनी चाहिए। उसमें आपको प्रिफरेंस मार्क्स लगा देने चाहिए कि

इन व्यक्तियों को तो हर हालत में कभी भी कोई भी स्थिति हो, इनका अगर फोन आता है, तो इन्हें मिलवाना ही है। तो नंबर एक, दो, तीन, आपको ऐसी व्यवस्था कर लेनी चाहिए, ताकि उसको सुविधा हो जाए।

अन्यथा कठिनाई क्या होती है कि अगर दिन में बीस अपाइंटमेंट दे दिए हैं और किसी का फोन आया और समय नहीं है अब मिलने का, तो उसको तो दुख होने वाला है। उसे इन बीस से कोई मतलब नहीं है; यहां समय से कोई मतलब नहीं है; मैं बीमार हूं, इससे कोई मतलब नहीं है; किसी बात से मतलब नहीं है। और उसकी कठिनाई भी ठीक है कि अगर उसने छह महीने में एक दफे मिलने के लिए मांगा है, तो उसकी कठिनाई भी ठीक है कि छह महीने में वह एक दफे मांगे और उसको मिलने को न मिले।

तो एक तो आप यहां एक सूची बना रखें।

और कठिनाई इसलिए खड़ी होती है कि हमारे मन में, अगर जरा सा कोई कुछ काम करता है, तो उसका प्रतिकार लेने की तत्काल तैयारी होती है। अगर किसी के मकान में ध्यान की क्लास चल रही हो, तो इसका बदला भी मिलना चाहिए। यह ध्यान की क्लास कोई आनंद से नहीं चल रही है।

अभी तक आपकी जो कठिनाई है और जिससे आप वर्कर्स खड़े नहीं कर पाते हैं वह केवल एक है। और वह कठिनाई, मेरे साथ अगर आप चलेंगे, तो एक लिहाज से बनी रहेगी। क्योंकि मैं निरंतर समझाता रहता हूं आपको कि अहंकार छोड़ें। वह छूटता तो है नहीं। तो मेरी बात सुन कर आपको लगता है, अहंकार का कोई हिसाब नहीं रखना है। लेकिन आपको अहंकार का हिसाब रखना पड़े, तो आपको ये कठिनाइयां न आएं जो आती हैं। मेरी बात सुन कर आपको जम जाती है कि अहंकार का कोई हिसाब नहीं रखना है, लेकिन जिससे आप हजार रुपया लाते हैं, उसका आपको हजार रुपये का अहंकार पूरा करना चाहिए। नहीं आप करेंगे तो वह परेशानी खड़ी करेगा। यह मिलने-जुलने का उतना सवाल नहीं है बड़ा। वह दूसरे ढंग से करेगा। उसको बैठने के लिए जगह आगे चाहिए। वह मिलने आए तो उसे पहले मिलने का मौका मिलना चाहिए। वह जब चाहे उसको उस वक्त मिलने का मौका मिलना चाहिए।

अगर आप मेरी बात सुन कर हिसाब चलाएंगे तो आपको यह तकलीफ बढ़ती जाएगी। तो आप तो लोगों को देख कर व्यवस्था करें। मेरी बात देख कर व्यवस्था मत करें। आप तो लोगों को देख लें कि जिनसे आपने कुछ लिया है, जिनसे कोई सहायता मांगी है, जिनका कोई आप उपयोग कर रहे हैं, आपको उनके अहंकार को तृप्त करने का इंतजाम करना चाहिए।

मैं किसी के अहंकार को तृप्त करने में सीधा सहयोगी नहीं हो सकता हूं। क्योंकि जिस बीमारी से लड़ने के लिए मैं सारी ताकत लगाऊं, उसको मैं सहयोगी बनूं, यह संभव नहीं है। तो वह आपकी बात है। वह आपको व्यवस्था कर लेनी चाहिए। किन-किन को कष्ट होता है, उनके लिए इंतजाम कर दें। जो-जो आपके लिए सहायता पहुंचाते हैं, उनकी फिकर कर लें। प्रिफरेंस लिस्ट बना लें। वह सारा आप कर लें, वह आपकी बात है। इसमें मुझसे कभी भी भूल कर बात नहीं करनी चाहिए इस संबंध में।

नहीं तो हमारी आकांक्षा यह होती है, हमारी आकांक्षा यह होती है, हमारा रस यह होता है। सब जगह जहां साधु-संतों का कुछ काम चलता है, वह सबका इंतजाम होता है पूरा का पूरा, तो तृप्ति मिलती है। अगर यहां आप आए हैं और यहां बीस लोग बैठे हैं और आपने कोई सहायता की है, तो मुझे कहना चाहिए कि देसाई जी, आप आगे आकर बैठो। वह मैं कभी कहता नहीं। और आप भी नहीं कहते हैं, तो मुसीबत की बात है। मैं कभी कहूंगा नहीं, बल्कि देसाई जी आगे आते होंगे तो उनको रोकूंगा कि आप पीछे ही बैठो, पीछे आए हो तो पीछे ही बैठना चाहिए। पर आपको थोड़ी फिकर करनी चाहिए।

नहीं तो आपको कठिनाई रोज आएगी। क्योंकि जब आप किसी से काम लेने जाते हैं, तब आप इस भूल में मत पड़िए कि वह आपके काम को पसंद करके पैसे दे रहा है या आपकी कोई सहायता कर रहा है या कोई भी तरह की सुविधा जुटा रहा है। ऐसा भी नहीं है कि वह आपके काम को प्रेम नहीं करता, लेकिन वह नंबर दो है सदा, नंबर एक उसका अपना अहंकार है। आपने उसके अहंकार को नंबर दो पर रखा तो आप झंझटें खड़ी कर

लेंगे। फिर वह पच्चीस बहाने खोजेगा। तो जो इसकी मूल जड़ में है वह इतना है कि आपको सारी की सारी फिकर करनी चाहिए, अगर आपको लोगों से सहायता लेते जाना है।

मैं नहीं कहता कि आप लेते जाएं। यह भी नहीं कहता मैं कि यह काम चलाना आपके लिए जरूरी है। यह भी नहीं कहता। लेकिन आपको अगर चलाना है, तो आपको, लोगों के मन को थोड़ी तृप्ति मिले, ऐसी फिकर कर लेनी चाहिए।

आपकी मीटिंग हो तो उनको स्पेशल पास भिजवा दें। आपकी बैठक हो तो उनको स्पेशल निमंत्रण भिजवा दें। आपकी नई किताब छपे तो उनको स्पेशल कापी भिजवा दें। वे यहां मिलने आएं तो उनको विशेष सुविधा दें मिलने की। और भी कुछ हो वह आप उनके लिए विशेष कर दें। तो आपकी इस संबंध की जो शिकायतें हैं वे टूट जाएंगी। और कुछ ऐसा नहीं है कि बहुत लोग ऐसी शिकायतें करते हैं, ऐसा भी कुछ नहीं है। लेकिन अगर चार आदमी शिकायत करना शुरू कर दें तो वे बहुत जल्दी चालीस मालूम पड़ने लगते हैं। क्योंकि वे एक को कहते हैं, दूसरे को कहते हैं, तीसरे को कहते हैं, वे कहते चले जाते हैं।

यहां तो जो भी आता है, मुझे पूछ कर ही उसको टाइम देते हैं। अगर मुझे पूछ कर टाइम देना है तो भी आपको दिक्कत आएगी। क्योंकि मैं जानता हूं यह आदमी फिजूल है, भला उसने आपको दस हजार रुपये दिए हों, और वह आधा घंटा मेरा खराब करेगा, तो मैं तो मना कर दूंगा। आप मुझे पूछें ही मत। आप यह सब इंतजाम बाहर ही कर लें। जिसको मिलाना हो, मिला दें; जिसको न मिलाना हो, न मिलाएं। इसमें मेरी सलाह मत मांगें। क्योंकि मेरी सलाह...

अभी मुझसे ही पूछ कर हो रहा है इसलिए आपको तकलीफ हो रही है। इसमें न तो लक्ष्मी का कसूर है और न किसी और का कसूर है। लक्ष्मी मुझसे पूछ कर जाती है कि यह आदमी वक्त मांगता है इतना, इसको देना है कि नहीं? तो मैं कहता हूं, इतना वक्त नहीं देना है। पांच मिनट कहो कि मिल जाए। वह पांच मिनट में उसको तृप्ति नहीं होती। और पांच मिनट के लायक भी उसके पास कोई बात नहीं है। न उसे कुछ पूछना है, न उसे कुछ करना है।

तो अभी मुझसे पूछ कर हो रहा है इसलिए तकलीफ हो रही है। मुझसे पूछना बिल्कुल बंद कर दें। वह आप जिम्मा ले लें। लक्ष्मी पूछे आपसे, मुझसे न पूछे, तो आपको बिल्कुल तकलीफ नहीं होगी। तब आप व्यवस्थित कर लेंगेः किसको मिलने देना, किसको नहीं मिलने देना। और ऐसा है, जिसने आपके लिए कुछ नहीं किया है वह शिकायत नहीं करता फिरता। इसलिए वह आदमी नहीं मिल पाएगा तो कोई हर्जा, आपको तकलीफ नहीं होगी। चाहे उसको जरूरी रहा हो मिलना। लेकिन अगर वह नहीं मिल पाएगा तो कोई तकलीफ आपके काम में नहीं पड़ेगी। लेकिन एक गैर-जरूरी आदमी, अगर उसने आपके लिए कुछ किया है, वह नहीं मिल पाएगा तो आपको तकलीफ पड़ेगी।

मुझसे पूछ कर चलाइएगा तो तकलीफ जारी रहेगी। इसे बिल्कुल ही आपको मैनेजमेंट पूरा अपनी तरफ से कर लेना चाहिए। तो जरा तकलीफ उसमें नहीं होगी। कहीं तकलीफ नहीं होगी। क्योंकि जो लोग परेशान कर सकते हैं, वे लोग, उनको तो मौका मिल जाता है। जो बेचारे कुछ नहीं कर सकते उनका कोई सवाल ही नहीं है। वे शिकायत भी करने नहीं आते हैं। वे शिकायत करने की हैसियत में भी नहीं होते हैं। और आप उनकी शिकायत का कोई मूल्य भी नहीं मानेंगे। आपको भी शिकायत का मूल्य नहीं है। वह शिकायत के पीछे जो आदमी खड़ा है उसका मूल्य है कि उसने यह किया था, अब हम उसके पास दुबारा कैसे जाएंगे! उसने दस हजार रुपए दिए हैं, अब हम दुबारा कैसे उसके पास जाएं! या जब दुबारा आप मांगने जाएंगे, तब वह सब शिकायतें रख देगा। लेकिन जिसने एक रुपया नहीं दिया, जिस पर एक रुपया देने को नहीं है, न वह शिकायत रखने वाला है, न उसकी शिकायत का कोई मूल्य है। न वह आपके पास आने वाला है, न आप उसके पास जाने वाले हैं। अड़चन केवल इतनी है।

तो इसको आप व्यवस्थित कर लें। इसको मुझ पर छोड़ें ही मत। इसको मुझ पर छोड़ने में कठिनाई होगी। क्योंकि मैं देखता हूं, एक आदमी दस दफे मिल गया है, उससे मैं कह रहा हूं कि वह ध्यान करे, वह वह करने को

राजी नहीं है, वह ग्यारहवीं दफे फिर हाजिर है फोन करके कि मैं मिलने आना चाहता हूं। तो मैं तो उसको मना करूंगा। यह हिसाब मैं नहीं रख सकता हूं कि उसने आपके लिए क्या इंतजाम किया, क्या नहीं किया है।

यह कठिन जरा भी नहीं है, लेकिन इसकी व्यवस्था आप मेरे साथ कुछ भी जोड़ कर रखेंगे, उसमें आपको अड़चन आएगी। और दो-चार लोग सारी बात को चलाते रहते हैं।

अगर मुझ पर छोड़ना है तो फिर आपको इतनी हिम्मत जुटानी चाहिए कि उनको कह देना चाहिए कि मुझसे पूछा जा रहा है। और अगर कोई भी जिम्मेवार है तो मैं जिम्मेवार हूं। तो उनको आपको कह देना चाहिए कि आप क्या करते हैं, इस वजह से आपको नहीं मिलाते। मिलना न मिलना मेरे ऊपर निर्भर है। मुझे लगता है कि मिलना इस वक्त जरूरी है तो मैं इसी वक्त मिल लूंगा। मुझे लगता है कि गैर-जरूरी है, फॉर्मल है... अधिक तो फॉर्मल है मिलने वालों का काम, जरूरी बिल्कुल नहीं है, लेकिन उनको मिलना चाहिए। अगर उनको बिल्कुल छूट दे दें, न रोकें, तो शिकायत नहीं आती, लेकिन वे मेरा पूरा समय खराब करेंगे, वह आपके लिए ज्यादा नुकसान की बात है।

जबलपुर में वैसा ही रखा हुआ था कि कोई रुकावट नहीं रखी थी। तो मैं सुबह से रात तक मिलता ही रहता था। जो आदमी आकर बैठ गया वह तीन घंटे भी बैठा हुआ है, तो भी मैं बैठा हुआ हूं कि ठीक है। फिर लोगों की आदतें बन गईं। मतलब वह रोज उनको नियमित आना चाहिए। तो बंध गए लोग कि वह ठीक पांच बजे जो आने वाला है वह पांच बजे रोज आकर बैठेगा ही। उनको रोकने, उनको भी कष्ट होता है, जो रोज मिलते हैं उनको भी रोकने में कष्ट होगा।

तो तकलीफ यह है कि मुझ पर मत छोड़ें जरा भी, आप अपनी व्यवस्था कर लें। और आप अपनी प्रिफरेंस लिस्ट बना लें और जिन-जिन को मिलवाना है, उनको मिलवाएं; जिनको नहीं मिलवाना है, उनको मत मिलवाएं; सबको मिलवाना है, सबको मिलवा दें।

फिर आपका कैसे ख्याल किया जाए?

उसकी फिकर छोड़ दें, वह उतना बड़ा सवाल नहीं है। वह बड़ा सवाल नहीं है। आपको अड़चन, परेशानी नहीं होनी चाहिए।

दिन में एक-डेढ़ घंटा सबके मिलने का रख दें...

नहीं, मेरी आप बात नहीं समझ रहे, मेरी बात नहीं समझ रहे। आपको अंदाज नहीं है, उस डेढ़ घंटे में आप रोज उन्हीं लोगों को यहां बैठे हुए पाएंगे। मेरा डेढ़ घंटा जरूर खराब करेंगे आप, लेकिन वही लोग रोज यहां डेढ़ घंटे बैठे रहेंगे।

यह बात तो बिल्कुल ठीक है, ऐसा ही होता है, मैंने देखा भी है।

वही लोग रोज डेढ़ घंटे बैठे रहेंगे। मुझे अड़चन नहीं है उसमें भी, वह डेढ़ घंटा निकाल सकते हैं। उसका कोई उपयोग नहीं है। और आप यह सोच रहे हों कि जो शिकायतें कर रहे हैं वे उसमें आएंगे, तो आप गलती में हैं। वे जितने शिकायत करने वाले हैं वे स्पेशल और प्राइवेट और अकेले में समय चाहते हैं। इसमें तो बेचारे वे आ जाएंगे जिन्होंने आपसे कभी शिकायत नहीं की, इस डेढ़ घंटे में, यह भी मैं आपको बता दूं। यह मेरे अनुभव से कह रहा हूं। इस डेढ़ घंटे में वे लोग आएंगे जिन्होंने कभी शिकायत नहीं की है। जो वहां मीटिंग में सुन लेते थे वे यहां आकर बैठ जाएंगे। और जिन्होंने शिकायत की है उनको स्पेशल अलग वक्त चाहिए। वह जारी रहेगा।

क्योंकि शिकायत का कारण मिलने का मामला नहीं है, वे तो मीटिंग में भी मुझे सुन लेते हैं, कैंप में भी सुन लेते हैं। वह उनको पृथकता मिलनी चाहिए, वह उसकी है। तो डेढ़ घंटे में वह तो नहीं होगा।

अभी मैं देखता हूं न, कैंप में दोपहर मिलने का वक्त देते हैं, फिर भी मैं दिन भर मिलता हूं लोगों से उसके बावजूद भी। क्योंकि वे जो खास जिनको आप आदमी कहते हैं, वे कहते हैं, वह डेढ़ घंटा तो सब लोगों के लिए है, हमारे लिए अलग से दस मिनट तो रखिए। उस सब लोगों की भीड़ में वे नहीं आना चाहते हैं। तो वे सब लोग कौन हैं? बड़ा मजा है! वह डेढ़ घंटा मेरा अलग ही खराब होता है। और जिनको चाहिए था वक्त, जो शिकायत करने वाले हैं, उनको सुबह चाहिए। रात ग्यारह बजे तक मैं रोज बात कर रहा हूं कैंप में, वह आपको ख्याल में नहीं है। कि मीटिंग से उठ कर मैं गया, तो साढ़े दस बजे वहां पहुंचता हूं, तो फिर वहां तैयार हैं लोग। सुबह की मीटिंग के बाद गया, लोग वहां तैयार हैं। सुबह आठ बजे से जो शुरू होता है वह रात ग्यारह बजे तक कंटिन्युअस चल रहा है। क्योंकि आपकी तीन मीटिंग चल ही रही हैं, मिलने का वक्त चल ही रहा है, और फिर जिनको स्पेशल चाहिए उनका चल ही रहा है।

अब उसमें कठिनाइयां ऐसी हैं कि जिनके लिए आप वक्त निकालते हैं वे उसमें नहीं आने वाले हैं। और मेरा जरूर वक्त लगवा देंगे आप। उससे कुछ हल नहीं होगा। वह मैं करके देख लिया हूं, उससे कुछ हल नहीं होता। वह तकलीफ तो जो है वह आप नहीं पकड़ते हैं। तकलीफ मिलने-विलने की तकलीफ नहीं है। तकलीफ उनके थोड़े अहंकार को तृप्ति मिलनी चाहिए। उसका आप इंतजाम करें। मिलाने से कुछ नहीं हल होने वाला है। हां, मिलाने में भी उसका इंतजाम कर लें तो उनको तृप्ति होगी, एक।

और ऐसा भी मत सोचें कि इससे मुझे कोई अड़चन होगी। मेरा उतना ही टाइम लगेगा जितना अभी लगता है, उससे ज्यादा नहीं लगेगा। इसलिए ऐसा मत सोचें कि मुझे अड़चन होगी अगर आप व्यवस्था लेते हैं। मुझे अड़चन नहीं होगी। फर्क इतना ही पड़ेगा कि अभी जिनको जरूरी है उनके लिए समय मिलता है, तब जिनके लिए जरूरी नहीं है उनको भी समय मिलेगा, और कोई फर्क नहीं पड़ता, समय तो मेरा उतना ही जाना है। इसलिए, तरु, उसमें दुख की बात नहीं है। समय उतना ही जाना है।

और कष्ट तो ऐसे हैं कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। खाना खाने मैं बैठूंगा, अगर नहीं रोकें तो दस-बीस लोग खाते वक्त इकट्ठे हो जाएंगे, मैं खाना भी नहीं खा पाता। अगर रोकें तो कष्ट होता है। डाक्टर मना कर गया है कि खाते वक्त यहां नहीं बैठने देना है। हिम्मत भाई यहां आकर बैठे थे। वे जब भी आते हैं खाते वक्त ही आएंगे, तब सब सुविधा से बातचीत हो जाती है। ये लोग खाना लेकर झबेर वगैरह बाहर से आए, इन लोगों ने देखा कि हिम्मत भाई बैठे हैं, तो ये लोग दरवाजा अटका कर वापस ले गए कि ये चले जाएं तब। हिम्मत भाई लोगों को कहते फिरते हैं कि मैंने हाथ का इशारा कर दिया कि अभी मत लाओ, अभी ये यहां बैठे हुए हैं। अब वे सब जगह फोन करते फिरते हैं कि अब मैं वहां कदम नहीं रख सकता, क्योंकि मुझे निकाला गया वुडलैंड से।

उनसे कोई बात ही नहीं हुई है। मगर हां, ये लोग खाना वापस ले गए, यह उनके लिए भारी कष्ट की बात हो गई। अब इस सबके लिए क्या करना! यानी कष्ट बड़े अजीब हैं! तो खाना भी मुश्किल हो जाता है। बीस लोग यहां बैठे हैं तो कुछ न कुछ बात चलाएंगे। अगर आप भीतर आते हैं और मैं आपसे यह न कहूं कि आइए, तो भी कष्ट होता है। तो मैं खाना खाते अगर बीस लोगों को आइए भी कहता रहूं, तो भी खाना मुश्किल हो जाता है।

तकलीफें मिलने-विलने की नहीं हैं बड़ी, क्योंकि मैं दिन भर मिल ही रहा हूं। और मांग बढ़ती चली जाती है। मैं देखता क्या हूं कि अगर एक व्यक्ति को आज मिलने दिया, तो वह अभी मुझसे कहता है कि मुझे हर सात दिन में वक्त चाहिए। सात दिन में वक्त देने लगिए, वह कहेगा, मुझे तीन दिन में वक्त चाहिए। उसका कोई कसूर भी नहीं है। उसको अच्छा लगता है, आनंदपूर्ण लगता है। लेकिन इसका इंतजाम कैसे करिएगा?

इसलिए हुआ क्या, इस मुल्क में इसका परिणाम यह हुआ था कि एक नई व्यवस्था हमने दर्शन की इस मुल्क में निकाल ली थी, कि उसमें कुछ बातचीत नहीं करनी, सिर्फ दर्शन करना। मगर दर्शन करने वाले साधु से आपको कोई सहायता नहीं मिल सकती, यह आप ध्यान रखें, दर्शन ही मिल सकता है। अगर मुझे सहायता आपकी करनी है तो फिर मुझे आपको समय देना पड़ेगा। और अगर मुझे आपको समय देना और सहायता करनी है तो हमें समय की च्वाइस भी करनी पड़ेगी, लोग भी चुनने पड़ेंगे, वक्त भी बांटना पड़ेगा, वह सब करना पड़ेगा। और नहीं तो फिर दर्शन ही रह जाएगा, आप आ जाइए, दर्शन करके चले जाइए।

तो रमण महर्षि के पास यही हो रहा था। दिन भर खुला रहता था, कोई तकलीफ नहीं थी। लेकिन सहायता क्या होने वाली है? वे बैठे हुए हैं, लेटे हुए हैं अपने तख्त पर और लोग सुबह से शाम तक दर्शन कर रहे हैं। वे सो भी रहे हैं तो भी दर्शन चल रहा है। तो करते रहें आप दर्शन।

मेरी दृष्टि वैज्ञानिक है और मैं सोचता हूं, जिसको सहायता पहुंचानी है, जिसके लिए काम करना है, उसके लिए जरूर वक्त होना चाहिए। लेकिन वक्त भी हमारी आदत और हैबिट नहीं बन जानी चाहिए कि वह कोई हमें रोज उसकी जरूरत है। जब जरूरत हो तब जरूर, उसमें कोई अड़चन नहीं है। मेरे भी ख्याल में है कि किसको जरूरत है। कभी तो मैं भी खबर करवाता हूं कि फलां आदमी को बुला लेना कि वह मिल जाए आकर। क्योंकि मेरी नजर में है कि किसको जरूरत है, क्या जरूरत है।

तो दो बातें हैं, अगर मुझ पर छोड़ते हैं तो यह तकलीफ थोड़ी जारी रहेगी।

और लक्ष्मी की जो सख्ती दिखाई पड़ती है वह उसकी सख्ती नहीं है, वह मेरी व्यवस्था ही है। और जिस व्यक्ति को भी मना करना है वह बुरा लगने लगेगा। और ऐसा नहीं है--यह हमें ऐसा लगता है कि वह प्रेम से बोले--वह बिल्कुल प्रेम से बोले, तो भी मना करेगा तो प्रेम दिखाई नहीं पड़ेगा। और जिसको दिन भर वही करना है उसके भी प्रेम की सीमा है। हालांकि आपको नहीं लगता, क्योंकि आप तो अकेले कर रहे हैं। वह सुबह से दिन भर इसको मिलना है, उसको मिलना है, वह दिन भर उसको वही काम है। कोई घंटा मांगता है, कोई डेढ़ घंटा मांगता है, कोई कहता है कि मुझे तो आधा घंटा चाहिए। अब वह उसको अगर मना करना है... कोई मद्रास से आया हुआ है, कोई कलकत्ता से आया हुआ है, वह कहता है, मैं कलकत्ते से चला आ रहा हूं और मुझे तो एक घंटा चाहिए ही। उसको सुबह से शाम तक मना करना है। और मना करने वाला आदमी एक तो बुरा लगेगा ही जिसको मना सुनाई पड़ेगी उसको, वह कितना ही मीठा करे। और फिर मेरा मानना यह है कि उसकी मिठास भी जल्दी मर जाएगी, क्योंकि वह रूटीन काम है।

इधर मैं बहुत लोगों को वह काम देकर देख चुका। रमण भाई के पास वह काम था, तो वे सब लोगों को लगने लगे कि वे आदमी कठोर हैं। सरल आदमी चाहिए, प्रेमी आदमी चाहिए। जो शिकायत करते थे--अनूप, उनको वह काम दिया, वह अनूप कठोर हो गए लोगों के लिए। अब अनूप लक्ष्मी की शिकायत आज करते हैं। अब क्या, इसको क्या किया जाए? इसको किसको सौंपा जाए? वह काम ऐसा है। मेरी अपनी समझ यह है कि व्यक्ति उतना बड़ा सवाल नहीं है, कुछ काम ऐसे हैं कि वे काम व्यक्ति को उस तरह का ढाल लेते हैं। काम का भी नेचर होता है। जिसको दिन भर मना करने का, रोकने का काम है, वह कठोर दिखने लगेगा और कठोर हो भी जाएगा। वह सारा काम का ढांचा ऐसा है कि वह करेगा क्या! फिर भी मैं कहता हूं कि जो भी रहे उसको सम्हालना है कि वह जितने प्रेम से बन सके उसको... । लेकिन मैं जानता हूं कि इससे कोई शिकायत में फर्क नहीं पड़ता, शिकायत जारी रहती है वैसी ही।

तो मैं यह मानता हूं कि इसको आप सबको यह कहना शुरू कर दें कि यह लक्ष्मी का कसूर नहीं है, किसी का कसूर नहीं है, मेरी व्यवस्था है। मैं जिस व्यक्ति को समझता हूं उसको मैं तत्काल वक्त देता हूं, जिसको नहीं समझता हूं नहीं देता हूं। अगर मैं नहीं देता हूं वक्त, तो समझना चाहिए कि तुम्हें वक्त की बिल्कुल जरूरत नहीं

है और तुम कुछ कर नहीं रहे हो। या तो इतनी हिम्मत जुटा लें और या फिर यह मुझ पर छोड़ें ही मत, यह अपना इंतजाम कर लें। लक्ष्मी से बेहतर कोई सम्हाल सकता हो जिसको लगता हो कि यह मीठा सम्हाल लेगा, उसको बिठा दें, उसमें कोई अड़चन नहीं है। एक व्यक्ति को इसी के लिए रख दें कि वह सिर्फ इतना ही काम करेगा--लोगों को टाइम देने का, नहीं देने का। और तब आपको दो महीने में एक अंदाज हो जाएगा कि उस आदमी की शिकायतें आनी शुरू हो गईं।

कठिनाई जो है वह इकोनॉमिकल है। इकोनॉमिकल का मेरा मतलब यह है कि समय कम है, लोग ज्यादा हैं, इसलिए कठिनाई है। सारी कठिनाई यह इकोनॉमिकल है। दिन में कितने लोगों को आप मिला सकते हैं? प्रचार आप बढ़ाते जाएंगे, लोग बढ़ते जाएंगे, मिलने वाले उत्सुक लोग बढ़ते जाएंगे। मैं अकेला बना रहूंगा। समय की सीमा उतनी ही रहेगी। काम बढ़ाते आप चले जाएंगे, तकलीफ बढ़ने वाली है। तकलीफें बढ़ती नहीं, अगर यहां कोई फीस हो तो तकलीफ नहीं बढ़ेगी। जितने लोग बढ़ते जाएं उतनी मिलने की फीस बढ़ाते चले जाएं, तो आपको कभी तकलीफ नहीं आएगी। नहीं तो तकलीफ...

आप समझ नहीं रहे हैं। मुझे दो सौ आदमी सुनते थे, तब भी मेरे पास टाइम इतना ही था। बीस हजार आदमी सुनते हैं, तब भी मेरे पास टाइम उतना ही है। आप चाहते क्या हैं? ये बीस हजार आदमी मिलना चाहेंगे अब। तो मेरा टाइम तो नहीं बढ़ गया कोई बीस गुना, वह तो उतना का उतना है। तो इन सबको कैसे आप तृप्त करिएगा?

तो दो ही रास्ते हैं। या तो आप इसमें चुनाव कर लें कि जो हमारा काम करता है, आर्थिक व्यवस्था... किसी भी तरह चुनाव कर लें, कोई भी चुनाव कर लें, कि भई हम इस कैटेगरी के लोगों को मिलाएंगे, बाकी को नहीं मिलाएंगे। तो वह कैटेगरी आपकी तृप्त हो जाएगी। एक रास्ता यह है।

दूसरा रास्ता यह है कि मुझ पर छोड़ दें कि जिससे मैं मिलना चाहूंगा मिलूंगा, नहीं तो नहीं मिलूंगा। तो भी एक कैटेगरी हो जाएगी। लेकिन मैं मानता हूं कि मेरी कैटेगरी मतलब की होगी, आपकी कैटेगरी मतलब की नहीं हो सकती है। इसको इस तरह प्रचारित करना शुरू करें कि यह आपके ऊपर निर्भर नहीं है कि आपने चाहा कि मिलना है तो मिल लूंगा मैं।

वह तो कहते ही हैं हम लोग।

नहीं, नहीं, तरु।

हम कहते हैं कि जब ठीक लगेगा तो वे हां बोलेंगे। लोग कहते हैं कि दो-दो महीने से हम फोन करते हैं, नहीं मिलते हैं। तो उन लोगों को भी समझना चाहिए, मदद करनी चाहिए।

न-न-न। मैं यह समझता हूं। नहीं, इसका अभी तो अपने वर्कर्स और मित्रों के ख्याल में नहीं है। जब भी कोई शिकायत करे भविष्य में, तो इसकी दोनों, तीनों, चारों अखबारों में अपने खबर निकाल दें, सारे मित्रों को खबर कर दें--कि आपने मिलना चाहा, इससे जरूरी नहीं है कि मैं मिलूंगा।

यह गुरु की इच्छा पर है।

मेरी इच्छा पर निर्भर है कि मुझे लगेगा कि आपको बिल्कुल वक्त है जरूरी और आपको मिलने के बिना नहीं चलेगा और आपके लिए कोई सहायता पहुंचानी जरूरी है, तो मैं मिलूंगा। इसलिए मुझ पर छोड़ दें। आप इनफॉर्म कर दें यहां फोन से और मुझ पर छोड़ दें। यह चुनाव... तकलीफ तो यह होती है कि मैं मिलना चाहता हूं और कोई रोक रहा है। तकलीफ यह है। मुझे चिट्ठियां आती हैं वे ये हैं कि आप मिलने को तैयार हैं, हम मिलना चाहते हैं, बीच में कोई रोक रहा है। बीच में कोई नहीं रोक रहा है, यह उनको साफ कर दें। इसमें अड़चन कम होगी।

दूसरी बात यह ध्यान में रख लें कि जिन कोई भी मित्रों से आप सहायता लेने जाते हैं, उनको सहायता लेते वक्त भी आप कह दें कि यह अनकंडीशनल है। सहायता लेने के बाद भी उनको बता दें कि इससे कोई कंडीशन नहीं है। मुझ पर कोई कंडीशन नहीं है इसकी। यह आप अपने प्रेम से दे रहे हैं।

अगर वह आदमी कहता है, मैं प्रेम से नहीं दे रहा, तो उसको नोट कर लें--कि हम नोट कर लेना चाहते हैं कि आप प्रेम से अनकंडीशनल देते हैं कि आप सशर्त कंडीशनल देते हैं, कि आपकी कोई कंडीशन पीछे होगी, ताकि हम उसको पूरी करें ताकि आपको कोई अतृप्ति न हो। आप नोट कर लें कि इससे हमने दस हजार रुपये लिए हैं, यह आदमी कहता है कि मेरी कंडीशन है कि जब मैं मिलना चाहूंगा तो मुझे मिलवाना। तो कंडीशन पूरी करें। नॉन-कंडीशनल है सहायता, तो नोट कर लें कि नॉन-कंडीशनल है। तब वह शिकायत नहीं कर सकेगा दुबारा आपको। वैसी कोई व्यवस्था करें। क्योंकि वह तो बढ़ती जाएगी। अंदाज तुम्हें नहीं है, वह संख्या बढ़ती जाएगी लोगों की। हिंदुस्तान के बाहर काम पहुंचेगा, वहां से लोग आएंगे। हिंदुस्तान के कोने-कोने में काम पहुंचेगा, वहां से लोग आएंगे। तो तुम्हें च्वाइस तो करनी ही पड़ेगी किसी तरह की--चाहे धन से करो, चाहे साधना के हिसाब से करो, चाहे बुद्धिमत्ता के हिसाब से करो--कोई हिसाब से कोई कैटेगरी बनानी पड़ेगी कि इनको मिलने देना है। नहीं तो असंभव हो जाएगा।

और मेरी मान्यता यह है कि इसके दो ही उपाय हैं, या तो मुझ पर छोड़ दें, तो बीच में किसी पर जिम्मा मत डालें। वह जो भी आदमी बीच में है वह मुझे ही रिप्रेजेंट कर रहा है, बस मेरी खबर दे रहा है आपको, उससे ज्यादा उसका कोई अस्तित्व नहीं है। तो इसमें अड़चन क्या होती है? इसमें अड़चन यह होती है कि मित्रों की भी इच्छा यह होती है कि कोई दोष आए तो वे खुद ले लें, मुझ पर न डालें। उससे भी अड़चन होती है। उससे भी अड़चन होती है।

नहीं, वह दोष मुझ पर ही डाल दें। आपको कम अड़चन होगी लंबे अर्से में। साल दो साल में लोगों को साफ हो जाएगा कि मैं आदमी ऐसा हूं कि मिलना होता है तो मिलता हूं, नहीं मिलना होता नहीं मिलता हूं। आपकी तरफ से निर्णय नहीं होता मिलने का, निर्णय मिलने का मेरी तरफ से होता है।

गुरजिएफ था, तो महीनों क्या, सालों भी नहीं मिले। और ऐसा भी नहीं था कि न मिले, बुला ले टाइम पर, टाइम दे दे, और न मिले। कि आप हजार मील से यात्रा करके आए हैं, उसने टाइम दिया है, खबर दी है कि ठीक पांच बजे फलां जगह आकर मिल जाओ। और पांच बजे आप बैठे हैं और वह खबर भेज दे कि नहीं मिल सकूंगा। जाहिर हो गया दो-चार साल में लोगों को कि अगर आपको जाना है, इतनी लंबी यात्रा अपनी रिस्क पर कर रहे हैं आप, जरूरी नहीं है उसका मिलना फिर भी। ऐसा भी नहीं कि एकाध आदमी का; पब्लिक मीटिंग रखेगा, और पब्लिक मीटिंग में ऐन वक्त पर जाकर कह देगा कि नहीं बोलूंगा। शिकायत खतम हो गई, थोड़े दिन में लोगों को जाहिर हो गया कि भई ठीक है, इस आदमी को सुनना हो तो यह समझ कर जाओ कि शायद बोले न बोले, आए न आए।

तो अभी तकलीफ क्या होती है, आप मुझे बचाने के लिए अपने ऊपर ले लेते हैं। कहीं कह देंगे कि तरु की गलती हो गई होगी, उसने ऐसा कह दिया; देसाई की गलती हो गई होगी, उन्होंने ऐसा कह दिया; वे तो बहुत प्रेमपूर्ण हैं, बीच में किसी ने बाधा डाल दी होगी।

ऐसा मत कहें। कह दें, वे ही ऐसे आदमी हैं, गलत-सही जैसे भी हैं। वे जिसको मिलना है मिल लिए होंगे, नहीं मिलना नहीं मिले होंगे। और जिससे सहायता लेते हैं उससे कंडीशन की बात कर लें कि भई आपकी कोई कंडीशन हो तो हम याद रख सकें, ताकि पीछे शिकायत न हो। अगर कंडीशनल नहीं है, नॉन-कंडीशनल है, तो हम याद कर लें कि आपकी कोई शिकायत नहीं होगी, एक।

दूसरी बात, व्यवस्था का जो सवाल है उसमें दो-तीन बातें ख्याल ले लेनी चाहिए। एक तो मेरा ख्याल यह है, इलेक्शन या बहुत ज्यादा कांस्टिट्यूशन के मैं पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि मेरा मानना नहीं है कि इलेक्शन से कोई काम हो सकता है। हां, इलेक्शन हो सकता है, और बड़ा काम दिखाई पड़े, क्योंकि इलेक्शन कोई छोटा काम नहीं है। मगर काम नहीं हो सकता। हां, मजा आएगा। और वर्कर्स में रस पैदा हो जाएगा, आगे-पीछे ऊपर-नीचे होने की संभावना हो जाएगी। लेकिन उससे काम नहीं होगा। मैं नहीं मानता हूं कि उससे काम होगा। दुनिया में जो सबसे कम काम करना हो किसी भी व्यवस्था को तो उसको इलेक्शन पर खड़ा करना चाहिए। क्योंकि इलेक्शन ही इतना बड़ा काम है कि फिर और कोई काम बचता ही नहीं करने को। तो मैं नहीं मानता।

मैं तो मानता हूं कि ऊपर से नॉमिनेशन हो, अगर काम करना है। हां, लोगों को तृप्त करना है, सबको तृप्त करना है, तो इलेक्शन बिल्कुल ठीक है। काम दूसरी बात है। सबको तृप्त करना है तो ठीक है। आपके हजार मेंबर्स हैं, इलेक्शन करिए, तो सबको रस आएगा, सब बैठक में भी आएंगे। क्योंकि हराने-जिताने का, पार्टी बनाने का, गुट बनाने का, सब उपाय शुरू हो जाएगा। लेकिन उससे काम-वाम नहीं होगा। काम करना है, तो उससे काम नहीं होता। और सारी शक्ल पोलिटिकल हो जाती है भीतरी अर्थों में।

तो मैं तो कोई इलेक्शन के पक्ष में नहीं हूं। मैं तो सीधे नॉमिनेशन के पक्ष में हूं। उस झंझट में मैं नहीं डालना चाहूंगा। न कांस्टिट्यूशन होने का मैं कोई अर्थ समझता हूं, न कुछ और। यह तो जहां काम नहीं करना है वहां ये सब चीजें बड़ी अच्छी हैं। काम नहीं करना है और काम करते हुए काफी दिखाई पड़ना है--तो लायंस है, रोटरी है--काम-वाम कुछ नहीं करना है, मगर गवर्नर है और डिप्टी गवर्नर है और प्रेसिडेंट है और सेकेंड प्रेसिडेंट है, और चल रहा है। और वे भारी, भारी काम में लगे हुए हैं सब, और काम-वाम कुछ नहीं करना है, काम-वाम से क्या लेना-देना है! तो उसके तो मैं रस में नहीं हूं।

हां, यह मैं जरूर जानता हूं कि कांस्टिट्यूशन बनाएं, व्यवस्था बनाएं, व्यवस्था के अनुसार काम हो सके, इसकी चिंता करें। लेकिन इलेक्शन पर खड़ा करने का सोचें ही मत भूल कर भी, भूल कर भी मत सोचें।

दूसरी बात यह है कि काम के बंटवारे की जरूर चिंता करें। लेकिन हम सब यहां कहते हैं कि बंटवारा होना चाहिए, लेकिन बंटवारा किसको कर दिया जाए? कौन व्यक्ति कौन सा काम करने में उत्सुक है, उसको ऑफर करना चाहिए, जहां इलेक्शन न हो वहां ऑफर करना चाहिए। आनंद भाई को लगता है कि यह काम मैं ईश्वर बाबू से बेहतर कर सकूंगा, तो कमेटी के सामने उनको ऑफर कर देना चाहिए कि ईश्वर बाबू यह काम कर रहे हैं, इससे बेहतर मैं कर सकूंगा। तो मैं मानता हूं कि वह काम इनको दे दिया जाना चाहिए। कमेटी उनको दे दे, छह महीने के लिए दे दे--कि भई ठीक है, ईश्वर बाबू से बेहतर तुम छह महीने करके दिखाओ। अगर यह तुम बेहतर करते हो तो बड़ी खुशी से हम छोड़ देंगे। क्योंकि ईश्वर बाबू भी इसीलिए कर रहे हैं कि वह बेहतर हो सके।

तो मेरा मानना है कि इलेक्शन की जगह ऑफर ज्यादा योग्य और ज्यादा बुद्धिमानी की बात है। इलेक्शन तो बड़ी उलटी चीज है। आप कोशिश करते हैं कि आप चुने जाएं और फिर भी ऐसा दिखाते हैं कि नहीं, आपको पद वगैरह में कोई उत्सुकता नहीं है, वह तो आप काम के लिए उत्सुक हैं। ऑफर बिल्कुल उलटा है। ऑफर

बिल्कुल उलटा है। आप किसी को कहने नहीं जा रहे हैं, आप सिर्फ ऑफर करते हैं अपना कि मैं इस काम को फलां व्यक्ति से बेहतर कर सकता हूं, ज्यादा मेरे पास सुविधा है, ज्यादा इस संबंध का मेरा ज्ञान है, ज्यादा मेरे पास समय है, तो यह काम मुझे छह महीने के लिए, एक्सपेरिमेंटली, कमेटी दे दे। तो आपकी कमेटी उसको नियुक्त कर दे कि ठीक है, यह एक्सपेरिमेंटली छह महीने करो। अगर वह बेहतर करता है तो उससे खींचें काम को, अगर वह बेहतर नहीं करता तो वापस लौटा दें।

ऑफर करने की फिकर करें। इसको मैं ज्यादा योग्य और धार्मिक बात समझता हूं, और ज्यादा विनम्र। दिखती उलटी है। दिखती उलटी है कि एक आदमी खड़ा होकर कहे कि मैं लहरू से ज्यादा बेहतर काम कर सकता हूं। मगर इसको ज्यादा विनम्र मानता हूं कि यह आदमी सीधी-सच्ची बात कह रहा है कि ठीक है। अभी क्या करते हैं आप, उलटा करते हैं। अभी आप यह नहीं कहते कि मैं बेहतर कर सकता हूं। अभी आप यह कहते हैं कि बाबू भाई ठीक नहीं कर रहे हैं। कहना आप यही चाहते हैं कि मैं ज्यादा समझदार आदमी हूं, ज्यादा योग्य आदमी हूं, मैं इसको उससे बेहतर कर सकता हूं। लेकिन अभी कहते आप यह हैं कि बाबू भाई ठीक नहीं कर रहे हैं। इससे कोई हल नहीं होता। इससे कोई हल नहीं होता। ज्यादा ईमानदारी की बात यह है कि आप कहें कि इस काम को मैं बेहतर कर सकता हूं, यह काम मुझे सौंप कर देखा जाए, एक एक्सपेरिमेंट कर लिया जाए।

तो आपको निंदा करने से बचने की सुविधा हो जाए। और आप कर सकते हैं कि नहीं, इसका भी आपको दो दफे सोचना पड़े। क्योंकि कौन नहीं कर रहा है, इसको कहने में किसी को सोचने की जरूरत नहीं है। फलां आदमी ठीक नहीं कर रहा है, इसे कहने में क्या दिक्कत है? लेकिन मैं ठीक करूंगा, तो आपको हजार दफे सोचना पड़े और सोच-विचार कर कदम उठाना पड़े।

तो अगर यह कमेटी में रोज-रोज की आपको एक-दूसरे की चिंता बंद करनी है, तो एक ही उपाय है कि आप ऑफर, अपना निमंत्रण दे दें कि यह काम मैं करके दिखाऊंगा। छह महीने के लिए आपका कमिटमेंट है, आप करके दिखाएं। इसमें कोई अड़चन नहीं है। काम बराबर बांट दिया जाए, जो भी ऑफर दे उसको काम बांट दिया जाए।

और एक बात ध्यान रखें कि जब भी हम काम, कोई भी काम करता है, तो काम के दो हिस्से हैं। एक काम की तकलीफें हैं, वे हमारे ख्याल में नहीं होतीं। एक काम की भूलें हैं, वे हमारे ख्याल में होती हैं। एक काम का परिणाम है, वह भी हमारे ख्याल में नहीं होता। तो जब भी आप सोचने बैठेंगे कि यह मैं कहने जा रहा हूं कि यह काम बाबू भाई से छोड़ कर हर्षद को दे दें, तो मैं सब सोच लूं कि इस काम की तकलीफें कितनी हैं, इस काम की व्यवस्था कैसे होने वाली है, इसके परिणाम कितने हो रहे हैं, जो अभी कर रहा है व्यक्ति वह क्या कर रहा है, पूरी बात समझ लें, तभी आप ऑफर कर पाएंगे, नहीं तो नहीं कर पाएंगे।

तो यह अपने भीतर से यह बात ही छोड़ दें। हमेशा ऑफर लेकर आ जाएं कि यह काम मैं करना चाहता हूं। तो आपको काम मिलना चाहिए। और मैं तैयार हूं इसके लिए, कोई इलेक्शन की जरूरत नहीं है। जो आदमी खुद कह रहा है, अब इससे बड़ी और क्या गवाही हो सकती है कि वह आदमी करेगा, ठीक है। उसमें क्या ऐसी बात है! कोई पच्चीस आदमी वोट करें तब पता चले कि आप योग्य हैं। आप पच्चीस को समझाने जाएं कि मैं योग्य आदमी हूं। इस सबकी क्या जरूरत है? यह तो खड़े होकर आप कह दें कि मेरी यह योग्यता है, यह काम मैं करना चाहता हूं, यह काम मुझे सौंपा जाए। आपको एक्सपेरिमेंटली, पार्ट काम सौंपा जाए, कुछ भी आपको दिया जाए। आप काम करें, डिवीजन कर लें।

तो हम यह बातचीत तो करते हैं कि डिवीजन होना चाहिए, डिवीजन जरूर होना चाहिए, लेकिन किसको काम सौंप दिया जाए? उसके लिए ऑफर करना शुरू करें। एक नया प्रयोग होगा और कीमती होगा। और मैं मानता हूं कि जहां भी मित्र इकट्ठे हों वहां इलेक्शन बुरी बात है। यह इलेक्शन तो दुश्मनी खड़ी करता है,

मित्रता तोड़ता है। ऑफर अच्छी बात है। सीधा ऑफर कर दें। और हिम्मत की बात भी है। और आप पर जिम्मा भी पड़ता है, पीछे आपको कमेटी पूछेगी भी कि भई छह महीने में, जो-जो शिकायतें आपने की थीं, कौन सी तोड़ पाए? काम कौन सा कर पाए? काम जरूर बांटें।

इधर दूसरा मेरा ख्याल यह है कि जो भी एक व्यक्ति काम करता है कोई, उस काम को बांटना जहां तक बने न करें। नये काम हमारे पास बहुत हैं जो शुरू करें। काम की कोई कमी नहीं है। समझ लें कि अभी ईश्वर बाबू पब्लिकेशन का पूरा काम देख रहे हैं। लश्करी जी ने अपनी तरफ से ऑफर दिया है इसलिए मैं खुश हूं, उन्होंने कहा कि यह पब्लिकेशन का काम मेरा अनुभव है, मेरी प्रेस है, मैं इसको देख सकता हूं। पर मेरा मानना ऐसा है कि लश्करी जी को हम एक अलग डिवीजन, एन.एस.आई. का एक पब्लिकेशन अलग शुरू करवा दें। नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय का अलग पब्लिकेशन शुरू कर दें, वह लश्करी जी को सौंप दें। किताबें तो इतनी पब्लिश होने को पड़ी हैं कि वह आप दस अलग पब्लिकेशन करें तो भी पूरी नहीं होने वाली हैं। वह ईश्वर बाबू जो सम्हालते हैं वह सम्हालें। लश्करी जी को एक हम काम दे दें कि वे एन.एस.आई. का पब्लिकेशन शुरू कर दें।

तो दो बातें होंगी। नहीं तो एक आदमी ऑफर भी करे और पुराने आदमी का काम भी छूट जाए और यह आदमी न कर पाए, तो कल सब उलझन में पड़ जाएगा। और छह महीने जिस आदमी को आपने काम के बाहर रखा, वह छह महीने के बाद लेना चाहे, न लेना चाहे, वह उसके सोचने की बात है। नये अपने पास काम इतने हैं कि जो है उसको तो डिवीजन करने की तब जरूरत पड़नी चाहिए जब काम न बचें। अभी काम बहुत हैं। नया पब्लिकेशन शुरू करें।

अभी एक संन्यास का विचार ये लोग करते हैं, अंग्रेजी में पत्रिका शुरू करनी है। नई कमेटी बनाएं। ईश्वर बाबू पर क्यों थोपते जाते हैं?

अच्छा बड़ा मजा यह है कि हम कहते भी हैं कि काम बांटना है और सब काम उन्हीं पर थोपते जाते हैं। जो भी दो लोग, चार लोग काम करते हैं, उन पर थोपते चले जाते हैं। संन्यास निकालना है, उसकी नई कमेटी बना लें।

अभी सापुतारा पर परमानेंट कैम्पस बनाना है, उसकी नई कमेटी बनाएं। वह नई कमेटी पूरा सम्हाले, उसको पुराने से कुछ लेना-देना ही नहीं है। आपके बीच से अलग चार लोग कर दें, वे जानें।

बंबई में मैं चाहता हूं कि आज नहीं कल हमें कोई न कोई छोटा-मोटा कैम्पस बनाना चाहिए बस्ती के बाहर, तो वीक एंड में कम से कम दो दिन आप मेरे साथ रह सकें। एक अलग कमेटी फॉर्म कर दें, वह उसको सम्हालेगी, उससे कुछ लेना-देना नहीं। उसके ट्रस्टी अलग बना दें, आपके बीच से ही। उसके सारे सेक्रेटरी, सब बना दें। पर सब अपाइंट करें, कोई इलेक्शन का वहां भी सवाल नहीं है। एक परमानेंट कैम्पस के लिए बंबई के लिए एक कमेटी बनाएं, वह उनको काम सौंप दें। अगर वे कहते हैं कि अभी हिसाब-किताब की व्यवस्था नहीं होती, तो वे अपनी कमेटी में हिसाब-किताब की अगर कल व्यवस्था करके बता दें, तो हम ईश्वर बाबू से कहें कि यह भी इन पर छोड़ दो, ये व्यवस्था ठीक कर लेते हैं।

तो नये काम की दिशाएं खोज लें। और काम बहुत है। काम का कोई कम का सवाल नहीं है। धीरे-धीरे लैंग्वेज के पब्लिकेशन को अलग कर लें। अब जैसे मराठी का लैंग्वेज पब्लिकेशन है, वह अटक गया है। अलग कमेटी कर लें, वह अलग अपना फंड रे.ज करे, वह जाने। उसको ईश्वर बाबू कोई बाधा देने नहीं जाएंगे बीच में। वह अपना फंड रे.ज करे, अपने फंड व्यवस्थित करे। सारा फंड काम में तो आखिर में एक आ जाने वाला है, तो ठीक है वह अपना अलग करता रहे। मराठी का अलग कर दें, धीरे से गुजराती का अलग कर दें, हिंदी का अलग कर दें, अंग्रेजी का अलग कर दें। धीरे-धीरे बांट दें।

लेकिन अभी तक की सारी तकलीफ यह है कि लेने को कोई तैयार नहीं होता है काम। और ये जो शिकायतें आपके पास आती हैं कि कोई कहता है कि हिसाब-किताब ठीक नहीं है, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ

कहता है। यह मेरा मानना है कि यह आप फैलाते हैं सब जगह। क्योंकि बाजार में एक आदमी कैसे कह देगा कि हिसाब-किताब आपका ठीक नहीं है? और आपसे कह देता है और आप चुपचाप सुन लेते हैं और कह देते हैं कि हां, ठीक नहीं है। बड़ी हैरानी की बात है!

अगर हिसाब-किताब ठीक नहीं है तो उसके लिए ईश्वर बाबू अकेले जिम्मेवार नहीं हैं, आप भी जिम्मेवार हैं। और अगर आपने जोर से कह दिया होता कि नहीं, हिसाब-किताब बिल्कुल ठीक है, यह आप कैसी बात कर रहे हैं? तो वह आदमी शांत हो गया होता। लेकिन आप कहते हैं कि हां, यह बात ठीक है कि हिसाब-किताब ठीक नहीं है। और हिसाब-किताब में क्या ठीक नहीं है उसे कुछ कर नहीं लेते हैं कि उसको व्यवस्थित कर लें। उसमें कौन सा बड़ा मामला है! इसमें कोई भी बड़ा मामला नहीं है। वह जो दूसरा आदमी कह देता है कि हिसाब-किताब ठीक नहीं है, वह इसलिए कह रहा है कि उसे आप जो मांगने गए हैं वह आपको नहीं देना चाहता है। और आप भी हां भर देते हैं वह भी इसलिए कि लौट कर आपको भी यह नहीं कहना पड़ता कि मैं नहीं ला पाया हूं पैसा। हिसाब-किताब ही ठीक नहीं है, तो बात शांत हो गई। वह भी सुलझ गया, उसका देने से बचाव हो गया; आपको लाना था, वह जिम्मेवारी भी आपकी खतम हो गई।

तो यह मैं दो-तीन साल से सुनता हूं कि वह ठीक नहीं है। दो-तीन साल क्या, जब से--दस साल से वही बात है। और वह क्यों ठीक नहीं हो जाता उसका कोई कारण समझ में नहीं आता। उसमें कोई अड़चन नहीं है। अड़चन कुल इतनी है कि पैसे की आपके पास कमी है, तो अगर आप हिसाब-किताब बिल्कुल ठीक रखें तो काम आप बिल्कुल नहीं कर पाएंगे।

अब ऐसा मामला है कि अगर आप ठीक व्यवस्थित आदमी को सारा हिसाब-किताब सौंप दें--बसंतजी भाई बिल्कुल व्यवस्थित हिसाब कर सकते हैं, उनको आप सौंप दें--तो काम में आपको मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि आप काम करेंगे तो अव्यवस्था होगी और अगर बसंतजी भाई को व्यवस्था रखनी है तो फिर काम रुकेगा। आपके पास एक पैसा नहीं है बैंक में और ईश्वर बाबू चालीस हजार रुपये की किताब छपने भेज रहे हैं, तो बसंतजी भाई को रोकना चाहिए कि यह पैसा कहां है? नहीं तो ये चालीस हजार आएंगे कहां से! अब वे किसी से पेपर ले रहे हैं, उसको कह रहे हैं कि महीने भर में पैसा देंगे और तीन महीने तक उसको वे घूम-फिर कर रहे हैं। किसी से छपवा रहे हैं, उसको चार महीने तक घूम-फिर कर रहे हैं। इससे लेकर कहीं उसको दे दिया, कहीं उससे लेकर इसको दे दिया। तो वह हिसाब ठीक हो नहीं सकता है।

अगर आपको हिसाब ठीक करना है तो आपको फंड्स रे.ज करने पड़ेंगे। नहीं तो आप कभी ठीक नहीं कर पाएंगे। आपके पास इतना फंड होना चाहिए कि हिसाब से आप कर सकें। दस हजार रुपये किसी को देना है तो हिसाब से दे सकें। अब वह दस हजार तो हैं ही नहीं आपके पास। तो दो उपाय हैं, या तो गैर-हिसाब से काम चले और या काम बंद हो जाए, हिसाब साफ रहे। क्योंकि अगर आपके पास बैंक में रुपया नहीं है, तो जो हिसाब वाला है वह आदमी कहेगा कि ईश्वर बाबू आप यह चेक कैसा काट रहे हैं? वे चेक काटते रहते हैं, वह लौटता रहता है। हिसाब वाला आदमी कहेगा, यह चेक नहीं काटना चाहिए, क्योंकि पैसा तो है नहीं आपके पास। अब वे कहते हैं, जब तक लौटेगा, आएगा, तब तक पंद्रह दिन का वक्त मिलेगा, तब तक कुछ करेंगे। मगर यह है तो गलत। यह तो मैं भी जानता हूं कि यह गलत है। और जिसके पास से लौटेगा वह कहेगा, भई मामला क्या है? हमसे कह कर जाते हो कि वक्त पर देंगे और यह पैसा तो आता नहीं है।

अगर इसको वक्त पर देना है तो आपके पास है ही नहीं और तब आप अगर हिसाब से चलते हैं तो आप कोई काम नहीं कर पाएंगे। जब पैसा आएगा तब काम होगा, और वह होगा नहीं। अब उन्होंने जो किया हुआ है वह बिल्कुल गोलमाल है। गोलमाल इसलिए है कि उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है उनके पास। तो हम सब उनकी आलोचना कर लेते हैं कि भई यह व्यवस्थित होना चाहिए हिसाब। वे भी हिम्मत करके नहीं कहते कि यह हो नहीं सकता। वे भी कहते हैं कि होना चाहिए। क्योंकि हम सबका मानना है कि यह हिसाब का ठीक होना बड़ी ऊंची बात है। सबका मानना है ऐसा, वह बिल्कुल ठीक होना चाहिए, बड़ी ठीक बात है। तो उसको

कोई इनकार भी नहीं करता कि यह सभी वक्त पर जरूरी नहीं है कि ठीक बात हो। हिसाब का ठीक होना बहुत लग्जरी है। आपके पास जरूरत से ज्यादा पैसा हो तो हिसाब ठीक हो सकता है। जरूरत ज्यादा हो और पैसा कम हो तो आपका हिसाब कभी ठीक नहीं हो सकता। उसमें थोड़ी-बहुत भूल-चूक चलेगी।

तो अभी पैसा बिल्कुल नहीं है और काम भारी है। उन पर पैसा एक नहीं है, लेकिन वे ईश्वर बाबू कहते हैं कि दो लाख का साहित्य बेचा इस साल। और पैसा एक नहीं है, तो वह दो लाख का साहित्य आता कैसे है?

एक किताब छपवाते हैं, उसको बेचते हैं, उसी में से पैसा निकाल कर दूसरी छपवाने की कोशिश में लगते हैं। कभी मीटिंग का पैसा किताब में डाल देते हैं, कभी कैंप का पैसा किताब में। आप कहते हैं कि सब व्यवस्थित होना चाहिए--किताब का पैसा किताब में जाना चाहिए, कैंप का कैंप में जाना चाहिए, मीटिंग का मीटिंग में जाना चाहिए। वह जा सकता है, लेकिन तब मीटिंग होना भी मुश्किल, कैंप होना भी मुश्किल और किताब छपना भी मुश्किल। जो तकलीफ है वह कुल जमा इतनी है कि आपके पास फंड्स कम हैं और काम रोज बढ़ते जाने वाला है।

अब कोई सौ पब्लिकेशन हो गए हैं। और यह कुछ भी नहीं है, अभी लहरू के पास कोई पांच हजार घंटों के रिकार्ड पड़े हुए हैं, जो कि पब्लिश शायद हो ही नहीं सकेंगे कभी। क्योंकि रोज मैं बोलता जाऊंगा, वह पब्लिश आप करेंगे, तो पीछे के वे पचास हजार पेज वह पब्लिश आप नहीं कर सकते हैं।

तो अगर आपको हिसाब ठीक करना है तो फंड रे.ज करिए। लेकिन आप फंड रे.ज करने से बचने के लिए, हिसाब ठीक नहीं है, यह बातचीत करते हैं। यह कभी होने वाला नहीं है। और यह काम ऐसा नहीं है कि आपका फंड कभी भी काम से ज्यादा हो जाएगा, यह मैं आपसे कहे देता हूं। यह कभी होने वाला नहीं है कि आपका फंड आपके काम से ज्यादा हो जाएगा। इसकी कभी भ्रांति में ही नहीं पड़ना। आप कितना ही फंड करो, वह कम पड़ेगा।

तो यह सारी स्थिति समझ कर आपको, जो भी काम करने वाला है, उसके डिफेंस में होना चाहिए बाहर। तो डिफेंस में न होकर आप उसके प्रचारक बनते हैं कि हिसाब कुछ ठीक नहीं है। यह मैं मान ही नहीं सकता, क्योंकि यह पता कैसे चलता है किसी को कि हिसाब ठीक नहीं है। और फिर भी, ऐसा नहीं है कि वे हिसाब नहीं देते, साल भर के बाद तो हिसाब दे देते हैं, ऑडिट हो जाता है सारा। नहीं तो आपका ट्रस्ट नहीं चल सकता है। तो वह जो ऑडिट रिपोर्ट है वह आप सबके हाथ में पकड़ा दें, जो भी कहता है कि हिसाब ठीक नहीं है। और आपको सच में ही रत्ती-पाई का हिसाब ठीक रखना है, तो फंड इतने रे.ज कर लें कि रत्ती-पाई का हिसाब ठीक हो सके।

और मैं मानता हूं, जिस दिन आप फंड रे.ज कर लें, ईश्वर बाबू को मैं बिल्कुल छुटकारा दे दूं, सारा काम आपको सौंप दूं। और अभी अगर सौंप दूं तो सारा काम बंद हो जाएगा। यह मैं जानता हूं, हिसाब आपका बिल्कुल साफ रहेगा। तो मेरे लिए हिसाब से काम बड़ी चीज है। और आपको ऐसा लगता है कभी कि हिसाब बहुत बड़ी चीज है। हिसाब-विसाब का क्या मतलब है? वह हो गया और नहीं हुआ तो भी क्या होने वाला है! आखिरी हिसाब में हिसाब की कोई कीमत नहीं रह जाएगी। काम का सवाल है कि वह काम कैसे बड़ा हो।

तो यह सब जो आपकी बात मैं सुनता हूं उससे मुझे जो हैरानी होती है वह यह होती है कि वह सारी एप्रोच निगेटिव है, पाजिटिव नहीं है। क्या-क्या गलती हो रही है उसकी बहुत चिंता मत करिए, जहां जितना बड़ा काम होता है वहां उतनी बड़ी गलती होती है।

अगर अमरीका में किसी आदमी को सबसे ज्यादा गालियां मिलती हैं तो वह कोई चोर या बदमाश को नहीं मिल रहीं, वह राष्ट्रपति को, निक्सन को मिलेंगी। वह कोई हत्यारे को नहीं मिलने वाली हैं। अगर सबसे ज्यादा बदनामी होती है तो वह राष्ट्रपति की होने वाली है, वह कोई बदमाशों की नहीं होने वाली बदनामी। इस ख्याल में मत रहना कि बदनामी बदमाश की होती है। बदमाश को कौन पूछता है! उसकी बदनामी करने की जरूरत किसको है! तो उसका कारण यह होता है कि जो काम करने जाएगा वह झंझटों में तो खड़ा होने ही

वाला है। प्रॉब्लम्स खड़े ही हुए हैं, वह किसी की बपौती थोड़े ही है, प्रॉब्लम्स तो चारों तरफ खड़े ही हुए हैं। अब कोई वियतनाम निक्सन थोड़े ही पैदा कर लेता है। वियतनाम तो खड़ा ही हुआ है पहले से। अब वह निक्सन फंसेगा उसमें। वह कुछ भी करेगा, फंसेगा। क्योंकि दुनिया डिवाइडेड है, अगर वह अ करेगा तो ब उसके खिलाफ है, अगर वह ब करेगा तो अ उसके खिलाफ है।

इस भ्रांति में पड़ना ही नहीं चाहिए किसी व्यक्ति को कि वह कोई आलोचना से बच जाएगा। काम करना है तो आलोचना होगी। एक ही उपाय है, आलोचना से बचना हो तो कुछ भी नहीं करना चाहिए। फिर आपकी कोई आलोचना नहीं कर सकता। तो इस प्रसन्नता में कभी नहीं रहना चाहिए कि मेरी कोई आलोचना नहीं कर रहा है। उसका मतलब केवल यह है कि आप बिल्कुल बेकार आदमी हैं, और कोई मतलब नहीं है। यानी कोई आलोचना योग्य पा ही नहीं रहा, मामला ही कुछ नहीं पकड़ में आ रहा--क्योंकि आप कुछ हिलाएं-डुलाएं तो कुछ गलती हो, कुछ भूल-चूक हो, कुछ हो।

तो पाजिटिव थोड़ी सी फिकर करें। और काम के नये आयाम खोजें।

और यह भी मैं जानता हूं कि आलोचना और उस सबके पीछे एक और बुनियादी साइकोलॉजिकल कारण है। और वह यह है कि जब एक व्यक्ति, दो व्यक्ति काम करते हैं, तो बाकी व्यक्ति फ्रस्ट्रेट होते हैं, उनके पास कोई काम नहीं होता। काम करने की भी सहज आकांक्षा है, स्वाभाविक है और अच्छी है। अब अगर ईश्वर बाबू सारा काम कर रहे हैं तो ठीक है, अब आनंद भाई क्या करें? या बाबू भाई क्या करें? ठीक है, वे कर रहे हैं। तो उनके पास आलोचना बचेगी। वह भी काम है। पर वे करेंगे क्या?

तो मेरा मानना यह है कि उनको भी काम होना चाहिए। अगर उनको भी आलोचना से रोकना है, व्यर्थ के काम से रोकना है, तो कोई सार्थक काम... । सबके पास क्रिएटिव फोर्सेस हैं, वे उपयोग नहीं हों, पड़ी रहेंगी तो बेकार हो जाएंगी।

तो काम को बढ़ाएं नये डायमेंशंस में। एक कमेटी बनाएं जो कि बंबई में... अलग कमेटी बना दें, उसका जिम्मा इस काम करने वाले ग्रुप पर नहीं हो; आपके बीच से बनाएं, बाहर से नये मित्र लाएं... एक कमेटी बनाएं जो कि एक परमानेंट कैम्पस बंबई में, बंबई के बाहर सोचे, कि कम से कम वीक एंड में दो दिन सौ दो सौ लोग मेरे पास रह सकें नियमित रूप से सदा। तो यह आपका मिलने-जुलने का भी भाव कम हो जाए, परेशानी भी कम हो जाए, यह मामला भी हल हो जाए, लोग थोड़ा ध्यान में भी जा सकें। तो एक कमेटी बनाएं और ऑफर कर लें कि कौन उस कमेटी में जाता है। वह जाने, उससे इसका कुछ लेना-देना नहीं, इस फंड से उसका कुछ लेना-देना नहीं। नया फंड उसको खड़ा करना है, नया ट्रस्ट बनाना है, नई उसको फिकर कर लेनी है। और उसकी सारी व्यवस्था उसको करनी है, इसलिए जो-जो कमी इसमें दिख रही हैं, वह उसे उसमें दिखा देनी है कि यह कमी यहां नहीं रहेगी।

एक सापुतारा कैम्पस बनाना है, तो वह अभी लाख रुपये की उन्होंने बातचीत की, लाख रुपये के प्रॉमिस भी हो गए, तो वह मैंने जयंती भाई से कहा कि आप ही सम्हाल लें। जयंती भाई उसमें रहें, लश्करी जी उसमें रहें, मृदुला बैंकर है, उसने ऑफर किया है, वे तीन उसमें रहें। और दो-चार, जो उनको कोआपरेट करवाना हो उनको करवा लें, या जो ऑफर करें वे उसमें सम्मिलित हो जाएं। वे एक अलग कैम्पस अपना खड़ा कर लें।

एक यहां बंबई के बाहर एक कैम्पस खड़ा कर लें जो वीक एंड में काम आ सके।

अब बाहर से बहुत से मित्र आने शुरू हुए हैं। आपके पास जरूरत पड़ेगी कि एक, कम से कम एक गेस्ट-हाउस जैसा, चाहे उसमें पेड रख सकें आप। बाहर से जो लोग आते हैं उनके लिए इंतजाम कर लें एक। दस-बीस लोग यहां रुकेंगे, नियमित रुके रहेंगे। और वे आपको पीछे बहुत काम पड़ जाने वाले हैं। तो एक गेस्ट-हाउस बना लेना पड़ेगा, उसमें कोई दस-पंद्रह-सोलह लोग रुक सकें। सिर्फ गेस्ट-हाउस में रुक सकें, खाना वे अपना कहीं भी

खा लेंगे। वहां जो रुकने का, वे आपको किराया दे देंगे। कोई व्यवस्था उसकी करें, एक कमेटी उसके लिए बना दें, वह अलग अपनी व्यवस्था करे।

पब्लिकेशन में एन.एस.आई. का पब्लिकेशन अलग कर दें। एक नया पब्लिकेशन शुरू कर दें। उसका सारा फंड, उसकी सारी व्यवस्था अलग कमेटी करे। केंद्र बेचेगा, केंद्र को कमीशन मिल जाएगा। आप केंद्र का कुछ बेचेंगे, आपको केंद्र कमीशन दे देगा। बेचने का सारा काम चाहें आप केंद्र को दे दें, लेकिन पब्लिकेशन का और सारी व्यवस्था का और सारे फंड का अपना इंतजाम कर लें। उसमें आप व्यवस्थित हिसाब बना लें कि यह इस तरह हो सकेगा।

यहां वुडलैंड के खर्च की व्यवस्था का सारा इंतजाम, उसकी अलग कमेटी बना दें। वह एक आदमी पर क्यों थोपते चले जाएं? उसकी अलग कमेटी बना दें, वे लोग समझें।

और दो-चार-छह महीने में सारी कमेटियां मिल लें, सारे लोग आपस में बातचीत कर लें--कौन क्या कर रहा है, क्या एक-दूसरे को कोआपरेशन दे सकते हैं कि नहीं दे सकते हैं--वह सारी फिकर कर लें।

पुराने काम को बाद में बांटना शुरू करें, नये काम को ले लें। जैसे मराठी का पब्लिकेशन ले डालें, एक कमेटी अलग कर लें। अंग्रेजी का पब्लिकेशन अभी नया है, उसको अलग कर लें, उसमें कोई ऐसी अड़चन नहीं। धीरे-धीरे सब लैंग्वेज का बांट डालें।

अब काम तो इतने हैं, जैसे कि मैं समझता हूं कि आपको टेप-रिकार्ड्स बेचने शुरू करने चाहिए। वे भी इन्हीं पर थोपते जाते हैं। तो उसका परिणाम क्या होता है कि इतना काम हो जाता है, यानी मैं तो कभी यह देख कर कि ईश्वर बाबू उस सबको कैसे करते हैं!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, वह जरा हैरानी का काम है! क्योंकि वे अपनी डायरी में कहीं भी नोट कर लेते हैं और सब घोलमेल रहता है और उसमें वे करते रहते हैं। और उसमें तो पच्चीस चीजें हैं।

और पत्र-व्यवहार भी लिखते हैं!

हां, पत्र-व्यवहार! रात एक बजे तक वे अपना पत्र-व्यवहार लिखेंगे, जब तक कि गुणा उन पर बिल्कुल सवार नहीं हो जाती कि...

तो कठिनाई होने वाली है। और दयनीय मामला है वह, क्योंकि इतना ज्यादा सिर पर बोझ हो जाता है और फिर आलोचना के सिवाय कुछ मिलता नहीं किसी को।

टेप की एक अलग व्यवस्था कर लें, अलग कमेटी बना दें, जो टेप... क्योंकि टेप धीरे-धीरे आपकी किताबों जैसे ही बिकने लगेंगे। एक अलग पूरा डिपार्टमेंट चाहिए जो टेप ही बनाए और प्रोफेशनल ढंग से बना कर बेचे। तैयार रहने चाहिए। अगर पचास रुपये में बाजार में टेप मिलता है, आप साठ रुपये में दें। दस रुपये आपका प्रोफेशनल टेप करने का और सारी व्यवस्था का खर्च है। बिल्कुल तैयार होने चाहिए। ठीक अपनी किताब की दुकान, जहां किताब बिकती है, वहीं अपना टेप भी बिकना चाहिए। हर लेक्चर की सीरीज के इकट्ठे टेप। क्योंकि मैं अगर कम जाऊंगा बाहर, और मैं कम जाऊंगा, तो आपका टेप का सेल जोर से बढ़ जाएगा। जगह-जगह टेपरिकार्डर पर लोग सुन रहे हैं। और हैरानी की बात है, अभी मुझे अमृतसर में खबर दी कि बराबर तीन सौ, साढ़े तीन सौ लोग नियमित हर रविवार को इकट्ठा होकर सुनते हैं। अभी आपकी महावीर वाणी को पांच-पांच सौ, छह-छह सौ लोगों ने पूरे हॉल में पैक होकर सुना। तो सुनने लगेंगे।

टेप का एक अलग डिपार्टमेंट कर दें, वह वे जानें। उसमें कोई रिकाड्‌र्स बनाने चाहिए। अब तो लांग-प्ले रिकार्ड है, कोई चालीस मिनट की स्पीच उसमें आ सकती है। जो लोग टेप नहीं भी खरीद सकते हैं वे भी डेढ़ सौ रुपये का ग्रामोफोन तो खरीद ही सकते हैं, किसी भी गांव में। लांग-प्ले रिकाड्‌र्स बना लेने चाहिए, उसका एक अलग इंतजाम कर लेना चाहिए। इस सबको बांटना चाहिए। अब संन्यासी आपके पास हैं, उनको अलग काम बांट देना चाहिए, वे अपना अलग काम कर लें। इसको अगर बांटें तो यह लाखों लोगों तक पहुंच जाएगा और बांटें तो जितने लोग कर सकते हैं उनकी सबकी कैपेसिटी का उपयोग हो जाएगा।

और हजार ढंग सोच सकते हैं। अब यहां तो सारे मित्र हैं, वे जो भी करते हैं अपना काम, उस काम से इस काम के लिए क्या लाभ पहुंच सकता है उसके लिए विचार कर सकते हैं। क्योंकि मेरा मानना ऐसा है कि अगर हमें कोई बड़ा काम करना हो तो उसके परमानेंट सोर्सेज होने चाहिए। रोज-रोज मांगने वाले काम बहुत देर तक नहीं चल पाते। अब सारे लोग इतने समझदार हैं, सोच-विचार वाले हैं, धंधे हैं, व्यवसाय है, इंडस्ट्री है। तो इसको थोड़ा सोचना चाहिए, कि चाहें तो एक गवर्नमेंट से लोन लेकर एक कोई स्माल इंडस्ट्री डाल दें। संन्यासी मैं आपको दे दूंगा, जो सिर्फ खाने और कपड़े पर पूरा का पूरा काम कर लेंगे। आपके लिए दस-बीस-पच्चीस हजार रुपये महीने की स्थायी व्यवस्था हो जाए। कोई एक्सपोर्ट का काम हो, वह आप सोच लें। बंबई से न हो सके, कहीं देहात में बीस संन्यासियों को बिठा कर वह काम करवा दें। आपके पास स्थायी सोर्सेज हो जाने चाहिए।

किताब का सोर्स इतना बड़ा है कि मैं नहीं मानता कि आप अगर सिर्फ उसका ही पूरा उपयोग कर पाएं तो आपको कोई किसी से मांगने की जरूरत रह जाए। किसी से मांगने की जरूरत नहीं रह जाए। कोई कठिनाई नहीं है कि हिंदुस्तान में हम पांच हजार ऐसे ग्राहक, नाम नोट कर लें रजिस्टर्ड, जिनको किताब निकलते से ही प्रेस से चली जानी चाहिए सीधी वी.पी.। पांच हजार का कोई प्रॉब्लम नहीं है। यह कोई प्रॉब्लम ही नहीं है, सिर्फ एप्रोच की बात है कि हम पांच हजार ग्राहक पूरे मुल्क में ऐसे तय कर लें कि जिनका नाम रजिस्टर्ड है, सीधा प्रेस से किताब छपेगी और वी.पी. से उनको चली जाएगी। और वे बहुत खुश होंगे, क्योंकि इतने परेशान हैं कि लिखते हैंः किताब नहीं मिलती; पूछते हैं, महीनों लग जाते हैं। उनको खुशी होगी कि सीधा प्रेस से उनको किताब मिल जाए। नई किताब छपे, आप दस हजार से कोई किताब कम मत छापें, पांच हजार किताबें सीधी प्रेस से चली जाएं, आपका सारा पैसा लौट आता है। अब पांच हजार आप चुपचाप बेचते रहें, कोई प्रॉब्लम नहीं है।

चौगुने आप दाम रखते हैं किताब के। अगर पांच हजार की किताब आप छापते हैं, तो सारा चालीस परसेंट कमीशन दें तो भी आपको उसमें पांच हजार बचने ही हैं, सारा खर्च-वर्च मिटा कर। अगर आप साल में बीस किताब छापते हैं तो आपको लाख रुपया तो ऐसे सहज आ जाता है। इसमें कोई सवाल नहीं है। ये बीस किताबें धीरे-धीरे सब लैंग्वेजेज में छाप लेनी हैं। और इसका, जो मैं मानता हूं बाबू भाई, इसको ठीक प्रोफेशनल ढंग से किताब को व्यवस्था देनी है। इसका ठीक एडवरटाइजमेंट पर खर्च करें, जैसा आप अपनी और कोई चीज के पैदावार पर खर्च करते हैं।

और आपके ख्याल में नहीं है, क्योंकि हिंदुस्तान में कोई किताब आप छाप कर तीन हजार किताब पांच साल में भी नहीं बेच सकते हैं। कोई बड़े से बड़ा पब्लिशर नहीं बेच पाता है। और आप तीन हजार किताब दो महीने में बेच लेते हैं। और अव्यवस्थित है सब। मैं बड़े से बड़े पब्लिशर से बात किया, वे कहते हैं, यह मुश्किल मामला है। क्योंकि तीन हजार किताब बिक जाए पांच साल में एक एडीशन, तो बड़ी बात है। हिंदुस्तान में पढ़ता कौन है! आप दो महीने में बेच लेते हैं। आपकी किताब छप कर प्रेस से आती है और आपको महीने भर में लिखना शुरू करना पड़ता है कि वह किताब खतम हो गई। पांच-सात किताबें हमेशा आउट ऑफ प्रिंट आपकी पड़ी रहती हैं। और उनके ग्राहक रोज लिख रहे हैं आपको कि वह हमें किताब चाहिए।

इसको तो बिल्कुल प्रोफेशनल कर देना चाहिए, जैसा कि पब्लिशर करता है। इसको बिल्कुल प्रोफेशनल ढंग से व्यवस्थित कर दें। आपको हर हालत में पांच लाख रुपये साल किताब से मिल सकते हैं, अगर आप उसको प्रोफेशनल ढंग से व्यवस्थित करें।

फिर उसका ठीक एडवरटाइजमेंट करें, उसके एडवरटाइजमेंट पर खर्च करें। क्योंकि आज की जो सारी की सारी व्यवस्था है, आप अपने धंधे में जैसा सोच कर चलते हैं, ठीक वैसा उसके लिए सोचें। अगर आप पांच हजार किताब पर खर्च करते हैं, तो आपको हजार रुपये किताब के विज्ञापन पर खर्च करना चाहिए। और सारे मुल्क में विज्ञापन चलते ही रहने चाहिए। कोई भी कारण नहीं है कि दस लाख रुपये की किताब आप हर साल में न बेचें, कोई कारण ही नहीं है, बिना किसी दिक्कत के।

और जल्दी ही बाहर की लैंग्वेजेज में किताबें पब्लिश हो जाएंगी। तो आपको ख्याल में नहीं है कि हिंदुस्तान से अगर कोई भी चीज ज्यादा से ज्यादा पैसे पश्चिम से ला सकती है तो वह किताब है। क्योंकि पश्चिम में कोई भी किताब पचास रुपये से कम में तो मुश्किल हो जाती है। दो सौ, ढाई सौ पन्ने की किताब है, तो चालीस-पचास रुपये दाम हो जाएंगे। आप उसको यहां इतने सस्ते में छाप लेते हैं, क्योंकि लेबर का तो कोई चार्जेज ही नहीं है। अगर एक दफा पश्चिम में आप किताब के लिए मार्केट खोज लेते हैं, तो आप फिकर छोड़ दें कि कौन आपसे क्या कह रहा है, आपको जाने की जरूरत नहीं है। वह आपके पास देने आए तो भी आप सोचें कि लेना इससे कि नहीं लेना। और पश्चिम में मार्केट खोजने में कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि बिल्कुल सड़ी और व्यर्थ की किताबें योग और धर्म के नाम पर पश्चिम में खप रही हैं, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है, जिनका कोई मतलब नहीं है।

इसको थोड़ा व्यवस्थित करें और इस सबकी कमेटी बांटें। जैसे समझ लें कि बाहर का मामला है, एक अलग कमेटी बना दें कि हिंदुस्तान से बाहर के लिए जो भी पब्लिकेशन का इंतजाम करना हो वह कमेटी करेगी। इसको क्यों थोपना इनके ऊपर? वह कांटेक्ट बनाए, वहां पब्लिशर्स को लिखे। अब हमारे संन्यासी भी बाहर हैं, वे आपके सहयोगी हो जाएंगे। किताब छापें यहां, पश्चिम में बेचें। पांच रुपये में यहां वह किताब बनती है, पश्चिम में वह पचास रुपये में बिकती है। और मैं तो मानता हूं कि न केवल यह, बल्कि आपका अगर ठीक से व्यवस्थित हो जाए तो कुछ किताबें ऐसी, जो मेरी भी नहीं हैं, लेकिन मैं मानता हूं कि साधक के लिए उपयोगी हो जाएंगी, उनको भी हम छापें और पश्चिम में बेचें। वह भी आपके लिए काफी उपयोग की बात हो जाएगी। पश्चिम में तो टेप मजे से बिक सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है।

इसके लिए अलग कमेटी बना लें, हिंदुस्तान के बाहर के काम के लिए अलग कमेटी बना लें, जो उसकी ही फिकर में लगे और उसका लिखना-पढ़ना, कॉरेस्पांडेंस, वह सारा उपयोग करे। इस सबके लिए ऑफर कर दें, एक दफा मीटिंग बुला लें सारे मित्रों की और ऑफर कर लें कि कौन इस काम को लेना चाहता है, वह ले ले और उसको सम्हाले।

एक दफा जब आप अपनी प्रतिभा दिखा पाएं किसी नये काम में तो मैं किसी पुराने काम को भी ईश्वर बाबू को कहूं कि भई यह काम फलां व्यक्ति को सौंप दें, तो कोई अड़चन तो किसी को है नहीं सौंपने में। लेकिन अभी अड़चन यह है कि किसको सौंप देना है? और जिसको सौंप देंगे वह कर पाएगा कि नहीं कर पाएगा? जहां तक मेरा मानना है कि करने वाला कुछ न कुछ करने में लग जाता है बहुत जल्दी। तो कुछ भी करने के लिए चुन लें और उसमें लग जाएं।

अब कैंप का मामला है, वह अलग कमेटी रख दें। कैंप की कोई बात ही नहीं उठाएं फिर। वह कमेटी सम्हालेगी, कहीं भी कैंप हो, कुछ भी हो। और चूंकि अब तो मैं ज्यादा देर यहां रुकूंगा, तो बंबई के पास ही ज्यादा से ज्यादा कैंप लेने का है। पीछे तो मेरा ख्याल है कि अपने को साल में तीन या चार कैंप फिक्स्ड कर देने चाहिए, तारीख भी, स्थान भी, सदा के लिए। तो लोगों को पता ही है कि उस तारीख में फलां जगह कैंप होगा

ही। लोग बिना पूछताछ किए भी सीधे आ जाएंगे तो अड़चन नहीं होगी। वह एक कमेटी अलग कर दें। मीटिंग्स आपको अब रखनी पड़ती हैं साल में चार-छह, उसकी अलग कमेटी कर दें। और फिर इसमें दखलंदाजी बिल्कुल नहीं। और हर कमेटी अपने फंड की फिकर करे।

कठिनाई वहां से शुरू होती है कि आप काम भी चाहते हैं, साथ में उसका फंड भी ले लेना चाहते हैं। तब आप अड़चन में डाल देते हैं और अड़चन में पड़ जाते हैं। और इसीलिए वह काम नहीं छूट रहा है। जो कठिनाई मुझे समझ में आती है, ईश्वर बाबू को आप सब कहते हैं कि काम बांट दें, उनकी तकलीफ यह है कि काम तो बांट देने में कौन सी तकलीफ है, लेकिन काम के पीछे आप फौरन कहते हैं कि इसके लिए फंड! वह तो है नहीं देने को। तो फंड नहीं बांटते इसलिए काम भी नहीं बंटता फिर, वह काम भी अटक जाता है। जैसे अगर आपको कहें कि आप मराठी के पब्लिकेशन को आप सम्हाल लें, तो आप कहते हैं कि इसका फंड दो! फंड उन पर ही नहीं है, तो वे फंड कहां से दे दें! इसलिए वह बात वहीं अटक कर रह जाती है।

काम ले लें, फंड की बात न करें, फंड अपना व्यवस्थित करना शुरू करें। और फिर जिनके पास आप जाते हैं उनको कहें कि अब यह काम मैं कर रहा हूं और फंड मैं ले रहा हूं और आपको सारा हिसाब मैं पूरा बना कर दूंगा। इसलिए अब यह हम शर्त से लेते हैं आपसे कि हिसाब आपको पूरा दिया जाएगा, इसका कोई हिसाब गड़बड़ नहीं होगा।

और मैं भी मानता हूं कि आप हिम्मत से कह भी सकते हैं जब काम आपके हाथ में है। काम ही आपके हाथ में नहीं है, हिसाब कोई रखता है, काम कोई रखता है, पैसा लेने आप जाते हैं, तो आप क्या जवाब दें! आपको कुछ पता भी नहीं होता।

तो उसको ऐसा कर लें। इसमें मुझे कोई बहुत अड़चन नहीं दिखाई पड़ती है। और बढ़ते काम में अड़चनें बिल्कुल स्वाभाविक हैं। और काम इतना बड़ा हो जाएगा कि दो साल में आपकी कल्पना में नहीं हो सकता, उतना बड़ा हो जाएगा। तो छोटी-छोटी बातों में मत पड़े रहें उसके बड़े होने में लग जाएं। मुझे कोई पाजिटिव ऐसी कोई झंझट नहीं दिखाई पड़ती है कि कोई उलझाव है या कोई बड़ी तकलीफ है।

तो इस भांति थोड़ा सा सोचें।

बस।

तेरहवां प्रवचन

संगठनः अनूठा और क्रांतिकारी

यह ध्यान में ले लेना जरूरी है कि यदि संगठन कोई बनाएं, तो वह संगठन भी अपने ही ढंग का अनूठा और क्रांतिकारी हो। क्योंकि जो दृष्टि अपने को फैलानी है, जिसके लिए वह बनाना है, उस दृष्टि को फैलाने में एक अनिवार्य हिस्सा यह भी होगा कि हमारा संगठन भी उस दृष्टि के अनुकूल और वैसा हो। जैसे और संगठन हैं, और संस्थाएं हैं, वैसी संस्था यह भी एक हो, वैसी राजनीति इसमें भी चले, वैसे मतभेद इसमें भी चलें, वैसे द्वेष इसमें भी चलें, वही रोग, वही प्रभाव यहां भी हो, तो हम जो क्रांति लाना चाहते हैं आमूल, उसका पहला ही कदम हमारा गड़बड़ा गया।

तो एक तो यह मित्रों का एक मंडल है, ऐसा भाव विकसित करना है। और चूंकि प्राथमिक रूप से हम उसको विकसित कर लें, तो पीछे जो भी आएगा, तो फिर वह उस परंपरा का एक हिस्सा हो गया। अभी जो सिलसिला था, वह गड़बड़ था और इसीलिए चाहा भी कि वह हट जाए। अगर हम एक बार ठीक बना पाए, तो फिर तो संस्था जीती रहती है। व्यक्ति आते हैं, चले जाते हैं। एक आदमी छूट जाएगा, दूसरा आएगा, तो जो दस पुराने आदमी हैं, वह उनमें आकर पुराना हो जाएगा। फिर एक छूटता रहेगा।

तो इसको बहुत ही बुनियादी रूप से सोच कर बनाना है। विधान भी ऐसा बनाना है कि जिसमें न कोई ज्यादा उलझाव हो, कि कोई आदमी उसमें उस उलझाव की वजह से अड़चन का कारण बन जाए और उसकी वजह से सबको उसी के आस-पास चक्कर काटना पड़े, और फिर उसको अलग करना हो तो एक मुसीबत हो जाए। उसको साथ चलाना हो तो मुसीबत हो जाए। इस सबको ध्यान में रखना है।

और दूसरी बात, कुछ ऐसी व्यवस्था करनी है कि जैसे पद का उसमें कोई बहुत महत्व नहीं है। फंक्शनल है पद। न उसका कोई आदर है बड़ा, न कोई मूल्य है। वह हमें एक ट्रेडीशनल कनवेंशन खड़ा कर लेना है कि उसका कोई मूल्य नहीं है। नहीं तो कोई हो जाता है कि हम सेक्रेटरी हो गए, तो वह समझा कि न मालूम वह क्या हो गया! व्यवस्था ऐसी करनी है कि सेक्रेटरी होना भी कोई खास बात है ही नहीं। वह तो सारे मित्र काम कर रहे हैं और इस सुविधा के लिए है कि एक आदमी को हम सेक्रेटरी कह सकते हैं। हमारा रुख, हमारा व्यवहार, हमारी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि पद किसी तरह का अर्थ न ले पाए--उसको थोड़ा ध्यान में ले लेना है।

जो भी पदाधिकारी हैं, जो भी मित्र हैं, जो भी काम करने वाले हैं, वे एक स्वर और एक टीम की तरह काम कर पाएं, इसकी हमें बुनियाद डाल देनी है। बिल्कुल बुनियाद डाल देनी है। कोई लीडरशिप का सवाल नहीं रखना है। किसी को ऐसा ख्याल नहीं होना चाहिए कि उसकी कोई व्यक्तिगत जिम्मेवारी है, किसी काम को उसे व्यक्तिगत रूप से करना है। वह कर रहा है सबके लिए। अगर वह कहीं प्रतिनिधि भी है, तो सबका है। न हमें व्यक्ति को गौरव देने की फिकर करनी है कि यह फलां आदमी ने किया। जो किया, वह केंद्र ने किया। उसकी आदत ही तोड़ देनी है कि वह किसी को लगे कि यह काम मैंने किया और उसकी वजह से वह एक विशेष प्रतिष्ठा लेने की बात करे।

तो वह हम एक व्यवस्था बना लेंगे एक दफा, तो जो भी आदमी आएगा उसको पता है कि यहां कोई काम किसी व्यक्तिगत श्रेय का नहीं है। धन्यवाद तक नहीं देना है हमें कभी कि यह काम किया तो उसे धन्यवाद दें। यह केंद्र ने काम किया, आपने नहीं किया है। इसको भूल ही जाना है--आदमी के नाम को। मीटिंग हुई है, इतना काम किया है, कुछ प्रेमचंद भाई ने किया, कुछ ईश्वर बाबू ने किया है--नाम का उल्लेख ही बंद कर देना है।

क्योंकि वह पॉलिटिक्स की शुरुआत है। वह जन्म से पॉलिटिक्स है। वहां से यात्रा शुरू होती है कि किसने किया, किसने नहीं किया; किसका नाम उल्लेख हुआ, किसका नाम उल्लेख नहीं हुआ। इसको भी ध्यान में ले लेना है कि जब भी उल्लेख करना है, तो कहें कि वह केंद्र ने किया; केंद्र के मित्रों ने किया। पुस्तक भी छापनी है, तो नाम विलीन कर देना है। जीवन जागृति केंद्र प्रकाशक है; या सेक्रेटरी, जीवन जागृति केंद्र प्रकाशक है। कोई नाम नहीं। कोई भी सेक्रेटरी होगा, वह प्रकाशक होगा। ताकि कभी किसी को ऐसा न लगे कि मेरा नाम था, अब हटाया गया। और वह हटाना पड़े, आज उसका, कल उसका, तो दुख और पीड़ा का सिलसिला शुरू हो जाता है।

तो हमें एक ध्यान में ले लेना है कि व्यक्ति को तो जैसे हमें पोंछ डालना है। क्योंकि वह हमारा, जो क्रांति लाने के लिए हम पूरे समाज की दृष्टि दे रहे हैं, तो कम से कम हमारी संस्था तो उसका सबूत हो जानी चाहिए। उसमें व्यक्ति कोई है ही नहीं--कोई बिसन जी भाई नहीं हैं, कोई ईश्वर भाई नहीं, कोई जयंती भाई नहीं। वहां तो मित्र हैं, और उनकी अपनी कोई आइडेंटिटी नहीं है। न उनको धन्यवाद देना है, न उनके नाम का उल्लेख करना है। वह जो भी श्रेय है, सबका है; जो भी दोष है, वह सबका है।

ध्यान में रहे, जब हम श्रेय व्यक्तियों को देते हैं, तो फिर दोष भी हमें व्यक्तियों को देना पड़ता है। वह झगड़े का कारण होता है। आज हम कहेंगे कि हर्षद बहुत अच्छा काम कर रहा है, तो हर्षद खुश होगा। जब अच्छे के लिए हम श्रेय हर्षद को देंगे और कल काम बिगड़ेगा, तो हम कहेंगे हर्षद बुरा काम कर रहा है! तब दुख का कारण होगा। आप व्यक्ति पर आक्षेप मत उठाइए। लेकिन जब व्यक्ति की हमने प्रशंसा की थी, तब तो कहा नहीं था कि व्यक्ति की प्रशंसा मत करिए। और जब हम श्रेय देते थे व्यक्ति को, तो स्वभावतः दोष उसी को मिलेगा जिसने श्रेय लिया था। फिर वह कष्ट और झगड़े का कारण होता है।

फिर होता क्या है, श्रेय देते वक्त हम सुविधा से दे देते हैं। फिर दोष देते वक्त हमको चाल चलनी पड़ती है, उलटी-सीधी बात करनी पड़ती है। कहना एक व्यक्ति के खिलाफ है; उसका नाम नहीं लेते। फिर बात करते हैं, गोल-गोल करते हैं; वह भी गोल-गोल जवाब देता है। और वह सबको समझ में आता है और किसी की समझ में नहीं आने देते। जिसका कोई अर्थ नहीं। लेकिन उसकी शुरुआत होती है श्रेय से। उसकी शुरुआत दोष से नहीं होती; श्रेय से शुरुआत हो जाती है--वह जब हम किसी को सम्मान देते हैं व्यक्तिगत।

तो एक तो व्यक्ति को जैसे बिल्कुल पोंछ डालें। उसकी कोई स्थिति नहीं है। केंद्र की स्थिति है, व्यक्ति की कोई स्थिति नहीं। तो कल, आज कांति भाई हैं, कल कांति भाई नहीं हैं, तो पता भी नहीं चलेगा। चर्चा की कोई बात भी नहीं है, क्योंकि वह कब हैं, यही पता नहीं। वे थे, यही पता नहीं था; तो वे नहीं हैं, तो उसका कोई पता नहीं चलता है। जब व्यक्ति का बहुत पता चलता है, तो उसके छूटने पर एक समस्या खड़ी हो जाती है। उसके हटने का मतलब यह है कि चीजें डगमगा जाती हैं और चर्चा का कारण बनता है कि कौन था और कौन नहीं था। क्यों अलग हुआ, क्यों नहीं हुआ! बात ही नहीं है कि कोई था।

तो हमको तो यह स्वीकृति मान कर चलनी चाहिए कि केंद्र में जो आ रहा है वह अपने आपे को खोकर आ रहा है, यह तो उसकी सदस्यता है। और जिस दिन उसने अपने आपे को खड़ा करना चाहा, उस दिन वह सदस्य नहीं रह गया है। और इसको हम साफ, यह हवा बना सकेंगे, तो हम कह सकेंगे कि "प्रेमचंद भाई, आपा आपका प्रवेश कर रहा है और आप सदस्यता खो रहे हैं!" यह प्रेम से कह सकेंगे बैठ कर। यह बात दूसरी हो जाएगी, जो कि हमारी दृष्टि में नहीं है, जो कि हमारा काम नहीं है।

तो व्यक्ति को पोंछ डालना, नहीं तो हमेशा हम राजनीति से बच नहीं सकेंगे। तो साल-दो साल में वह हमेशा खड़ी हो जाएगी। क्योंकि जब भी नये लोग आएंगे, तभी वह खड़ी हो जाएगी। नये लोग आएंगे। नये लोग रोज आएंगे। और जब भी नये लोग आएंगे, तभी वह खड़ी होगी, क्योंकि वे नये ग्रुप वाले--अगर पद है, प्रतिष्ठा

है--तो वे आगे होना चाहेंगे। नया आदमी हावी होना चाहता है और पुराना आदमी जो उस पर है वह रुकावट डाले। तो इसकी रुकावट, उसका हावी होना एक विरोध का कारण बन जाए, और उस विरोध में संस्था का नुकसान हो, काम का नुकसान हो।

तो हमें अब एक ऐसा इंतजाम कर लेना चाहिए कि कोई हटेगा तो पता नहीं चलेगा। कोई आएगा तो पता नहीं चलेगा, कोई जाएगा तो पता नहीं चलेगा। और जब हम इतना कर लेंगे, तभी वह जो पद पर चिपके रहने का मोह है, वह खत्म होगा, क्योंकि पद कुछ है ही नहीं। आपको कुछ पद से चिपकने का कारण नहीं है, क्योंकि आपको कभी कुछ सम्मान मिला नहीं। किसी ने जाना नहीं कि कांति भाई जो थे, वे अध्यक्ष थे, और वे प्रधान थे, और वे यह थे--किसी ने कभी जाना नहीं। वह जानने की कोई बात ही नहीं है। तो हमारे जो पद हैं वे बिल्कुल आंतरिक हैं। उनकी बाहर चर्चा से कोई संबंध नहीं है। और आंतरिक हैं और फंक्शनल हैं, काम के लिए हैं--कि हर्षद को काम दिया गया कि तुम यह कर देना। और जो कांस्टीट्यूशन बनाएं, उसमें यह सारी दृष्टि हमारी प्रविष्ट हो जाए। वह हमारी भूमिका में होना चाहिए भाव।

फिर अब जो काम लेना है हाथ में, तो ज्यादा से ज्यादा चिंता इस पर करने की जरूरत पड़ गई है, कि मुझे तो ऐसा लगता है कि काम तो इतना व्यापक हो सकता है, इतना व्यापक हो सकता है कि हम अभी-अभी एक बिल्कुल ही, जिसको मूवमेंट कहें, आंदोलन कहें, वह शकल ले सकता है। इतने हजारों लोग उत्सुक हैं, और इतने प्यार से उत्सुक हैं कि आज उतने उत्सुक किसी बात में लोग दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। अगर हम उसका उपयोग न कर पाएं, तो वह हमारी नासमझी हो जाएगी।

अभी इंदौर में लोगों ने कहा कि हमने कोई तीस साल में इतने लोग कभी इकट्ठे हुए हों, इतना बुद्धिमान, पढ़ा-लिखा, बुद्धिजीवी वर्ग इकट्ठा हुआ हो ऐसा देखा ही नहीं। और इतनी उत्सुकता से उन्होंने समझा हो, इतनी प्यास रखी--यह नहीं देखा। तीन हजार आदमी हॉल के भीतर हैं, आठ हजार आदमी बाहर खड़े हुए हैं। कीचड़ है तो खड़े हुए हैं! एक घंटा सुनते हैं, और जरा आवाज नहीं! कोई व्यवस्था नहीं है कि इनको कोई व्यवस्था कराए, कोई वालेंटियर नहीं है। हर आदमी चुपचाप खड़ा हुआ है कि जरा गड़बड़ न हो जाए, वह सुनना न चूक जाए। इतनी उत्सुकता जहां ले रहे हों, वहां अगर हम कोई उपयोग न कर पाएं उस उत्सुकता का, तो वह हमारी गलती हो जाएगी। और हम इन क्षुद्र बातों में बैठ कर यहां चर्चा चलाते रहें, जिनका न कोई मूल्य है, न कोई मतलब है, उसका कोई अर्थ नहीं है।

तो एक बात और ध्यान में लेनी चाहिए कि क्षुद्र बातों पर कोई चक्कर चलाना ही नहीं है; क्षुद्र बात उठानी ही नहीं है। क्योंकि जितनी बात हम उठाते हैं, उतनी हमारी ताकत बढ़ जाती है। तो बड़ी से बड़ी कोई बात उठा कर उसको व्यवस्था देनी चाहिए। और अक्सर मुझे यह लगता है कि जब बड़ा काम नहीं होता है हमारे हाथ में, तो हम छोटी-छोटी बातों में अपने आप उलझ जाते हैं, क्योंकि काम चाहिए। वह जो दिक्कत हो जाती खड़ी, वह कुछ विशेष नहीं है, तो छोटा-मोटा काम शुरू हो जाता है।

तो एक बड़ा काम साफ दृष्टि में हो, उसको व्यवस्था देने की जरूरत है। काम इतना बड़ा हो सकता है कि दस साल अगर थोड़ी सी मेहनत की जाए, तो पूरे मुल्क में एक हवा, पूरे मुल्क में एक हवा फैल सकती है। और उस हवा का जीवन के सब पहलुओं पर प्रभाव लाया जा सकता है--धर्म पर, राजनीति पर, समाज पर, व्यवस्था पर, युवकों पर, पुरुषों पर, दाम्पत्य पर, परिवार पर--सब पर। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं उसका इंप्लिमेंटेशन सब दिशाओं में हो सकता है। और जिस दिशा में उसका इंप्लिमेंटेशन करेंगे, वहीं से उसके परिणाम आने शुरू हो जाएंगे।

दूसरी बात यह देखनी है कि अभी मेरी जितनी शक्ति का व्यय होता है, उस दृष्टि से उसका उपयोग नहीं हो पा रहा है। कहीं मुझे पांच सौ आदमी सुन रहे हैं, जब कि उस गांव में मुझे पांच हजार आदमी सुन सकते थे।

और सिवाय इसके कोई बाधा नहीं कि उनको खबर ही नहीं पहुंच पाई। यानी इतनी सी बाधा है, और कोई भी बाधा नहीं है। बड़ी कमजोर बाधा है, जिसको पार किया जा सके। तो बंबई में तो हमको खास कर इसकी फिकर लेनी चाहिए, क्योंकि बंबई की जो हम फिकर लेते हैं, तो पूरे मुल्क में व्यापक परिणाम होता है। और मुझे जगह-जगह लोग मिलते हैं, जो कहते हैं, हमने आपको बंबई में पहली दफा सुना है। और वे पहुंच कर वहां हवा खड़ी करने लगे।

मैं बनारस अभी गया था, पहली दफे गया। लेकिन ऐसी मीटिंग हुई कि लोगों ने कहा कि कृष्णा जी (जे. कृष्णमूर्ति) की मीटिंग में कभी इतने लोग न थे। थियोसाफिकल सोसाइटी के हॉल को बने पचास साल हो गए। उसके ट्रस्टी ने कहा कि पचास साल में, एनीबीसेंट से लेकर मैंने सुना, यह पहला मौका है कि हॉल भरा है। आज तक कभी भरा नहीं था। हम सोचते थे कि इतना बड़ा हॉल काहे के लिए बना है? यह काहे के लिए बना दिया? हॉल के बाहर लोग खड़े होंगे, यह कल्पना नहीं थी। यह पहला मौका है कि हमको हॉल के बाहर बिठाने का इंतजाम करना पड़ रहा है। यह पचास साल में हमको पहला अनुभव हुआ कि यह छोटा हॉल है। अब यह मैं पहली दफा गया हूं। मगर उसमें से कोई बंबई सुन गया है, कोई कहीं सुन गया है। नहीं भी सुन गया है कोई, तो किसी ने कहीं सुन लिया है और उसने खबर की है।

तो एक तो यहां हमें ऐसी फिकर करनी चाहिए कि वह एक नमूना बन जाए कि मुल्क में कहीं भी खबर जाएगी वह यहां से जाएगी और वह एक इशारा लेकर जाएगी। और उनके सामने एक मॉडल हो जाएगा कि क्या करना है, कैसी मीटिंग करनी है, कैसी व्यवस्था देनी है, कितने लोग होने चाहिए, क्या होना चाहिए, क्या नहीं होना चाहिए--इस तरफ। और दूसरा हमें प्रचार की थोड़ी सी व्यवस्थित और वैज्ञानिक व्यवस्था करनी चाहिए।

अब अभी क्या है, मैं बोल कर आया। बनारस में क्या बोला, बनारस का वह जो गुट है लोगों का--हजार, दो हजार लोगों का--उसने सुना और उसका कहीं मुल्क में ईको नहीं हुआ कि वहां मैंने क्या कहा, कितने लोगों ने सुना, क्या परिणाम हुआ; उसकी कोई ईको नहीं हुई। बस, वह वहां एक लोकल बात थी और वहीं शांत हो गई। उसकी पूरे मुल्क में ईको पैदा करनी चाहिए, क्योंकि वह ईको ही बार-बार पहुंच कर... । कल मैं जाऊंगा सतारा, तो उनको अगर सूचना पहुंच गई है, तो उस गांव में मुझे सुनने वालों का वर्ग तैयार है, जो उत्सुक हो गया है कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ! तो हमें पत्रों का, रेडियो का--इसका जिस भांति हम जितनी फिकर कर सकें, ले सकें, वह लेनी चाहिए।

नहीं तो, श्रम तो मैं कर ही रहा हूं, वह तो चलता ही रहेगा, उससे हजार गुना हो सकता था। यानी मेरा श्रम करीब-करीब ऐसा चल रहा है जैसे ढाई हजार साल पहले महावीर या बुद्ध का चलता था। वह श्रम ढाई हजार साल पुराना चल रहा है। महावीर एक गांव में गए और बोले; खत्म हो गया; क्योंकि उसके सिवाय कोई उपाय नहीं था कि उसकी ईको हो सके। महावीर जो बोले, उसकी ईको, पच्चीस सौ साल हो गए, अब तक दुनिया में नहीं पहुंच पाई। और वह तो रोज-रोज फीका होता जाता है जो बोला गया है, उसकी ईको भी फीकी होती चली जाती है। उसका इफेक्ट अभी हो सकता है, उसको थोड़ी ही व्यवस्था से... जैसा कि आज सब साधन उपलब्ध हैं, साधन की आज कोई कमी नहीं है, जो कभी थी; आज कोई कमी नहीं है। आज वे सारे साधन उपलब्ध हैं। और साधन की कमी थी, इसलिए जो रास्ते अख्तियार करने पड़े, उनसे बहुत नुकसान पहुंचा।

हुआ क्या--जैसे महावीर या बुद्ध के पास साधन क्या था सिवाय इसके कि कुछ बोलें! तो दूसरा उपाय यह था कि आदमी तैयार करें, जो उनकी बात ले जाएं। उन्होंने सब गड़बड़ किया है। सब्स्टीट्यूट यह था कि दस हजार भिक्षु तैयार करो, और दस हजार भिक्षु फिर खबर ले जाएं। और वे दस हजार तरह के लोग थे, वे दस हजार तरह की बातें ले गए। उसका कोई अर्थ नहीं हुआ। जो समाज खड़ा हुआ, वह इन दस हजार लोगों ने खड़ा किया। वह महावीर या बुद्ध ने कभी खड़ा किया नहीं। एक आदमी क्या कर सकता था?

आज हमारे पास यह संभावना हो गई है कि ओरिजिनल जो बात है, उसको हम सीधा पहुंचा दें, बीच के माध्यम की जरूरत नहीं है। तो बजाय जयंती भाई मेरा विचार ले जाएं, उससे रेडियो ज्यादा एफिसिएंटली, ज्यादा एक्युरेट, और वही ले जाता है, जो ले जाना है। उन्हें तो पुराने ढंग का उपयोग करना पड़ा। संदेशवाहक भेजने पड़े। वे संदेशवाहक थे। और उनको अब भी पता नहीं है कि उनका पहला उपयोग क्या था। उपयोग कुल इतना था कि वे हरकारे थे। महवीर करेंगे क्या! एक आदमी तीस-चालीस साल दौड़ कर... पैदल चलता है, करना क्या है? तो कर यही सकता है कि वह आदमी दौड़ा करे। किसी तरह कुछ तो वे ले जाएंगे, तो वे कुछ पहुंचा देंगे।

तो उन्होंने जो पहुंचाया, वह कनफ्यूजन सिद्ध हुआ। कनफ्यूजन होने वाला था, तो वह होने ही वाला था। अब जैसे कल मैं ट्रस्ट पर बोला हूं, आप दस मित्र जाकर कहीं पहुंंचाएंगे। भारी कनफ्यूजन पैदा हो जाएगा, क्योंकि पहले तो वह आपको ही पूरा ख्याल में नहीं बैठा। आपकी कांफ्लिक्ट उसके साथ बनी रही। फिर उसी कांफ्लिक्ट को लेकर आप समझाने गए; उसकी अपनी कांफ्लिक्ट थी। और वह गड़बड़ हो गया, चीजें न मालूम क्या शकल ले लीं।

तो आज इस बात की कोई जरूरत नहीं है, जैसा मुझे जगह-जगह कहते हैं, आप कुछ लोग तैयार कीजिए। वह गलती बात है। मुझे एक आदमी तैयार नहीं करना है। मेरा संदेश ले जाना भी--कोई आदमी नहीं होगा तैयार। मैं जो बात कहता हूं, उसको अपने व्यक्तित्व में ढालने को कोई तैयार हो, तो अलग बात है। संदेश तो मुझे सीधा अपना ही कह देना है। तो अब मेरे बीच में आदमी न आए और संदेश पहुंच जाए, इसकी फिकर करनी है। क्योंकि आदमी आया तो मुसीबत है। इसलिए मैं कोई आदमी को बीच में लेना नहीं चाहता। और अब तो पहुंच सकता है, संदेशवाहक आदमी की कोई जरूरत नहीं है। तो इस पर हमें ज्यादा से ज्यादा ताकत लगा देनी है, जितनी ताकत हम लगा सकें। उसका आज हमें परिणाम तो उतना नहीं दिखाई पड़ेगा, जितना हमें पांच साल बाद दिखाई पड़ेगा।

प्रश्नः नवभारत टाइम्स का एडीटर... !

उसकी फिकर न करें। जो कंट्रोवर्सी पैदा होती है, उसकी भी फिकर पैदा न करें। वह होनी चाहिए, बिल्कुल होनी चाहिए। अपने को कंट्रोवर्सी चाहिए। चाहिए इसलिए कि उससे भी ईको होने लगेगी बात। इसकी फिकर नहीं कि करंजिया क्या कहें, क्या लिखें, इसकी फिकर नहीं है। लेकिन उनका लिखा हुआ वह लोगों के... ।

अभी ऐसा हुआ, वह एक छोटी सी किताब किसी ने छापी है न! तो मेरे पास एक पत्र आया उज्जैन से कि "जिन्होंने वह किताब लिखी है, उन्होंने हम पर बड़ी कृपा की है, क्योंकि उस किताब को पढ़ कर हमें जरूरी हो गया कि हम आपकी किताबें पढ़ें। और हमें वह मिल गया जो हम जीवन भर से खोज रहे थे। तो वे कौन सज्जन हैं, हम उनको धन्यवाद देना चाहते हैं!"

तो कंट्रोवर्सी का तो मामला ऐसा है। कंट्रोवर्सी जो खड़ा कर रहा है, जिन लोगों से वह संबंधित है, वह बिल्कुल और वर्ग है, जिससे मैं सीधा संबंधित थोड़े ही हो सकता कभी! जैसे, करंजिया अगर मान लो कोई कंट्रोवर्सी खड़ी कर दे, तो करंजिया का जो ग्रुप है, उससे मैं सीधा संबंध थोड़े ही बना सकता; सिवाय थ्रू करंजिया! अगर एक साधु मेरे खिलाफ बोलने लगे, तो उस साधु के अतिरिक्त मैं उसके ग्रुप से किसी तरह से संबंधित हो ही नहीं सकता। वह तो साधु की खिलाफत सुन कर मुझसे संबंधित होगा। किसी भी तरह से होने वाला है। क्योंकि सीधा तो मेरे-उसके बीच कोई संबंध जुड़ने वाला नहीं है।

मुझे सुनने वाला जो वर्ग है... । जितनी शक्ति और कामों में हम लगाते हैं, उससे ज्यादा से ज्यादा शक्ति हमको पत्रकारों, रेडियो और उस पर लगानी चाहिए कि मुल्क में वह बात किसी भी तरह से एक जगह ले ले

और लोगों के ख्याल में आ जाए कि वह बात है। वह सही है या गलत है, वह कुछ भी सोचे, उससे हमें कुछ भी लेना नहीं है। वह गलत सोचे, तो कोई हर्जा नहीं है, क्योंकि वे गलत भी सोचेंगे, तो आज नहीं कल उनको मेरे पास आना पड़ेगा। और उनकी चर्चा से निकल सकेगा कि क्या गलत था, क्या सही था!

प्रश्नः हम लोगों का जो ख्याल था, वह ऐसा था ट्रस्टी का कि वह प्रतिवर्ष... ।

अगर मान लीजिए, बारह ट्रस्टी हैं, तो हर दो साल में वन थर्ड, चार ट्रस्टी नये हों। क्योंकि कंटीन्युटी भी होनी चाहिए और स्टैबिलिटी भी होनी चाहिए।

प्रश्नः वह जो सेक्रेटरी है, उसको सेक्रेटरी बोलें, कनवीनर बोलें, जो बोलें, वही बोल सकते हैं?

उसमें कोई हर्जा नहीं है। जैसे कि आठ लोग उसमें हैं, तो एक-एक सदस्य को एक-एक विभाग सौंप दें। और वे तीन आदमी की अपनी एक कमेटी बना लें। वे तीन आदमी कार्यवाही समिति के सदस्य नहीं होंगे। सदस्य तो कारोबारी समिति के जयंती भाई हैं। जयंती भाई, हर्षद और ईश्वर बाबू--जो कि अपनी एक कमेटी बनाते हैं। जैसे कि जयंती भाई प्रचार का काम करते हैं। वह जयंती भाई जानें; जयंती भाई जिम्मेवार हैं। वे जिनको ठीक समझते हैं, उनको जोड़ कर अपना काम शुरू करें। और जयंती भाई कार्यवाही समिति के सदस्य होंगे। जयंती भाई के मार्फत कार्यवाही समिति से संबंध रहेगा। उसमें जो आपको ठीक लगता हो, उससे आप अपना काम कर सकते हैं। वह आपकी कमेटी अलग हो गई और उस कमेटी में से एक आप जो हैं, वे कनवीनर हैं उस कमेटी के, और आप कार्यवाही समिति के सदस्य रहेंगे। क्योंकि कार्यवाही समिति एक होनी चाहिए न! वह कोआर्डिनेट सबको कर सके, कौन सा काम करना है, उसका निर्णय ले सके, फिर बांट सके।

अगर लें तो सबकी सम्मति से एक-एक को लें, जिसमें कि वह यूनिट को हमेशा यूनिट ही रखना है। जब भी हर्षद को भीतर लेना है--कारोबारी समिति है आठ लोगों की, जब वे सब एक मत से राजी हों तो ही लें। बिल्कुल एक मत से लें। उसमें वोटिंग का भी सवाल नहीं है कि एक पक्ष में है और सात पक्ष में नहीं हैं। तो एक यूनिट जब पूरा तय करेगा तो हम किसी को भीतर ले लेंगे, नहीं तो नहीं लेंगे। चुपचाप रहेंगे, उसमें कोई हर्जा नहीं है। काम लेना है, तो उसको इस तरह ले सकते हैं कि उसको अलग-अलग कमेटियों में लें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

भूल तो कुछ भी नहीं थी। स्थिति ऐसी थी कि जो तुमने किया, उसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकते थे। जो किया, उसके अतिरिक्त कुछ कर नहीं सकते थे। जैसी स्थिति थी उसको बाहर आने में, सिवाय इसके कुछ कर नहीं सकते थे। भूल कुछ भी नहीं की, और चूंकि स्थिति ठीक से बाहर आ गई और कोई खास उपद्रव नहीं हो गया--वह तो बात ठीक हो गई, उसमें कोई विचार करने की बात नहीं है, बहुत सोचने की बात नहीं है। उसमें कुछ मामला नहीं है। सिवाय इसके कि पहला ग्रुप कभी भी जब कोई संस्था बनाए, दूसरा ग्रुप जब उसको रिप्लेस करे, तो यह कठिनाई आनी शुरू है।

और फिर दूसरी बात यह थी कि वह जो ग्रुप था, वह ग्रुप मुझसे संबंधित नहीं था, जिसने बनाया। हो भी नहीं सकता था। मैं आया था, मैं अपरिचित आदमी था, वे सब अपरिचित आदमी थे। उनसे पहले का मेरा कोई

संबंध नहीं था। उन्होंने वह ग्रुप बनाया था, उन्होंने सारी व्यवस्था डाली थी। उन्हें न मेरे विचार की समझ थी, न मेरे व्यक्तित्व की समझ थी, न मुझसे कुछ लेना-देना था। सिर्फ मेरी बात अच्छी लगी थी और उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया था। तो वह तो बिल्कुल स्वाभाविक था कि वह बहुत अनुकूल मेरे कुछ नहीं हो सकता था। उसमें कोई किसी का कसूर नहीं था। उसने जो किया, वह बहुत किया। वह मेरे अनुकूल नहीं भी हो सकता था। जैसे अनेक समूहों ने और सब काम किए दुनिया में, उन्होंने भी एक काम किया था। अब जो ग्रुप आ रहा है, वह बिल्कुल दूसरे तरह का नेचर है उसका। इसलिए अब जो स्थिति बनानी है, वह बिल्कुल और बात है।

कल तक तो सारा... स्वाभाविक था। वह तो एक नैचुरल ग्रोथ थी उसकी। वह मुझसे बिल्कुल अलग-अलग होनी थी, होनी ही थी, क्योंकि रास्ता ही न था सिवाय इसके। यानी मैं एक व्यक्ति था, उनको अच्छा लगता था, तो उन्होंने अपना ग्रुप बना लिया और वे अपना काम कर रहे थे। उस काम में--न तो उनके कांस्टिट्यूशन में मुझसे कोई पूछताछ की; वे क्या कर रहे हैं--न इसकी कोई पूछताछ की। मुझसे उनका कोई भीतर संबंध नहीं था मामले का। वे कुछ करते थे; वे मेरे लिए कुछ कर रहे हैं, ऐसा इतना भर मुझे पता था। इससे ज्यादा तो मुझे कोई, किसी तरह की जानकारी नहीं थी। हो भी नहीं सकती थी। मेरी उत्सुकता भी नहीं थी। और मैं जानता भी था कि मेरी उत्सुकता उस ग्रुप में लेनी ठीक भी नहीं है। जब दूसरा ग्रुप आएगा जो कि मुझे समझ कर, मुझे विचार कर और किसी और भाव से आएगा, तो उससे मेरा एक दूसरा संबंध होगा।

तो वह तो बात ही अलग थी; पर वह अनिवार्य हिस्सा है। कोई भी चीज के पैदा होने का वह अनिवार्य हिस्सा है। उससे बचा नहीं जा सकता। वह बिल्कुल अनिवार्य था। पर उन्होंने एक भूमिका खड़ी की और उस भूमिका में आप मेरे पास आ सके। वह भूमिका खड़ा करना उनका काम था। उससे ज्यादा उनका काम भी नहीं था। तो इतना काम पूरा हो गया, फिर वे बाधा बन जाने वाले थे। कोई उसकी जगह व्यक्ति होते... । यह व्यक्तियों का सवाल ही नहीं है। यानी मेरी दृष्टि में मामले व्यक्तियों के बहुत कम हैं, सरकमस्टेंस हैं हमेशा। उसमें अ है कि ब है कि स है, कोई फर्क नहीं पड़ता। इन तीन की जगह बंबई के कोई भी तीन आदमी होते और आपकी जगह कोई भी दूसरा ग्रुप होता, तो यही होने वाला था। यानी इतना, सारा जो जीवन का हिसाब है, वह वैसा है कि उसमें कुछ, बहुत जैसा हम सोचते हैं, वह हम कर रहे हैं, बहुत ज्यादा नहीं है मामला।

यह अनिवार्य हिस्सा है। और उस अनिवार्य हिस्से को हम समझ जाएं, तो व्यक्ति पर से दोष और श्रेय सब चला जाता है, तो वह भाव भी नहीं रह जाता। मैं यह मानता हूं कि उसमें किसी व्यक्ति का न कोई दोष है, न श्रेय है। वह बिल्कुल ऐसे ही होता है। यह स्वाभाविक है। मेरी जगह भी कोई दूसरा व्यक्ति हो, उसके लिए तीन आदमी काम करेंगे, तो जब पहली दफा वे काम शुरू करेंगे तब तो उनका रुख पैट्रेनाइजिंग होगा। होने ही वाला है, क्योंकि वे उस आदमी को खड़ा कर रहे हैं, उसका काम कर रहे हैं, उसकी खबर पहुंचा रहे हैं। उनके बिना तो वह आदमी खड़ा नहीं हो सकता! लेकिन उनको भी यही लगता कि "हम खड़ा कर रहे हैं।" इसलिए वह बुनियादी बात तो चलने वाली थी, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। उसमें पता ही नहीं चलता न किसी को!

यह जो मनुष्य के मन की इंजीनियरिंग जिसको समझें, वह इस तरह काम कर रही है कि उसमें वे तीन आदमी--कोई भी अ ब स--वे ऐसा करेंगे। फिर जब वे खड़े हो जाएंगे--जब उन्होंने किसी व्यक्ति को खड़ा किया हो और उसका काम फैलाया हो--तो एक तरह की मालकियत उनकी हो जाएगी। और अब जब दूसरा कोई वर्ग आएगा... और आएगा, क्योंकि जिन्होंने काम फैलाया है उससे दूसरा वर्ग आना जरूरी है, यह उनको पता नहीं है। क्योंकि वे जो काम फैलाएंगे, उसका प्रोसेस यह है कि दूसरा वर्ग आएगा, उसी के लिए उन्होंने फैलाया। और इसलिए बहुत थोड़ी देर के बाद, जैसे ही नया वर्ग आएगा, वे सचेत होना शुरू हो जाएंगे कि अब बढ़ाना नहीं है ज्यादा, क्योंकि उनको डर दिखाई पड़ने लगेगा कि यह नया वर्ग आता है, यह कुछ और तरह बोलता है, यह कुछ और तरह की बातें करता है। तो अब यह बढ़ाना नहीं चाहता। सीक्रेसी खड़ी करनी है। ज्यादा लोगों को अंदर नहीं आने देना है। फलाने को नहीं आने देना है! वे थोड़ी देर में अवेयर हो जाएंगे इस बात से कि जो नया

आदमी आ रहा है, यह कुछ ऐसी बातें कर रहा है, जो हमसे मेल नहीं खाती हैं। कल यह झंझट का कारण हो सकता है। तो वे रुकावट डालनी शुरू कर देंगे।

तो पहला ग्रुप जिस दिन से रुकावट डालता है, उसी दिन से उसकी मृत्यु शुरू हो गई, क्योंकि अब जिस काम को वह बढ़ा रहा था, वह बढ़ाने से डर गया। क्योंकि बढ़ाने से वे लोग आ गए, जो उसको रिप्लेस कर देंगे। बीसों कठिनाइयां खड़ी होती हैं। तो फिर वह विरोध में खड़ा हो जाएगा। वह नये ग्रुप को काम नहीं सौंपेगा, इज्जत नहीं देगा; अटकाव डालेगा; वह सारी झंझटें शुरू करेगा। इसका उसको कोई पता नहीं है।

इसमें कोई व्यक्ति जिम्मेवार है ही नहीं। इसलिए मैं उसको इंजीनियरिंग का हिस्सा कह रहा हूं। वह बिल्कुल आंतरिक मामला है। और नये ग्रुप को जब बाधा डाली जाएगी, तो नया ग्रुप लड़ेगा, पच्चीस भूलें देखेगा। जो भूलें नहीं थीं, वे भी उसे दिखाई पड़ेंगी। जितनी भूल होगी, उससे बहुत बड़ी दिखाई पड़ेगी। उसको कुछ पता नहीं होगा कि मैं क्या कर रहा हूं। कुछ करेगा, तब उसको पता आएगा। और वह भी तब आएगा जब उससे भी नया ग्रुप आएगा, नहीं तो वैसे पता नहीं चलेगा। और तब तक वह भूल चुका होगा कि क्या भूलें हमने बताई थीं दूसरों को। वे भूलें होनी शुरू हो गईं, क्योंकि वे भूलें काम के हिस्से हैं, वे आदमियों के हिस्से नहीं हैं। आदमियों के हिस्से बहुत नॉन-एसेंशियल हैं, काम के हिस्से हैं वे भूलें।

जैसे अभी यह हुआ न--सोहन इधर मुझे मिलने आती है। तो वह चाहती कि अकेले जाकर मिले, तो रमण भाई उसमें उत्सुकता नहीं लेते कि अकेले वह जाकर मिले। तो वह मुझसे बोली कि "मैं क्यों अकेले नहीं मिल सकती हूं?" मैंने कहा कि "तू अभी फिकर मत कर। जब मैं तेरे घर ठहरूंगा... । थोड़े दिन में तुझे पता चलेगा।" तो अभी वह आई थी, तो वह कहने लगी कि "बड़ा अजीब सा लगता है कि कोई स्त्री हमारे घर में आकर आपसे अलग मिलने आए!" तो मैंने कहाः "तुझे पता है बात कि यही, रमण भाई थे, उन्हें बुरा लगता था। अब तो तुझे खुद भी यह चिंता हो गई कि फलानी स्त्री आपसे अलग क्यों मिलना चाहे? हमारे साथ क्यों नहीं मिलती है? तो तेरा सवाल नहीं है; किसी का सवाल नहीं है। ह्यूमन माइंड ऐसा वर्क करता है।"

ह्यूमन माइंड की वर्किंग यह है। अब उसको ख्याल भी नहीं है इस बात का। ख्याल इसलिए नहीं है, वह अपने बाबत निश्चिंत है कि मेरे अलग मिलने में तो कोई बुराई नहीं है, लेकिन दूसरों के बाबत... ! कैसे हो जाती है? पहले रमण भाई दिखाई पड़ते थे, क्योंकि सोहन अपने बाबत तो निश्चिंत थी कि मेरे मिलने में कोई बुराई नहीं। रमण भाई क्यों गड़बड़ करते हैं? यह आदमी कुछ गड़बड़ है! अब वह दूसरी हालत हो गई। अब वह अपने बाबत निश्चिंत है कि मैं कोई गड़बड़ नहीं कर रही हूं। लेकिन "यह समाज में बुरा लगता है कि कोई स्त्री आपको अलग आकर मिले!" लेकिन वह स्त्री निश्चिंत है कि "मैं कोई बुरा नहीं कर रही हूं। मैं अलग क्यों नहीं मिल सकती? मुझे बाधा क्यों दी जाए?" इसको मैं कहता हूं, ह्यूमन इंजीनियरिंग का मामला है।

इसलिए रेखा भी नहीं बचनी चाहिए। समझ आ जाए--यह तो चीजें जैसी होती हैं, वैसी होती हैं। इसलिए मुझे रेखा भी नहीं बचती है, किसने क्या किया! मुझे दिखाई पड़ता है कि एक्स वॉय जेड, कोई भी यही करता, इसलिए बात खत्म हो गई। इस बेचारे का कोई सवाल है नहीं। यह होना था। इसलिए इसमें कुछ लेना-देना नहीं, सोचना नहीं, मामला खत्म हो गया। आगे बढ़ जाना है चीजों से। इसलिए कुछ सोचें नहीं कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ! जो होना था, वह हुआ। जो नहीं हो सकता था, वह नहीं हुआ।

अब सोचने का ऐसा है कि यह जो अनुभव से हम गुजरेंगे, उस अनुभव को हम कितना उपयोग कर लें, कितनी समझ हममें आती है कि वह दुबारा रिपीट न होने दें। क्योंकि रिपीट होगा; रिपीट होगा ही वह। तो हम अनुभव से गुजरे, हमने फायदा लिया। यदि हमने फायदा नहीं लिया, तो अनुभव बेकार चला गया। क्योंकि अब फिर हम दूसरी पोजिशन में आ गए। फिर पहले अनुभव का हम उपयोग नहीं कर रहे। हमारी पोजिशन वह हो गई, जो दूसरे की थी।

पांच साल या दो साल के बाद नया ग्रुप आएगा। और हर नया ग्रुप आकर... और नया ग्रुप कोई ऐसा नहीं कि उसको पता नहीं चलता। उसको भूलें दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि उसे काम की पूरी नेचर का तो पता नहीं होता है। उसे पता नहीं होता कि यह आदमी काम कर रहा है। आपको पता भी नहीं चलता है; काम तो होता है चुपचाप। तो यह भूलें--यह भूल, वह भूल हो गई उससे--वह दिखाई पड़ती है, क्योंकि भूल से उसको संबंध है; काम से उसको कोई संबंध नहीं है। उसको किताब नहीं पहुंची, फलां आदमी को यह नहीं हुआ, यह उसको दिखाई पड़ जाता है। कल जब अपोजिशन में होगा, तब उसको पता चलेगा कि पचास हजार रुपये चुकाने हैं। तो जो पुस्तक किसी तक पहुंंचती थी, नहीं पहुंचती थी, यह गौण मामला था। पचास हजार रुपये चुकाना असली मामला था। यह रमण भाई कर रहे थे। यह अनुभव करना पड़ेगा। तो यह प्रॉब्लम हो गया। और यह इतना महत्वपूर्ण प्रॉब्लम हो गया कि पुस्तकें किसी तक पहुंचीं कि नहीं पहुंंचीं, वह एक तरफ हो गईं। पहले इसकी फिकर करें। यही फिकर वे भी कर रहे थे। ... वे नॉन-एसेंशियल बातें थीं जिनमें भूलें हो रही थीं। वे होनी थीं, क्योंकि इंपार्टेंट जो था, उसकी फिकर कर रहा था आदमी। वह उसकी फिकर करे कि इन सबकी फिकर करे?

तो वह हमारे अनुभव में होना चाहिए। और वह हमारा अनुभव बन जाए, तो वह बहुत काम का है। और उससे कनवेंशन बनता है, आगे आने वाले लोगों के लिए उसका फल होता है। और तब हम इससे ज्यादा अंडरस्टैंडिंग का व्यवहार कर सकेंगे। लेकिन हम वही तो नहीं कर रहे हैं--वह उतना होश भर इस अनुभव से लेना है। इसके बाबत सोचना नहीं कि अच्छा हुआ कि गलत हुआ। इतना होश कि जो हुआ, वह क्या हुआ; वह फिर तो रिपीट नहीं होगा! इससे ज्यादा कोई जरूरत नहीं है।